आधुनिक हिन्दी उपन्यासों में
पारिवारिक जीवन के बदलते स्वरूप
1950 - 70

ADHUNIK HINDI UPANYASON MAIN
PARIVARIK JEEVAN KE BADALTHE SWAROOP
1950 - 70

THESIS SUBMITTED TO THE
COCHIN UNIVERSITY OF SCIENCE AND TECHNOLOGY
FOR THE DEGREE OF
DOCTOR OF PHILOSOPHY

By
K.D. JOSEPH KOLLAMANA

SUPERVISING TEACHER
PROF. (DR) A. ARAVINDAKSHAN

DEPARTMENT OF HINDI
COCHIN UNIVERSITY OF SCIENCE AND TECHNOLOGY
COCHIN - 682022

1995

CERTIFICATE

This is to certify that the thesis entitled "ADHUNIK HINDI UPANYASON MAIN PARIVARIK JEEVAN KE BADALTHE SWAROOP 1950 - 7 is a bona fide record of work carried out by Shri.K.D.Joseph Kollamana, under my supervision and guidance and no part of this thesis has hitherto been submitted for a degree in any other University.

Department of Hindi,
Cochin University of
Science and Technology,
Cochin - 682022

30.12.1995

Prof. (Dr.) A.Aravindakshan
Supervising Teacher

D E C L A R A T I O N.

I am a part-time research Scholar of Hindi Department doing research under the guidance of Dr..A. Aravindakshan, Professor, the Department of Hindi. The title of my research work is "ADHUNIK HINDI UPANYASON MAIN PARIVARIK JEEVAN KE BADALTHE SWAROOP - 1950-70 ". This thesis is a bona fide record of my research work and no part of this has hitherto been submitted for a degree in any University.

Research Scholar,
Department of Hindi,
Cochin University of
Science and Technology,
Cochin - 22.

30.12.1995.

K.D.Joseph Kollamana

विषय सूची

पृष्ठ संख्या

भूमिका 1 - 9

अध्याय एक — हिन्दी उपन्यास में पारिवारिक जीवन का स्वरूप - एक सर्वेक्षणपरक अध्ययन 10 - 70

हिन्दी उपन्यास का यथार्थवादी युग - प्रेमचन्द युग - यथार्थ और आदर्श का समन्वय - सामाजिक यथार्थ के साक्ष्य - पारिवारिक जीवन पर परिवर्तित समाज का प्रभाव - प्रेमचन्द के उपन्यासों में पारिवारिक जीवन - जयशंकर प्रसाद के उपन्यास - विश्वम्भर नाथ शर्मा कौशिक के उपन्यास -चतुरसेन शास्त्री के उपन्यास - वृन्दावनलाल वर्मा के उपन्यास - प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों में परिवार का स्वरूप

अध्याय दो — आधुनिक हिन्दी उपन्यास में पारिवारिक जीवन का टूटता बिम्ब और मूल्य परिवर्तन 71 - 115

परिवार का बिम्ब - परिवार का टूटता बिम्ब - संम्मिलित परिवार के प्रति असन्तोष - सामन्ती मूल्यों का विरोध - रूढ़ियों का निषेध

अध्याय तीन — आधुनिक हिन्दी उपन्यास में पति-पत्नी-सम्बन्ध का चित्रण और पारिवारिक स्थितियाँ 116 - 152

नये समाज का नया परिवार - सामाजिक परिवर्तन के कारण - स्वतन्त्रता सम्बन्धी धारणाएँ - अधिकार सम्बन्धी धारणाएँ - समानता का संकल्प - शिक्षा का विकास - यौन सम्बन्धी धारणाएँ - औद्योगीकरण - विज्ञान का विकास - नयी आर्थिक स्थिति - नये परिवार में पति-पत्नी की भूमिका - पति-पत्नी का समान अधिकार - आर्थिक स्थिति सुधारने में पति और पत्नी का महत्व - पति-पत्नी सम्बन्ध के नये आयाम: औपन्यासिक सन्दर्भ

अध्याय चार — आधुनिक हिन्दी उपन्यास में अणु परिवार की समस्याओं के विविध आयाम — 153 - 188

अणु परिवार का विकास - स्वातन्त्र्योत्तर उपन्यास और अणु परिवार - पारम्परिक समाज-विधान और समानाधिकार की समस्या - अणु परिवार और समानाधिकार की भावना - अणु परिवार में आर्थिक समस्याओं का अंकन - अणु परिवार में आर्थिक समस्याओं से उत्पन्न नैतिक ह्रास

अध्याय पाँच — आधुनिक हिन्दी उपन्यास में अंकित पारिवारिक जीवन का समाजशास्त्र — 189 - 226

साहित्य और समाजशास्त्र - उपन्यास और समाजशास्त्र - स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास और बदलते सामाजिक मूल्य - मध्यवर्गीय जीवन स्थितियों का समाज-शास्त्र - पारिवारिक मूल्य विघटन का समाजशास्त्र - अणु परिवार की समस्याओं का समाजशास्त्र - बच्चों की समस्याओं का समाजशास्त्र

उपसंहार — 227 - 234

ग्रन्थ सूची — 235 - 245

xxxxxxxxxxxxx

भूमिका

सभी युगों की औपन्यासिक रचनाओं में परिवार-कथा के अंश रहे हैं जो सहज और स्वाभाविक हैं । अत: उपन्यासों में आये पारिवारिक जीवन के अध्ययन से तात्पर्य सामाजिक एवं सांस्कृतिक मूल्यों का ही अध्ययन है । इस अर्थ में हिन्दी उपन्यासों में पारिवारिक जीवन के बदलते मूल्य का अर्थ सामाजिक मूल्य के बदलते अर्थ से है । हिन्दी के आरम्भकालीन उपन्यास मनोरंजन पर केन्द्रित होकर लिखे गये हैं । उनमें समाज की वास्तविकता केलिए कोई स्थान प्राप्त नहीं था । लेकिन प्रेमचन्द के आगमन से हिन्दी उपन्यास की स्थिति बिलकुल बदल गयी । जीवन की यथार्थ-स्थिति यानी आम जनता की जीवन-कहानी का प्रणयन हिन्दी उपन्यास में प्रेमचन्द के आगमन से हुआ । स्वातन्त्र्योत्तर उपन्यास का तात्पर्य आधुनिक उपन्यास से है । आधुनिक उपन्यास ने जीवन के सभी क्षेत्रों से विषय चुना और हर स्थिति को बारीकी से प्रस्तुत भी किया है । यह विदित बात है कि पचास के बाद हिन्दी उपन्यास क्षेत्र में आधुनिकता की चर्चा भी ज़ोर पकड़ने लगी है । आधुनिकता को एक सिद्धान्त के रूप में न अपना कर जीवन के प्रति गतिशील दृष्टि के रूप में अपनाते हुए रूढ़ और मूढ़ विश्वासों से मुक्त होते हुए इस समय के उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों में जीवन के अनेकानेक हुलसते प्रसंगों को प्रस्तुत किया है ।

इस शोध प्रबन्ध के पाँच अध्याय हैं - वे इस प्रकार हैं

1. हिन्दी उपन्यास में पारिवारिक जीवन का स्वरूप - एक सर्वेक्षणपरक अध्ययन
2. आधुनिक हिन्दी उपन्यास में पारिवारिक जीवन का टूटता बिम्ब और मूल्य परिवर्तन

3. आधुनिक हिन्दी उपन्यास में पति-पत्नी सम्बन्ध का चित्रण और पारिवारिक स्थितियाँ
4. आधुनिक हिन्दी उपन्यास में अणुपरिवार की समस्याओं के विविध आयाम
5. आधुनिक हिन्दी उपन्यास में अंकित पारिवारिक जीवन का समाजशास्त्र

उपसंहार

पहला अध्याय है - हिन्दी उपन्यास में पारिवारिक जीवन का स्वरूप - एक सर्वेक्षणपरक अध्ययन । यह अध्याय जो कि इस प्रबन्ध का विषय-प्रवेश है, प्रेमचन्द से लेकर पचास तक के उपन्यासों में अंकित पारिवारिक जीवन का विश्लेषण प्रस्तुत करके यह दिखाने का प्रयास है कि किन-किन आधारभूत तत्वों के तहत पारिवारिक जीवन दृष्टव्य है । इस प्रकार के विश्लेषण से यह सिद्ध करने केलिए सहायता मिल गयी है कि आधुनिक उपन्यास पूर्ववर्ती उपन्यासों की तुलना में कितना प्रासंगिक और सार्थक है ।

प्रेमचन्द के आगमन से ही हिन्दी उपन्यास साहित्य का आरम्भ होता है । वे, उपन्यासों में मानव-जीवन को प्रमुख स्थान देनेवाले रचनाकार थे । उन्होंने भारतीय समाज की सही स्थिति का अनुभव किया । अपने युग और समाज की विषमता की वास्तविकता को स्वीकार करते हुए सामाजिक यथार्थवाद पर इन्होंने ज़ोर दिया ।

"सेवासदन से गोदान" तक के प्रेमचन्द के सभी उपन्यासों में पारिवारिक जीवन का चित्रण मिलता है । तो भी इस अध्याय मे सेवासदन, निर्मला, गबन, गोदान उपन्यासों को ही लिया है । इन उपन्यासों में प्रेमचन्द ने जिस परिवार-कथा को प्रस्तुत किया है उसमें हमारे समाज की कई समस्याएँ गुँथी हुई हैं ।

जयशंकर प्रसादजी ने अपने उपन्यास "तितली" में प्रेम और विवाह को ही उत्तम स्त्री-पुरुष सम्बन्ध तथा सुखी पारिवारिक जीवन केलिए आवश्यक व्यवस्था मानी है । भारतीय स्त्री की कर्तव्य-निष्ठा पर प्रसादजी को गर्व है । पारिवारिक जीवन-कथा को प्रस्तुत करने में विश्वम्भर नाथ शर्मा 'कौशिक' भी विश्लेषण के योग्य है । उनके "भिखारिणी और माँ" उपन्यासों का परामर्श इस अध्याय में हुआ है ।

प्रेमचन्दोत्तर युग को मनोवैज्ञानिक यथार्थवादी युग की संज्ञा दी गयी है । प्रेमचन्द के बाद विषयवस्तु और शिल्प में समान परिवर्तन हुए हैं । मुख्य रूप से जैनेन्द्रकुमार, अज्ञेय और इलाचन्द्र जोशी इस धारा के अन्तर्गत विचारणीय हैं । प्रस्तुत अध्याय के इस प्रकरण में इन तीन उपन्यासकारों के सुनीता, त्यागपत्र, कल्याणी, शेखर एक जीवनी, संन्यासी उपन्यासों पर विचार किया गया है ।

अन्य विचारधाराओं के समान हिन्दी उपन्यास में मार्क्सवादी विचार-धारा का प्रवेश हुआ था । यशपाल मार्क्सवाद से प्रभावित हैं । इस अध्याय में उनके "मनुष्य के रूप" उपन्यास में अंकित पारिवारिक स्थितियों का विश्लेषण किया है । "झूठा-सच" का आनुषंगिक विश्लेषण भी किया गया है ।

सामाजिक यथार्थ का तीसरा दौर उपेन्द्रनाथ अश्क, भगवतीचरण वर्मा के उपन्यासों में लक्षित है । उनके प्रमुख उपन्यास विश्लेषण केलिए लिए गये हैं ।

इस अध्याय में जितने उपन्यासकार विश्लेषित हुए हैं, उनके जितने उपन्यास पारिवारिक स्थितिके कारण विश्लेषित हुए हैं, उनके आधार पर यह देखा जा सकता है कि परिवार में पारस्परिक स्थितियों का बोलबाला है । उसे उपन्यासकार सामान्य ढंग से प्रस्तुत करते हैं । लेकिन नैतिकता के प्रतिमानों के बदलने के संकेत भी मिलते हैं । व्यक्ति-केन्द्रित परिवार के कथा-विन्यास में नैतिक प्रतिमान एकदम बदल गये हैं । इस विश्लेषण के दौरान यह एक तथ्य सामने

आता है कि परिवार का स्वरूप भी बदलने लगा है और पारिवारिक जीवन की बहुत सारी रीतियाँ बदल रही हैं ।

इन उपन्यासों में परिवार अंकित होकर भी अन्ततः व्यक्ति केन्द्रित परिवार ही अधिक स्पष्ट है । अर्थात व्यक्ति की मानसिक उथल-पुथल के अनुरूप या सीमित पात्रों की परिवार-कथा को इन उपन्यासकारों ने प्रस्तुत किया है । वस्तुतः परिवार की मान्यता या उसका एक नया संकल्प इसमें हमें प्राप्त होता है ।

दूसरा अध्याय है - "आधुनिक हिन्दी उपन्यास में पारिवारिक जीवन का टूटता बिम्ब और मूल्य परिवर्तन ।" पारिवारिक जीवन उपन्यास का आनुषंगिक विषय है । हर अंतिम वह समाज को देखता है और प्रतिफलित करता है । अनेक कारणों से हमारा समाज बदल रहा है । बाह्य कारणों के समान आन्तरिक कारण भी होते हैं । बाह्य कारणों में आधुनिक जीवन के विभिन्न पक्ष हैं जैसे शिक्षा का विकास, वैज्ञानिक विकास, राजनीतिक परिस्थितियाँ आदि । आन्तरिक कारणों में मुख्य है विवेक का विकास और यथार्थ की समझ ।

पारिवारिक टूटन को मूर्तिभंजक पात्रों की प्रतिक्रियाओं के माध्यम से स्पष्ट किया गया है । विभिन्न उपन्यासों के माध्यम से पारिवारिक बिम्ब के टूटने के दृश्य उपलब्ध होते हैं । अज्ञेय के "नदी के द्वीप" और धर्मवीर भारती के "सूरज का सातवाँ घोड़ा" जैसे उपन्यास विश्लेषित हुए हैं ।

सम्मिलित परिवार भी परिवार विघटन का कारण बन जाता है । "बीज", "सुखदा", "भूले-बिसरे चित्र", "सारा आकाश", "बूँद और समुद्र", "पचपन खम्भे लाल दीवारें", "यह पथ बन्धु था" आदि उपन्यासों में संयुक्त परिवार के प्रति असन्तोष व्यक्त किया गया है ।

सामन्तीय मूल्यों की उपस्थिति से भी परिवार टूटता है । स्वातन्त्र्योत्तर उपन्यास के स्त्री-पात्रों ने प्रत्यक्ष तथा परोक्ष रूप से पुरुषों के सामन्तीय विचारों का विरोध तथा खण्डन किया है । "नदी के द्वीप", "सूरज का सातवाँ घोड़ा", "बूँद और समुद्र", "एक इंच मुस्कान", "बैसाखियों वाली इमारत", "अमृत और विष" के माध्यम से इस पक्ष पर विचार किया गया है ।

आधुनिक उपन्यासों में रूढ़ियों के प्रति निर्भीकता के साथ विरोध प्रकट किया गया है । अत: परिवार-कथा का कोईभी नया आयाम जिसमें भले ही कोई पात्र अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करता हो, अपनी उलझन केलिए स्वयं रास्ता ढूँढ़ता हो, तो उसमें विरोध का एक परिदृश्य भी स्पष्ट होता है । आधुनिक उपन्यास रूढ़ियों का पक्षधर नहीं हो सकते हैं । अन्तरंग और बहिरंग स्तर पर आधुनिक उपन्यास में रूढ़ियों के प्रति तिरस्कार भाव है । "नदी के द्वीप", "डूबते मस्तूल", "डाक बंगला", अमृत और विष", "पचपन खम्भे लाल दीवारें", "बूँद और समुद्र", रुकोगी नहीं राधिका" आदि उपन्यासों के पात्रों ने रूढ़ियों को तिरस्कृत किया है तथा नये जीवन मूल्यों को स्वीकारा है ।

इस अध्याय में सामाजिक मूल्यों के प्रतिफलन के रूप में दर्शित पारिवारिक जीवन के बदलाव को, रचनाओं के आधार पर विश्लेषित किया गया है । क्योंकि प्रत्येक बदलाव के पीछे एक व्यापक परिदृश्य है । अत: प्रत्येक उपन्यास में सूचित बदलाव कथा-विन्यास तक सीमित नहीं है ।

तीसरा अध्याय है -"आधुनिक हिन्दी उपन्यास में पति-पत्नी सम्बन्ध का चित्रण और पारिवारिक स्थितियाँ ।" पारिवारिक जीवन में पति-पत्नी का सम्बन्ध कोई नया बात नहीं है । लेकिन बदलते हुए सामाजिक परिवेश के प्रभाव से पति-पत्नी सम्बन्ध की पुरानी धारणाएँ बदल गयी हैं । पति-पत्नी के

बोध स्वतन्त्रता, अधिकार, समानता सम्बन्धी पुरानी धारणाओं में बदलाव, शिक्षा तथा विज्ञान के विकास से हुआ है और नये रिश्तों की स्थापना हुई है ।

बीसवीं सदी के आरम्भ में भी सतीत्व के एकांगी आदर्श के अन्तर्गत पत्नी को पति की पूजा करनी पड़ती थी । पति चाहे लूला हो, कुरूप हो, अत्याचारी हो, पत्नी को उसकी आज्ञा का पालन करना था और ऐसे पुरुष को अधीनता स्वीकार करनी पड़ती थी । यद्यपि पति अपनी पत्नी को दुत्कारे, अपमानित करे, फिर भी पत्नी पर नैतिक बन्धन पड़ते थे । ऐसी सामाजिक व्यवस्था में स्त्रियाँ शोषण सहने केलिए बाध्य थीं । वर्तमान समाज में पुरुष के समान स्त्री को भी अवसर मिलने लगे हैं । वह पुरुष से किसी भी प्रकार से कम अनुभव नहीं करती है । आधुनिक स्त्री समाज की परम्परागत धारणाओं को बदलने में सक्रिय है । "न आनेवाला कल", "एक पति के नोट्स", "बैसाखियों वाली इमारत","दो एकान्त","अन्धेरे बन्द कमरे", "उखड़े हुए लोग", "कड़ियाँ" आदि इस विचारधारा को पुष्ट करने वाले उपन्यास हैं । सामाजिक जागरण, स्त्री आन्दोलन, शिक्षा, पश्चिमीकरण और स्वाधीनता की भावना के फलस्वरूप स्त्री अपने स्वत्व केलिए प्रत्यक्ष रूप से संघर्ष करती है । साथ ही अपने अधिकारों तथा स्वतन्त्रता केलिए लड़ती है ।

वैवाहिक जीवन-सम्बन्धी पुरानी मान्यताएँ शिथिल हो गयी हैं । आज पति-पत्नी एक दूसरे का पूरक है । यह अहंवादी दृष्टि नहीं है । यह व्यक्ति की अस्मिता का विकास है जिसे सामाजिक स्वत्व-विकास के रूप में देखना होगा । पति-पत्नी-सम्बन्ध को इसी रूप में देखा गया है । अत: विश्लेषण के दौरान यह तथ्य सामने आया है कि स्वत्व विकास की तमाम खूबियों के बावजूद हमारे समाज में अब भी स्त्री के प्रति स्वस्थ मनोभाव नहीं है । इन तथ्यों पर प्रस्तुत अध्याय में प्रकाश डाला गया है ।

चौथा अध्याय है - "आधुनिक हिन्दी उपन्यास में अणु परिवार की समस्याओं के विविध आयाम ।" स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास में सामाजिक चुनौतियों का बड़ी सूक्ष्मता से विश्लेषण हुआ है । ये चुनौतियाँ वैयक्तिक और सामाजिक दोनों स्तरों पर हुई हैं । भारत के परिवारों का बृहद् और संयुक्त रूप, कृषिप्रधान भारतीय परिवेश में अवश्यक था । लेकिन आज़ादी के बाद कृषिप्रधान स्थिति के बदले नौकरी पेशा, व्यवसाय आदि की ओर लोगों का ध्यान बंटने लगा । परिणाम यह हुआ कि परिवार का परम्परागत रूप बदलने लगा । पारिवारिक स्वरूप में परिवर्तन के चिह्न अंकित होने लगे ।

समाजशास्त्रियों के अनुसार दो प्रकार के परिवार हैं - संयुक्त परिवार और अणु परिवार । संयुक्त परिवार में पति-पत्नी के साथ उनके बच्चे और पितृ-कुल के तीन-चार पीढ़ियों के बन्धु-बान्धव और निस्सहाय स्त्रियाँ होती हैं । अणु परिवार में पति-पत्नी तथा उनके अविवाहित बच्चे रहते हैं । संयुक्त परिवार के विघटन से एक नयी पारिवारिक व्यवस्था का जन्म होता है जिसे पूर्ण रूप से अणु परिवार नहीं कहा जा सकता । क्योंकि ऐसे परिवार में प्राय: तीन पीढ़ियाँ होती हैं । पति-पत्नी और उनके बच्चे तथा पति के माता-पिता । यह दोनों के बीच की स्थिति है । इसका प्रमुख कारण आर्थिक है ।

परिवार का लघुतम रूप अणु परिवार कहलाता है । अंग्रेज़ी में समवाची शब्द है न्यूक्लियर फैमिली ।

एक सभ्य समाज के लिए स्वस्थ पारिवारिक जीवन अवश्यक है । परिवार ही समाज का केन्द्रबिन्दु है । इस परिवार का आधार पति-पत्नी सम्बन्ध है । परिवार की नींव को कायम रखने में पति-पत्नी सम्बन्ध की अविच्छिन्नता परम अवश्यक है । संयुक्त परिवार में निरन्तर एक साथ रहने के कारण सदस्यों में अनेक प्रकार के वैमनस्य फैल जाते हैं । संयुक्त परिवार की टूटन और अणु परिवार के

जन्म में नयी और पुरानी पीढ़ी की टकराहट मिलती है । स्वातन्त्र्योत्तर उपन्यासों के पारिवारिक चित्रण में अणुपरिवार की वृद्धि बड़ी मात्रा में दिखायी है

शिक्षा के प्रचार, वैज्ञानिक प्रगति, औद्योगीकरण आदि के प्रभाव से अणु परिवार का होना अनिवार्य हो गया है । हमारे समाज में भी अणु परिवार एक वास्तविकता है । अनेक हिन्दी उपन्यासों में ऐसे अणु परिवारों का चित्रण हुआ है । "कड़ियाँ", "आपका बण्टी" और "उसका बचपन" उपन्यासों के माध्यम से अणु परिवार की विभिन्न समस्याओं को प्रस्तुत किया गया है ।

पाँचवाँ अध्याय है – "आधुनिक हिन्दी उपन्यास में अंकित पारिवारिक जीवन का समाजशास्त्र ।" समाजशास्त्र सामाजिक अन्त:क्रियाओं का निरूपण करता है । ये अन्त:क्रियायें ही मानवीय सम्बन्धों के आधार सूत्र हैं । साहित्यकार समाज के गतिशील बिम्ब को साहित्य में प्रतिफलित करता है । समाजशास्त्री का अध्ययन-क्षेत्र वह जीवित दुनिया है । मानव की चेतन क्रियाओं में समाजशास्त्री का शोध चलता है साहित्य और समाजशास्त्र परस्पर सम्बन्धित विषय है ।

इस अध्याय में साहित्य और समाजशास्त्र, उपन्यास और समाजशास्त्र, स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास और बदलते सामाजिक मूल्य, मध्यवर्गीय जीवन स्थितियों का समाजशास्त्र, पारिवारिक मूल्य-विघटन का समाजशास्त्र, अणु परिवार की समस्याओं का समाजशास्त्र, व्यक्ति – स्त्री और पुरुष – की अस्मिता का, आर्थिक स्वावलम्बन का, कामकाजी महिलाओं की समस्याओं का, बच्चों की समस्याओं का समाजशास्त्र आदि पर विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है । स्वातन्त्र्योत्तर उपन्यासों में उपर्युक्त बातों का स्पष्ट चित्र हम देखते हैं । इस अध्याय में यही किया गया है कि सामाजिक गतिविधियों एवं उनके परिणामों के सन्दर्भ में उपन्यास प्रकरण को रखा गया है । प्रत्येक कथा-सन्दर्भ का समाजशास्त्रीय विश्लेषण भी यहाँ प्रस्तुत किया गया है ।

इन पाँच अध्यायों में आकलित विचारों को संक्षेप में प्रस्तुत करके उपन्यास और पारिवारिक जीवन की सार्थकता और प्रासंगिकता पर उपसंहार में विचार-विमर्श प्रस्तुत किया गया है । भारतीय परिवेश में पारिवारिक मूल्यों का महत्व सर्वाधिक है । हमारी परिवार संकल्पना पश्चिम के अनुरूप नहीं है । हमारे नैतिक प्रतिमान हमारे अपने हैं । उनमें परिवर्तन क्यों हो गये हैं, परिवर्तन की वास्तविक पृष्ठभूमि क्या है आदि बातों का परामर्श संक्षेपत: समाजशास्त्रीय कोण से किया गया है । हमारी सामाजिक गतिविधि का जो असर हमारी मानसिकता पर पड़ता है उसका सूक्ष्म स्पन्दन पारिवारिक जीवन में महसूस किया जा सकता है । वस्तुत: हिन्दी के उपन्यासों की परिवार-कथाएँ उसी स्पन्दन को रेखांकित करती हैं ।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में 1950 से 1970 तक के ऐसे प्रमुख उपन्यासों को चुना है जिनमें पारिवारिक जीवन रूपायित है । यह शोध इनके माध्यम से पारिवारिक जीवन के विविध आयामों के विश्लेषण की दिशा में एक विनम्र प्रयास है ।

अध्याय एक

हिन्दी उपन्यास में पारिवारिक जीवन का स्वरूप -

एक सर्वेक्षणपरक अध्ययन

हिन्दी उपन्यास का यथार्थवादी युग - प्रेमचन्द युग

हिन्दी उपन्यास का आरम्भ यद्यपि प्रेमचन्द के पहले हो हो चुका था तो भी उसमें मनोरंजनात्मक उद्देश्य से मुक्त होने की क्षमता नहीं थी । मनोरंजन प्रधान उपन्यासों की एक परम्परा ही हिन्दी में विकसित हुई । इसलिए हिन्दी उपन्यास के इतिहास में इस युग का ऐतिहासिक महत्व मात्र है । उपन्यास बृहत्तर जीवन के यथार्थ के अन्तरंग को पकड़ पाने का सशक्त माध्यम है । औपन्यासिक दृष्टिकोण में इस यथार्थ दृष्टि का आभास दिखाई देता है । पूर्व-प्रेमचन्द युग को बहुत बड़ी कमज़ोरी यथार्थ का अभाव है । दर असल प्रेमचन्द से हिन्दी उपन्यास में यथार्थवादी युग का आरम्भ होता है ।

प्रेमचन्द का आगमन हिन्दी उपन्यास में एक महत्वपूर्ण घटना है । "प्रेमचन्द युग" जैसा नामकरण भी इसी खासियत की ओर इशारा करता है । प्रेमचन्द की यथार्थ की सच्ची पकड़ थी । उन्होंने तिलस्मी व ऐयारी दुनिया में भटके हुए हिन्दी के पाठकों को यथार्थ की ठोस ज़मीन से परिचित कराया । समसामयिक जीवन की गहराई से ही उन्होंने अपना कथासंसार सृजित किया है । "उपन्यास क्षेत्र में प्रेमचन्द के पदार्पण करने तक का हमारा उपन्यास साहित्य चिन्तन-रहित, काल्पनिक, अवास्तविक, रहस्यमय तथा विवेकहीन रहा है ।"[1]

प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासों में मानव जीवन को प्रमुख स्थान दिया । भारत के निम्न वर्ग के मानसिक हलचल और हार्दिक संवेदन के ताने बाने से अन्होंने

---

1. हिन्दी उपन्यास साहित्य का अध्ययन डॉ.एस.एन.गणेशन ; पृष्ठ 67

अपने उपन्यासों को बुना है । प्रेमचन्द स्वयं निम्न वर्ग के थे । इसलिए निम्नवर्ग के अभावग्रस्त एवं त्रासद जीवन की धड़कनों से वे सुपरिचित थे और स्वयं भोक्ता भी थे । दरअसल उन परिस्थितियों ने कथाकार प्रेमचन्द को जन्म दिया है । "वे परिस्थितियों के देन थे । देश के अन्दर बढ़ती हुई सामाजिक, राजनैतिक तथा धार्मिक और नैतिक विषमताओं के भार को प्रेमचन्दजी का सहिष्णु हृदय सह नहीं पाया और वह अति आकुल होकर सहानुभूति के स्वर में बोल उठा जिससे तत्कालीन जीवन और युग का यथार्थ चित्र उनकी रचनाओं में उतर आया ।"[1] प्रेमचन्द का यह दृढ़ विश्वास था कि सामाजिक यथार्थ से विच्छिन्न कला का कोई आनन्द नहीं है । उनका कहना है, "साहित्य अपने काल का प्रतिबिम्ब होता है । जो भाव और विचार लोगों के हृदयों को स्पन्दित करते हैं, वही साहित्य पर भी अपनी छाया डालते हैं ।"[2] अत: यह बात स्पष्ट है कि प्रेमचन्द केलिए रचना का लक्ष्य सामाजिक यथार्थ को संप्रेषित करना है ।

यथार्थ और आदर्श का समन्वय

प्रेमचन्द यथार्थवादी हैं । पर उनके कुछ आदर्श भी हैं । आदर्श समाज की परिकल्पना उनके मन में थी । इसलिए सामाजिक यथार्थ के साथ-साथ उन्होंने अपने आदर्श को भी खड़ा किया । अत: वे यथार्थवादी और आदर्शवादी दोनों रहे । इस कारण से उनके औपन्यासिक शिल्प में कुछ शिथिलता भी आ गयी है । प्रेमचन्द अपने उपन्यासों में कहीं-कहीं समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करते हैं । इसे उनका वैचारिक हस्तक्षेप कह सकते हैं । पर "वह पीड़ित मानवता के प्रति उनके मन की पीड़ा तथा उसका समाधान खोजने की आकुलता का परिचायक हो सकता है किन्तु यथार्थ की दृष्टि से हल्का लगता है । यथार्थ का इतना गहरा चित्र उपस्थित करने के पश्चात् जब उपन्यासकार पात्रों के हृदयों को बदल कर सारी समस्याओं को एक

---

1. हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद डॉ. त्रिभुवनसिंह ; पृष्ठ 283
2. साहित्य का उद्देश्य प्रेमचन्द ; पृष्ठ 4

कल्पित समाधान के आश्रय से बिठा देता है तो लगता है कि कुछ अवास्तविक हो गया है, उपन्यास का यथार्थ सौम्य सन्त बन गया है ।"[1] यहाँ हम देखते हैं कि प्रेमचन्द युगीन यथार्थ को आदर्श के साथ मिला कर उसको प्रखर रूप में उपन्यास में प्रस्तुत करते हैं । प्रेमचन्द के उपन्यास की प्रासंगिकता सचमुच यह वैचारिक प्रखरता है । उनमें एक पूरा युग पंख पसारता है । समाज सम्बन्धी ये खास मानसिकता कहीं प्रेमचन्द को तथा उनके साहित्य को पूर्ववर्ती रचनाकारों से अलग करती है ।

सामाजिक यथार्थ के साक्ष्य

प्रेमचन्द के उपन्यास तत्कालीन सामाजिक यथार्थ के प्रामाणिक साक्ष्य हैं । समसामयिक जीवन की ज्वलन्त समस्याएँ ही उनके उपन्यासों का मर्म है । परम्परागत मूल्यों के प्रति अनास्था और नये एवं प्रगतिशील मूल्यों की खोज प्रेमचन्द के उपन्यासों को अलग पहचान देती है ।

अंग्रेज़ शासन के पहले भारतीय जनजीवन में ग्राम्य-समाज-व्यवस्था थी । प्रांतीय तथा राष्ट्रीय स्तर पर इन व्यवस्थाओं का विकास नहीं हो पाया था । गाँवों के सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, राजनीतिक जीवन पर ग्राम पंचायत का नियन्त्रण था । ग्रामसमाज वर्ग व्यवस्था की श्रृंखलाओं से जकड़ा हुआ था । व्यक्ति की सामाजिक स्थिति उसके जन्म पर निर्भर थी । व्यक्ति का स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं था । वर्ण-व्यवस्था के नियम बहुत कठोर थे । ऊँच-नीच की भावना प्रबल थी । समाज में रूढ़ि, परम्परा, रीति-रिवाज़ तथा धर्म के नाम पर कुरीतियाँ चल रही थीं । अशिक्षा, संकीर्णता, जड़ता और अन्धविश्वासों में जनता जकड़ी हुई थी । समाज में कहीं कहीं परिवर्तन के लक्षण दीखते थे । लेकिन रूढ़िवादी तत्व अधिक प्रबल थे । परिवर्तन लानेवाले व्यक्ति को समाजविद्रोही समझते थे । समाज व्यक्ति के प्रति असहिष्णु और अनुदार था ।

---

1. हिन्दी उपन्यास एक अन्तर्यात्रा डॉ. रामदरश मिश्र ; पृष्ठ 38

भारत के शिक्षित मध्यवर्ग ने समाज में व्याप्त बुराइयों को दूर करने केलिए प्रयास आरम्भ किया । परिणामस्वरूप अनेक सुधारवादी संस्थाओं का जन्म हुआ । शुरू में इन सुधारवादी संस्थाओं को समाज का सख्त विरोध सहना पड़ा । समाज के परम्परागत विश्वासों और रूढ़ियों को बदलना आसान नहीं है । इस केलिए समय लगता है । किसी भी नये विचार को समाज जल्दी स्वीकार नहीं करता । जब समाज के ज़्यादातर लोग इन से प्रभावित होंगे तब विरोध की स्थिति बदलती है । सुधारवादी संस्थाओं ने तत्काल प्रचलित दास-प्रथा, सती-प्रथा, बालविवाह, पर्दा प्रथा आदि के विरुद्ध आन्दोलन चलाया ।

यूरोपीय विचारधाराओं के प्रगतिशील तत्वों को ग्रहण करके उन्हें भारतीय परिस्थिति के अनुसार ढालनेवाले कुछ मनीषी हिन्दु समाज में पैदा हुए । राजा राम मोहन रॉय ने "ब्रह्मसमाज", केशवचन्द्र सेन ने "प्रार्थना समाज", विवेकानन्द ने "रामकृष्णमिशन" गोपालकृष्ण गोखले ने "भारतीय सेवक समाज" आदि महत्वपूर्ण संस्थाओं की स्थापना की जो भारत के प्रत्येक व्यक्ति के व्यक्तित्व को उजागर करने में सहायक सिद्ध हुई । इन संस्थाओं ने स्त्री शिक्षा, विधवा-विवाह स्त्री के संपत्ति पर अधिकार, अन्तर्जातीय विवाह को मान्यता, जाति-व्यवस्था की समाप्ति, स्त्री-सुधार आदि समाजवादी कार्य किये । तत्कालीन उपन्यासों में उपर्युक्त बातों का प्रभाव स्वाभाविक रूप से पड़ा । परम्परागत मूल्यों के स्थान पर नये मूल्य स्थान ग्रहण करने लगे ।

इसी बीच गान्धीजी ने राष्ट्रीय आन्दोलन का नेतृत्व ले लिया । उन्होंने मशीनीकरण का विरोध किया । साथ ही आर्थिक विकेन्द्रीकरण का समर्थन भी । गान्धीजी के सामाजिक एवं राजनीतिक क्रियाकलापों का समाज में दूरव्यापी प्रभाव पड़ा है ।

सामाजिक और आर्थिक स्थितियों में हुए परिवर्तन उस युग को देखते हुए सामान्य नहीं है । परिवर्तनोन्मुख समाज का प्रतिफलन साहित्य की विषयवस्तु

हो है । सामाजिक परिवर्तन की दिशाएँ, राजनीतिक, धार्मिक एवं आर्थिक क्षेत्र को प्रभावित करती हैं । यह एक अनिवार्य स्थिति है । प्रेमचन्द का युग इसी परिवर्तनोन्मुख युग का गवाह है । इसलिए प्रेमचन्द युग के पारिवारिक जीवन को, यहाँ तक व्यक्ति-सम्बन्धों को भी इसी परिप्रेक्ष्य में देखना चाहिए । प्रेमचन्द युग का यह राष्ट्रीय आन्दोलन केवल अंग्रेज़ों की दासता से मुक्ति का आन्दोलन ही नहीं था, अपितु शोषित वर्ग, विघटित पारिवारिक जीवन और पददलित स्त्री के अधिकारों का आन्दोलन भी था । अंग्रेज़ साम्राज्य के अन्तर्गत औद्योगीकरण के परिणामस्वरूप भारत में निम्न मध्यवर्ग का उदय हुआ । इस युग का चित्र प्रस्तुत करते हुए हुमयूँ कबीर अपनी पुस्तक "दि इंडियन हेरिटेज" में लिखते हैं - "समस्त प्राचीन मूल्यों पर विश्वासों को चुनौती दी जा रही थी । विश्वास और रीति-रिवाज़ों के प्राचीन रूप ढह रहे थे । सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक संस्थाएँ तीव्र गति से टूट रही थीं । प्राचीन सामाजिक संगठन अव्यवस्थित हो रहा था । नये तत्व उभर रहे थे, जिनकी किसी भी बीते युग में कोई मिसाल नहीं मिलती ।"[1] यथार्थवादी उपन्यासकार के नाते प्रेमचन्द ने आम जनता की समस्याओं को ध्यान से देखा और परखा । रूढ़िगत धारणाओं तथा अन्धविश्वासों से जकड़ी हुई आम जनता को, जो प्राय: अशिक्षित थी, उबारने का महत्वपूर्ण कार्य किया है । इस कारण प्रेमचन्द को समस्त प्राचीन मूल्यों तथा विश्वासों का सामना करना पड़ा था ।

पारिवारिक जीवन पर परिवर्तित समाज का प्रभाव

सम्मिलित परिवार जो भारतीय समाज का प्रमुख आधार रहा है, प्रेमचन्द ने अपनी रचनाओं में उसे आदर्श रूप देने की कोशिश की है । वे मानते थे कि संयुक्त परिवार से पारस्परिक प्रेम भाव बढ़ता है और आर्थिक समस्या का हल हो जाता है । कृषिप्रधान देश की अर्थ-व्यवस्था में संयुक्त परिवार ही उन केलिए अच्छा लगा था । प्राचीन भारतीय आदर्शों में जो कुछ प्रासंगिक है, उन्हें

---

1. समस्यामूलक उपन्यासकार प्रेमचन्द महेन्द्र भटनागर ; पृष्ठ 25

अपनाने का प्रयत्न उन्होंने किया । इनमें "संयुक्त परिवार के आदर्श को प्रेमचन्द अपने देश केलिए हितकर समझते थे और उसे बनाये रखने पर उन्होंने ज़ोर दिया है।"[1] प्रेमचन्द की दृष्टि में संयुक्त परिवार भारतीय समाज की संगठन भावना को व्यक्त करनेवाली महत्वपूर्ण सामाजिक संस्था रही है । लेकिन उनके समय में ही टूटे हुए सामन्तवाद, उभरती हुई पूँजीवादी अर्थव्यवस्था, शिक्षा के प्रचार-प्रसार, नगरीकरण आदि के कारण यह संयुक्त परिवार अपने आप विघटित होने लगा था । संयुक्त परिवार में जो प्रेम भावना और संगठन भावना थी वहाँ कलह और विद्वेष ने स्थान ले लिया । ऐसी विषम स्थिति में संयुक्त परिवार का गौरव सामाजिक चेतना के खिलाफ़ हो जाता है । स्वयं प्रेमचन्द ने अपनी रचनाओं में संयुक्त परिवार के विघटन का चित्रण इसलिए किया है । उनकी मूल भावना संयुक्त परिवार को बनाये रखने की थी । परिवार के "छिन्न-भिन्न होने के कारण वे स्त्रियों के झगड़े, विमाताओं की उपस्थिति, बड़ी उम्र में होनेवाली आदमियों की शादियों और समाज में विधवाओं की समस्याओं को बताते थे । उन्होंने इस नयी आर्थिक व्यवस्था पर कभी विचार नहीं किया जो कि परिवार-प्रथा और ग्राम्य जीवन को छिन्न-भिन्न करने की उत्तरदायी है ।"[2]

प्रेमचन्द के समय के भारतीय समाज में दो वर्गों की दशा बहुत दयनीय थी -कृषक वर्ग और नवजात मध्यवर्ग की । प्रारम्भ से ही भारत कृषिप्रधान देश रहा है । खेती ही यहाँ के लोगों की आजीविका और अर्थ-व्यवस्था का आधार थी । विदेशी सत्ता और ज़मीन्दारी गठबन्धन ने कृषकों की स्थिति को काफ़ी हद तक दर्दनाक बना दिया । सामन्तवादी स्थिति उत्तरोत्तर बढ़ती रही ।

दूसरी ओर मध्यवर्ग की स्थिति भी दयनीय थी । मध्यवर्ग ने नवीन शिक्षा पायी । वह उस समय का बुद्धिजीवी वर्ग है । उसमें भारतीय गौरव के प्रति आस्था के साथ ही साथ पाश्चात्य संस्कृति और सभ्यता के प्रति आकर्षण भी था ।

---

1. प्रेमचन्द डॉ.रामविलास शर्मा ; पृष्ठ 136
2. प्रेमचन्द - एक विवेचन डॉ.इन्द्रनाथ मदान ; पृष्ठ 165

भारत की सुधारवादी संस्थाओं ने भी मध्यवर्ग को प्रभावित किया । पुरानी मान्यताओं की जड़ें हिल रही थीं । परम्परागत विश्वासों को चुनौती देने की बात उसी की परिणति थी । इतने पर भी परिवार का बुनियादी स्वरूप कई प्रकार की रूढ़ियों से जकड़ा हुआ था । संघर्ष का यही कारण है । प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासों में ऐसे कृषक वर्ग, मध्यवर्ग और सभी पारिवारिक स्थितियों की निजता का चित्रण किया है । सामाजिक दृष्टि से प्रेमचन्द ने परिवार को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है । "परिवार को, जो व्यक्तियों द्वारा निर्मित होता है, जीवन का केन्द्रबिन्दु मानकर चले हैं । उनके जीवन की परिधि इसी केन्द्र-बिन्दु से निरन्तर प्रसार की ओर उन्मुख होती है ।"[1]

प्रेमचन्द ने, संयुक्त परिवार के समर्थक होकर भी, उसकी व्यावहारिक कठिनाइयों, छोटी-मोटी ईर्ष्याओं, मान-मर्यादा के झूठे प्रतिमान, दाम्पत्य जीवन के असन्तोष, विधवाओं की दयनीय स्थिति, विमाता का निर्दयी व्यवहार आदि के चित्रण में कोई विमुखता नहीं प्रकट की है । पारिवारिक कुण्ठाओं के चित्रण के द्वारा परिवार को विघटित करनेवाली स्थितियों की ओर इशारा करना और सुधार लाना उनका उद्देश्य रहा है ।

प्रेमचन्द के उपन्यासों में पारिवारिक जीवन

"सेवासदन" में प्रेमचन्द ने दहेज प्रथा और अनमेल विवाह की समस्या का चित्रण किया है । इस उपन्यास में ऐसे एक परिवार को दिखाया है, जिसकी सुमन उम्र में अपने से बड़े पति के सन्देहों का निवारण नहीं कर सकी, उसे घर से निकल जाना पड़ा । यदि अपेक्षित दहेज देने केलिए उसके पिता दारोगा कृष्णचन्द्र के पास धन होता तो यह समस्या न होती । दहेज देने केलिए कृष्णचन्द्र रिश्वत लेते हैं और गिरफ्तार कर लिये जाते हैं । सोलह वर्षीया सुमन का विवाह तीस

---

1. प्रेमचन्द, हिन्दी उपन्यास कोश - भाग 2 डॉ.लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय ; पृष्ठ 336

वर्ष से भी अधिक आयुवाले दुहाजू गजाधर के साथ होता है । सुमन का मन पति से नहीं मिलता । पति की थोड़ी आमदनी से सुमन की इच्छाएँ पूरी नहीं होतीं । इस कारण गृहस्थी की व्यवस्था बिगड़ जाती है । अनमेल विवाह ही उनके पारिवारिक विघटन का कारण है । सुमन में वैवाहिक जीवन सम्बन्धी शिक्षा का अभाव भी है । प्रेमचन्द बताते हैं - "हम अपने गार्हस्थ्य जीवन की ओर से कितने बेसुध हैं, उस केलिए किसी तैयारी, किसी शिक्षा की ज़रूरत नहीं समझते । गुड़ियाँ खेलनेवाली बालिका, सहेलियों के साथ विहार करनेवाली युवती, गृहिणी बनने योग्य समझी जाती है । अल्हड़ बछड़े के कन्धे पर भारी जुआ रख दिया जाता है । ऐसी दशा में यदि हमारा गार्हस्थ्य जीवन आनन्दमय न हो तो कोई आश्चर्य नहीं ।"[1]

विवाह के बाद भी सुमन को उचित सीख देनेवाला कोई नहीं है । उसके अड़ोस-पड़ोस जो स्त्रियाँ हैं उनके विचार में पति केवल विषय सुख का साधन है । उन केलिए पति चाहे जैसा हो, यदि वह अपनी स्त्री को सुन्दर आभूषणों से, उत्तम वस्त्रों से सजाता है, उसे स्वादिष्ट भोजन खिलाता है तो अच्छा है । नहीं तो वह निखट्टू है, अपाहिज है, आदर और प्रेम के योग्य नहीं है । इन पर सुमन को धारण जम जाती है । उसका उचित मार्गदर्शन कोई नहीं करता है । वह उचित-अनुचित का अन्तर नहीं कर पाती है । वह अपने दुखी जीवन को तुलना पड़ोसी वेश्या के ऐश्वर्यपूर्ण जीवन से करने लगती है । वह समझती है - पति मूर्ख है, संकुचित दृष्टिवाला है, उसमें अधिकार की भावना है, सहृदयता नहीं है, पत्नी पर सन्देह करनेवाला है ।

विवाह के प्रारम्भिक दिनों में सुमन आदर्श गृहिणी के रूप में व्यवहार करती है । वह घर का सारा काम करती है । लेकिन बचपन से लाड़-प्यार में पली सुमन को पति-गृह अच्छा नहीं लगता । अपने पड़ोस रहनेवाली वेश्या भोली का ऐश्वर्य और प्रतिष्ठा देखकर उसे धन की कमी का अहसास भी होता है । गजाधर केलिए सुमन सन्देह की वस्तु है । एक रात अपनी सहेली सुभद्रा के यहाँ से

---

1. सेवासदन प्रेमचन्द ; पृष्ठ 18

लौट आने पर गजाधर सुमन को घर से निकाल देता है । गजाधर में एक ओर अपनी पत्नी के प्रति अविश्वास है तो दूसरी ओर वह उसे निकाल कर चैन नहीं पाता । वह आत्मग्लानि से भर उठता है और अपने ससुर कृष्णचन्द्र से आत्म-स्वीकृति के स्वर में कहता है - "यह सब मेरी निर्दयता और अमानुषीय व्यवहार का फल है । वह सर्वगुण सम्पन्न थी, वह इस योग्य थी कि किसी बड़े घर की स्वामिनी बनती । मुझ जैसा दुष्ट, दुरात्मा, दुराचारी मनुष्य उसके योग्य न था । उस समय मेरी स्थूल दृष्टि उसके गुणों को न देख सकी । ऐसा कोई कष्ट न था जो उस देवी को मेरे साथ न झेलना पड़ा हो । पर उसने कभी मन मैला न किया । उसका ऊँचा आदर्श मेरे अविश्वास का कारण हुआ । मैं उस के सतीत्व पर सन्देह करने लगा । अन्त में यह दशा हो गयी कि एक दिन रात को एक सहेली के घर पर ज़रा विलम्ब हो जाने के कारण मैं ने उसे घर से निकाल दिया ।"[1]

प्रेमचन्द ने सुखी पारिवारिक जीवन केलिए पति-पत्नी के पारस्परिक दायित्व-निर्वाह, पारस्परिक प्रेम, त्याग, सेवा सहिष्णुता, सहानुभूति, आत्म-समर्पण, आत्मविकास आदि को अनिवार्य माना है । उनके अनुसार आदर्श पारिवारिक जीवन केलिए परिवार में भी पत्नी का आदर होना आवश्यक है । इस उपन्यास में गजाधर अपनी भूल स्वीकार करता हुआ सुमन से कहता है - "तुम आदर के योग्य थीं, मैंने तुम्हारा निरादर किया । यह हमारी दुरवस्था का, हमारे दुखों का मूल कारण है । ईश्वर वह दिन कब लावेगा कि हमारी जाति में स्त्रियों का आदर होगा । स्त्री मैले-कुचैले, फटे-पुराने वस्त्र पहन कर आभूषण विहीन होकर आधे पेट सूखी रोटी खाकर झोंपड़े में रह कर, मेहनत-मज़दूरी कर, सब कष्टों को सहते हुए भी आनन्द से जीवन व्यतीत कर सकती है । केवल घर में उसका आदर होना चाहिए, उससे प्रेम होना चाहिए । आदर या प्रेम विहीन महिला महलों में भी सुख से नहीं रह सकती ।"[2]

---

1. सेवासदन प्रेमचन्द ; पृष्ठ 23।
2. वही ; पृष्ठ 242-43

पति का पत्नी के प्रति अशिष्ट व्यवहार एवं पत्नी के स्वाभिमान की रक्षा न होने के कारण पारिवारिक जीवन कटु बन जाता है । सुमन अपने पति के अशिष्ट व्यवहार के कारण घर छोड़ कर वेश्या-जीवन बिताने केलिए बाध्य होती है । सुमन अपनी अभिमान की रक्षा नहीं कर पाती है । गजाधर स्वयं को सुमन की वेश्यावृत्ति का दोषी मानता है । वह कहता है - "मेरी असज्जनता और निर्दयता, सुमन की चंचलता और विलास दोनों ने मिलकर हम दोनों का सर्वनाश कर दिया ।"[1]

सुमन अपने पति के अत्याचारों का निर्भय सामना करती है । वह पति को डाँट-फटकार सुनाती है । उसके सामने वह गिड़गिड़ाती नहीं । वह स्पष्टत: कहती है - "क्या तुम्हीं मेरे अन्नदाता है ? जहाँ मजूरी करूँगी, वहीं पेट पाल लूँगी ।"[2] वह पति के घर से निकलती है । समाज भीरु पद्मसिंह सुमन को अपने घर में आश्रय नहीं दे सका । उसे वेश्याभोली के शरण में जाना पड़ा । डॉ॰रामविलास शर्मा के मतानुसार - "दहेज, अनमेल विवाह और वेश्या की देहरी मानों इस विवाह प्रथा और वेश्या वृत्ति में कोई अन्योन्याश्रित सम्बन्ध हो कि एक होगी तो दूसरी होगी हो । और जिस समाज में कन्या के विवाह का मतलब कन्याविक्रय हो, उससे वेश्या वृत्ति कौन उठा सका है ? "[3]

सामाजिक कुरीतियों का कुप्रभाव पारिवारिक जीवन पर पड़ता है । सही सोच-समझ के अभाव में परिवार का संतुलन भी खो जाता है । सुमन का जीवन इसका उदाहरण है । पर प्रेमचन्द अपने पात्र के असन्तुलित जीवन को दिखा कर उपन्यास को समाप्त नहीं कर रहे हैं । सुमन का परिवार भले ही न रहे, फिर भी सुमन दूसरों के जीवन को सुधारने का काम करती है जो उस समय की सुधारवादी प्रवृत्तियों का स्पष्ट प्रमाण ही है ।

1॰ सेवासदन :प्रेमचन्द ; 112
2॰ वही ; पृष्ठ 36
3॰ प्रेमचन्द और उनका युग डॉ॰रामविलास शर्मा ; पृष्ठ 38

मध्यवर्गीय जीवन की महत्वाकांक्षाओं, उसकी पराजयों, विषमताओं, विडम्बनाओं तथा तमझौतावादी प्रवृत्तियों को "गबन" उपन्यास में प्रेमचन्द ने उजागर किया है । हमारे समाज इनसे किस कदर तक टूट गया है, कितने खोखले और निस्सार भावों से आक्रान्त है, अपनी जर्जर रूढ़ियों तथा मानापमान की वृथा भावनाओं से किस प्रकार जकड़ा हुआ है यही दिखाना इस उपन्यास का लक्ष्य है । नगरीकरण से सम्बद्ध मध्यवर्ग की बेहतर जीवन स्तर अपनाने की आकांक्षा, नगरों और कस्बों में रहनेवाली मध्यवर्गीय युवा पीढ़ी का अपने को उच्चतर दिखाने की अभिलाषा से पत्नी के गहनों की चोरी, सरकारी रुपयों का गबन आदि ने पारिवारिक विघटन को किस सीमा तक सम्भव बनाया है इसका चित्रण इस उपन्यास में मिलता है ।

उपन्यास के आरम्भ में झूठी प्रतिष्ठा और स्त्री की आभूषण-प्रियता के कारण हुए पारिवारिक विघटन का चित्रण हुआ है । नायक रमानाथ झूठी प्रतिष्ठा के अधीन है । उसके लिए विवाह आत्माओं का मेल नहीं है । जीवन-संग्राम में पत्नी को संगिनी का स्थान भी वह नहीं देता । रमानाथ की पत्नी जालपा का बचपन अपने परिवार में आभूषणों की बातें करते-सुनते बीता है । रमानाथ और जालपा के विवाह के साथ दोनों के संस्कारों का सम्मिलन भी हो गया । रमानाथ के विवाह में जो गहने चढ़ाये थे, वे सब उसके पिता दयानाथ के उधार लिये हुए थे । रमानाथ जालपा के सामने अपनी झूठी प्रतिष्ठा का बयान भी करता है । दयानाथ आभूषणों की रकम चुका नहीं पाते । आभूषण वापस देने की बात वे सोचते हैं । जालपा से वास्तविक स्थिति समझाकर आभूषण वापस माँगने की सलाह वे देते हैं । रमानाथ ने "खूब बढ़-चढ़ कर बातें की थीं । ज़मीन्दारी है, उससे कई हज़ार का नफ़ा है । बैंक में रुपये हैं, उनका सूद आता है । जालपा से जब अगर गहने की बात कही गयी तो वह रमानाथ को पूरा लबाड़िया समझेगी ।"[1] अन्त में रमानाथ जालपा से जेवर माँगने के बजाय उसे चुरा कर अपने पिता को दे देता है । दाम्पत्य जीवन की विसंगतियों का आरम्भ यहाँ से शुरू होता है ।

---

1. गबन प्रेमचन्द ; पृष्ठ 18

आभूषणों की चोरी से जाल्पा अधिक दुखी होती है । रमानाथ वास्तविक स्थिति प्रकट नहीं करता । नौकरी लगने पर वह तीस रुपये की जगह चालीस रुपये बताता है । जाल्पा आभूषणों केलिए अधिक इच्छुक हो जाती है । पर कर्ज लेकर आभूषण बनाना उसे बर्दाश्त नहीं । फिर भी रमानाथ कर्ज लेकर आभूषण लाता रहता है । आर्थिक तंगी से वह सरकारी पैसे का गबन करके भाग खड़ा होता है । यहीं पर जाल्पा का हृदय परिवर्तन होता है । वह सभी आभूषण बेचकर सरकारी पैसा भरती है और रमानाथ को ढूँढ़ निकलती है । "गबन" की यही विशेषता है कि वह एक विघटित मध्यवर्गीय परिवार की कथा के रूप में रूपान्तरित नहीं होता है । उसके दोष का चित्र दिखाकर मध्यवर्गीय टुच्चेपन को भी प्रेमचन्द ने दर्शाया है । राजनीतिक एवं आर्थिक स्थितियों का प्रदूषण परिवार पर भी पड़ता है । रमानाथ की जीवन-चर्या इसी का उदाहरण है जबकि जाल्पा की जीवन-चर्या दोनों स्थितियों से मुक्त होकर स्वस्थ परिवार कायम करती है ।

संयुक्त परिवार के समर्थक होने के बावजूद प्रेमचन्द संयुक्त परिवार के दोषों पर भी इशारा करते हैं । रतन जाल्पा की सखी है । उसके पति इन्दुभूषण वकील की मृत्यु हो जाती है । वकील के बड़े भाई का लड़का मणिराम संयुक्त परिवार की कानून व्यवस्था के आधार पर रतन की सम्पत्ति हड़प कर उसे निरालम्ब बना देता है । वह सारे समाज को चेतावनी देती है - "बहनो, किसी सम्मिलित परिवार में विवाह मत करना, तो जब तक अपना घर अलग बना लो, चैन की नींद मत सोना । यह मत समझो कि तुम्हारे पति के पीछे उस घर में तुम्हारा मान के साथ पालन होगा ।"[1] रतन संयुक्त परिवार की विधवा का प्रतीक है ।

श्रद्धामय प्रेम के कारण अनमेल विवाह भी सुखद सिद्ध हो सकता है । रतन के अनमेल विवाह की ओर संकेत करते हुए जाल्पा पूछती है कि वकील साहब से तुम्हारा दिल तो नहीं मिलता होगा? वह कहती है - "मुझे तो कभी यह ख्याल

---

1. गबन प्रेमचन्द ; पृष्ठ 269

भी नहीं आया बहन कि मैं युवती हूँ और वे बूढ़े हैं । मेरे हृदय में जितना प्रेम जितना अनुराग है वह मैं ने इनके ऊपर अर्पण कर दिया । अनुराग, यौवन या रूप या धन से उत्पन्न नहीं होता । अनुराग, अनुराग से उत्पन्न होता है ।"[1] प्रेमचन्द स्त्री को पुरुष की सहगामिनी मानते हैं । "प्रेमचन्द की नारी-भावना की सर्वप्रमुख विशेषता यही है कि उसका चित्रण रमणी के श्रृंगारजन्य विलासात्मक आकर्षण के हेतु नहीं, अपितु मनुष्यत्व को ऊँचा उठाने और मनुष्य के मन में ऊँचे विचार पैदा करने के हेतु हुआ है ।"[2]

प्रेमचन्द का यह उपन्यास पारिवारिक जीवन की बारीकियों पर प्रकाश डालने के पश्चात् सामाजिक एवं राजनीतिक विड़म्बनाओं की ओर विकसित होता है । लेकिन प्रेमचन्द के उपन्यासों में पारिवारिक जीवन छोटी-बड़ी तमाम बातें एक-दूसरे से गुँथी हुई मिलती हैं ।

"निर्मला" उपन्यास में भी प्रेमचन्द ने पारिवारिक जीवन में स्त्री की कुण्ठाग्रस्त स्थिति को प्रस्तुत किया है । यह उपन्यास समाज की वेदी पर स्त्री के निर्विरोध बलिदान की कहानी है । प्रेमचन्द ने यह दर्शाया है कि दहेज, अनमेल विवाह आदि सामाजिक कुरीतियों का दुष्प्रभाव स्त्री के पारिवारिक जीवन पर गहरा आघात पहुँचाता है । "जब तक माता-पिता को कन्या का वर ढूँढ़ने और उसे सन्तुष्ट करने की आवश्यकता बनी रहेगी, तब तक हिन्दु परिवार में कन्या का जन्म चिन्ता का विषय बना रहेगा ।"[3]

दहेज प्रथा और अनमेल विवाह के अभिशाप से ग्रसित पारिवारिक असन्तुलन और विघटन की कहानी है "निर्मला" । बाबू उदयभानुलाल के दो पुत्रियाँ हैं - निर्मला और कृष्णा । निर्मला बड़ी हो गयी तो उसके विवाह की चिन्ता स्वाभाविक रूप से माता-पिता को सताती है । भालचन्द्र के बड़े पुत्र

---

1. गबन प्रेमचन्द ; पृष्ठ 149
2. प्रेमचन्द के नारी पात्र ओम् अवस्थी ; पृष्ठ 26
3. हिन्दु परिवार मीमांसा हरिदत्त वेदालंकार ; पृष्ठ 20।

डॉ॰भुवनमोहन सिन्हा से निर्मला का विवाह निश्चित हो जाता है । भालचन्द्र दहेज का कोई प्रस्ताव नहीं रखता क्योंकि वह आशा करता है कि उदयभानुलाल उन्हें अच्छा दहेज देंगे । अकस्मात् उदयभानुलाल की मृत्यु होती है तो भालचन्द्र निर्मला का विवाह अपने पुत्र के साथ कराने से इनकार कर देता है ।

माता कल्याणी को अपनी पुत्री निर्मला का विवाह मनोनीत वर के बजाय बूढ़े विधुर वकील तोताराम से कराना पड़ता है । पहली पत्नी से तोताराम के तीन पुत्र हैं । तोताराम नवयुवती निर्मला को ब्याह कर घर ले आते हैं । दोनों की आयु, स्वास्थ्य और स्वभाव में बड़ी विषमता है । निर्मला की मानसिकता विचित्र हो जाती है । "बाँका सवार बूढ़े लद्दू टट्टू पर सवार होना कब पसन्द करेगा, चाहे उसे पैदल ही क्यों न चलना पड़े । निर्मला की दशा उसी बाँके सवार की थी । वह उस पर सवार होकर उड़ना चाहती थी, उस उल्लासमयी विद्युत गति का आनन्द उठाना चाहती थी, टट्टू के हिनहिनाने और मनौतियाँ खड़ी करने से क्या आशा होती ।"[1] निर्मला अपने मन को समझाकर तोताराम के बच्चों में और अपने आपको व्यस्त रखने लगती है । निर्मला, तोताराम केलिए सिर्फ़ भोग की सामग्री है । वे उसे रिझाने, मन बहलाने की चेष्टा तो करते हैं, लेकिन दाम्पत्य जीवन का व पारिवारिक जीवन का वह आधार - विश्वास -वे निर्मला को प्रदान नहीं करते । तोताराम की हीन भावना से वे अपनी पत्नी की आशाओं, आकांक्षाओं को समझ नहीं पाते और प्रेम से हृदय को जीतने में असफल हो जाते हैं ।

निर्मला और अपने पुत्र मंसाराम को लेकर संदेहों का एक ऐसा ज़हरीला जाल बुन जाता है कि तोताराम और निर्मला का पारिवारिक जीवन कुण्ठित और निश्चेष्ट होकर अन्त में बिखर जाता है ।

निर्मला के जीवन के अन्तिम क्षण वेदना से मुखर हैं । वह शरीर और मन से बुरी तरह टूट जाता है । वह मरणासन्न हो जाती है । जहाँ तक पति

1॰ निर्मला प्रेमचन्द ; पृष्ठ 39

तोताराम के प्रति निर्मला की भावना का सवाल है, वह अपनी वेदना को व्यक्त करते हुए कहती है "स्वामीजी ने हमेशा मुझे अविश्वास की दृष्टि से देखा, लेकिन मैं ने कभी मन में भी उनकी उपेक्षा नहीं की । जो होना था, वह हो चुका था । अधर्म करके अपना परलोक क्यों बिगाड़ती । "[1]

मरते वक्त निर्मला अपने नन्हे बच्चों को ननद के हाथों सौंप देती है जिसने आजीवन निर्मला को दुख ही पहुँचाया था । वह ननद से निवेदन करती है - "दीदीजी, बच्चे को आपकी गोद में छोड़ जाती हूँ । अगर जीती जागती रहे तो किसी अच्छे कुल में विवाह कर दीजिए । चाहे क्वांरी रखिएगा, चाहे विष देकर मार डालिएगा, पर कुपात्र के गले न मढ़िएगा ।"[2] निर्मला का प्रस्तुत कथन दुखी माता का कथन नहीं, एक विद्रोही पत्नी का कथन है । आर्थिक दृष्टि से जो भी परिवार विपन्न है उसे अपने पैर टिकने की आज़ादी नहीं । वह सिर्फ रूढ़ियों और प्रथाओं की बैसाखियों पर टिकता है । चाहे उससे परिवार टूटे या बिखरे । प्रेमचन्द ने "निर्मला" में किसी प्रकार के आदर्श से विघटन को संतुलित करने का कार्य नहीं किया है ।

"गोदान" मे भी पारिवारिक चित्रण है । नायक होरी आदर्शवादी और सरल स्वभाव वाला है । वह आजीवन अपनी परिस्थितियों से जूझता रहता है । जीवन संघर्ष के प्रति आस्थावान रहता है । वह ईमानदार और स्नेहशील भी है । होरी के जीवन की आर्थिक विषमताओं और उसके पारिवारिक जीवन के उतार-चढ़ाव का वर्णन "गोदान" में हुआ है । गोदान के रचनाकाल तक पहुँचने पर संयुक्त परिवार की उपादेयता और अनिवार्यता में स्वयं प्रेमचन्द का विश्वास भी ढीला पड़ गया था । आदर्शों के सुहावने सपनों का मोह छोड़कर अब प्रेमचन्द पूर्ण रूप से वास्तविकता के खुरदरे धरातल पर खड़े होकर जीवन और समाज में व्याप्त आर्थिक वैषम्य की विकटता को देखने लगते हैं । आजीविका केलिए

---

1. निर्मला प्रेमचन्द ; पृष्ठ 187
2. वही ; पृष्ठ 189

कठिन परिश्रम करनेवाले होरी के सम्मिलित परिवार पर विघटन की छाया पड़ने लगती है । उसके भाई शोभा और हीरा उससे अलग हो जाते हैं और परिवार में बंटवारे के साथ आर्थिक विषमताओं की घटा गिरने लगती है ।

होरी को अपनी ज़िन्दगी में यातनाएँ ही मिलती हैं । उसका जीवन कर्ज एवं दुख की एक लम्बी श्रृंखला है । उनेक घटनाएँ घटती है जो उसको निरन्तर तोड़ती रहती है । एक अधेड़ के साथ अपनी बेटी को ब्याहना पड़ता है । रामसेवक जैसे अधेड़ से दो सौ रुपये पाकर बदले में अपनी बेटी रूपा को देना पड़ता है । इस स्थिति को प्रेमचन्द यों प्रस्तुत करते हैं - "उसका हाथ काँप रहा था, सिर ऊपर उठा न सका । एक शब्द न निकला, जैसे अपमान के अथाह गढ़े में गिर पड़ा है .... आज वह परास्त हुआ है - मानो नगर के द्वार पर खड़ा कर दिया गया है और जो आता है, मुँह पर थूँक देता है । चिल्ला-चिल्ला कर कह रहा है, भाइयो, मैं दया का पात्र हूँ, मैंने नहीं जाना जेठ की लू कैसी होती है और माघ की वर्षा कैसे होती है उस पर यह अपमान और वह अब जीता है, कायर, लोभी, अधम ।"[1]

होरी के जीवन की प्रत्येक आशा धूल-धूसरित होती जाती है । फिर भी वह जीना चाहता है । गोबर की लखनऊ से वापसी पर धनिया-होरी अपने पुत्र से आशा करते हैं कि अब दुखों का अन्त होगा । कर्जा निबटा जाएगा । रूपा की शादी हो जाएगी । लेकिन उनका यह आशावाद ध्वस्त होता है - "तुम भी चाहती हो, और दादा भी चाहते हैं कि मैं सारा कर्ज चुकाऊँ, लगान दूँ, लड़कियों का ब्याह करूँ । जैसे मेरी ज़िन्दगी तुम्हारा दोना भरने ही केलिए है । मेरे भी तो बाल-बच्चे हैं ।"[2] गोबर अपनी पत्नी हुनिया को लेकर अलग होता है । जीवन-संग्राम में होरी अकेला ही रह जाता है । वह अपनी लड़की रूपा की शादी का सामाजिक दायित्व निभाने पर तुला है । लेकिन अर्थाभाव में उसे अपनी लड़की को

---

1. गोदान प्रेमचन्द ; पृष्ठ 338
2. वही ; पृष्ठ 214-15

बेचने पर विवश होना पड़ता है । प्रेमचन्द की मान्यता है कि प्राय: आर्थिक कारणों से ही संयुक्त परिवार का विघटन होता है । उनका मन्तव्य है कि "चाहे वे संयुक्त परिवार निम्न वर्ग के हों और चाहे मध्यम वर्ग के - दोनों की विशृंखलता का मूल कारण आर्थिक है । अर्थ ने आज भाई-भाई को, पिता-पुत्र को एक-दूसरे का शत्रु बना दिया है । पारिवारिक अन्य झगड़ों की जड़ भी यह आर्थिक प्रश्न है ।"[1]

प्रेमचन्द ने पारिवारिक जीवन में पति-पत्नी सम्बन्ध को एक धार्मिक एवं सामाजिक समझौता माना है । उनके अनुसार विवाह-सम्बन्ध अविच्छिन्न है, इसे तोड़ा नहीं जा सकता । आपने मेहत्ता के माध्यम से अपने विचार प्रस्तुत किये हैं - "विवाह को मैं सामाजिक समझौता समझता हूँ और, उसे तोड़ने का अधिकार न पुरुष को है न स्त्री को । समझौता करने से पहले आप स्वाधीन हैं, समझौता हो जाने के बाद आपके हाथ कट जाते हैं।"[2]

सुखी पारिवारिक जीवन के पीछे स्त्री के सेवा सम्बन्धी आदर्श काम करते हैं । एक पत्र में वे दाम्पत्य जीवन के अन्तर्गत नारी भावना का उल्लेख करते हुए लिखते हैं - "मेरा नारी का आदर्श है एक ही स्थान पर त्याग, सेवा और पवित्रता का केन्द्रित होना । त्याग बिना फल की आशा के हो । सेवा सदैव बिना असन्तोष प्रकट किये हुए हो और पवित्रता सीज़र की पत्नी की भाँति ऐसी हो, जिसके लिए पछताने की आवश्यकता न पड़े ।"[3]

पति के अशिष्ट व्यवहार से पत्नी के व्यक्तित्व का आहत होना स्वाभाविक है और पारिवारिक जीवन में अशान्ति फैलती है । खन्ना अपनी पत्नी गोविन्दी का अपमान करता है । "खन्ना उसकी कविताएँ देखते, तो उसका मज़ाक उड़ाते और कभी-कभी फाड़ कर फेंक देते । सम्पत्ति की यह दीवार दिन-दिन

---

1. समस्यामूलक उपन्यासकार प्रेमचन्द :महेन्द्र भटनागर ; पृष्ठ 180
2. गोदान प्रेमचन्द ; पृष्ठ 65
3. प्रेमचन्द एक विवेचन :इन्द्रनाथ मदान ;परिशिष्ट 2, पत्र 2

ऊँची होती जाती थी और दम्पति को एक दूसरे से दूर और पृथक करती जाती थी । खन्ना अपने ग्राहकों के साथ जितना ही मीठा और नम्र था, घर में उतना ही कटु और उद्दण्ड । अक्सर क्रोध में गोविन्दी को अपशब्द कह बैठता, शिष्टता उसकेलिए दुनिया को ठगने का एक साधन थी, मन का संस्कार नहीं । ऐसे अवसरों पर गोविन्दी अपने एकान्त कमरे में जा बैठती और रात-को-रात रोया करती और खन्ना दीवानखाने में मुज़रा सुनता या क्लब में जाकर शराबें उड़ाता ।"[1] डॉ॰इन्द्रनाथ मदान की राय में -"आधुनिक जीवन की विषमताओं को झेलने केलिए, इससे झूलने के लिए आधुनिक मानव को व्यंग्य का कवच धारण करना पड़ रहा है ।"[2]

"गोदान" में मेहत्ता तथा मालती और अन्य ग्रामीण पात्रों की कथा के माध्यम से प्रेमचन्द ने परिवार सम्बन्धी अपनी नयी दृष्टि प्रस्तुत की है । आर्थिक मन्दी, शोषण और सामाजिक कुरीतियों की वजह से त्रस्त सामाजिक ढाँचे को दिखाते समय प्रेमचन्द यह भी दिखाना चाहते हैं कि परिवार इन सबसे मुक्त नहीं है । वे परिवार के निरे चित्रकार नहीं हैं । उनका परिवार सामाजिक स्थितियों के तहत संकल्पित है । गोदान इसका सफल उदाहरण है । "इस उपन्यास में लेखक ने अपनी परम्परा को तोड़ा है, इसके अन्त को खुला छोड़ दिया है, इसका अन्त उपन्यास के बाहर हो जाता है, इसका अन्त इनके पहले उपन्यासों की तरह बन्द न होकर खुलने की गवाही देने लगता है, इसमें समस्या का समाधान नहीं दिया गया है । इसके अन्त में होरी की धराशायी होने की स्थिति में, दातादीन को सामने खड़ा होने की स्थिति में और धनिया को पछाड़ खाकर गिरने की स्थिति में छोड़ कर इसके अन्त को खुला छोड़ दिया है जो आधुनिकता की चुनौती का परिणाम है । उपन्यासकार की पुरानी आस्था टूट चुकी है ।"[3]

1॰ गोदान प्रेमचन्द, पृष्ठ 191-92
2॰ आधुनिकता और सृजनात्मक साहित्य इन्द्रनाथ मदान; पृष्ठ 194
3॰ वही; पृष्ठ 166

प्रेमचन्द का मुख्य उद्देश्य व्यक्ति और परिवार का उद्धार करना था । इसीलिए उन्होंने अपनी रचनाओं के माध्यम से सामाजिक भावनाओं को प्रश्रय दिया है । साथ ही परिवार के विघटनकारी तत्वों को व्यक्त करने का प्रयास भी किया है । प्रेमचन्द के पारिवारिक चित्रण में आदर्श का पलड़ा भारी होते हुए भी वास्तविकता का उल्लंघन नहीं है । अपनी सामाजिक अभिक्षा के कारण वे सदैव एक स्वस्थ परिवार की कामना करते हैं । लेकिन परिवार को विघटित और विचलित करने वाले तत्वों को उन्होंने आदर्शीकृत नहीं किया है ।

"भारतीय जनजीवन सदैव से संयुक्त परिवार का समर्थक रहा है । इस नाते व्यक्ति की अपेक्षा यहाँ परिवार को अधिक सम्मान मिलता रहा है । इस नाते पाश्चात्य प्रभाव से परिवार की यह संस्था टूटने लगी और उस स्थान पर व्यक्तिवाद का प्राबल्य होने लगा । प्रेमचन्द सम्मिलित परिवार के प्रति सहानुभूति रखते थे । अतएव विघटन की अपेक्षा इस दृष्टि से वे संगठन के समर्थक अधिक थे । लेकिन जन जीवन के उपस्थित यथार्थ से आँखें भी नहीं मूँद सकते थे । परिवार का विघटित एवं विश्रृंखलित रूप अपने तक ही परिसीमित न रह कर समस्त सामाजिक ढाँचे में परिवर्तन ले आता था । प्रेमचन्द परिवार की परम्परित छवि को ही बनाये रखना चाहते थे । तिस पर भी उन्होंने उसकी जर्जरावस्था के चित्रण में किसी प्रकार का संकोच नहीं किया । कुटुम्ब के विघटन के सभी पहलुओं को उकेरा गया है।"[1] इसीलिए प्रेमचन्द ने अपने चारों ओर के जीवन से सामग्री ली और जीवन के स्पन्दन से अपना कथा साहित्य स्पन्दित कर भावी जीवन के प्रशस्त और उज्वल मार्ग की ओर संकेत किया । अपने चारों ओर के यथार्थ जीवन के आधार पर अपने कल्पना कौशल से भावी भव्य विशाल भवन की रूप-रेखा तैयार की । उनके कथा साहित्य में मानो चरित्र का विस्तार है, उसका देवत्व और पशुत्व दोनों हैं, उसका उत्कर्ष और जीवन की विभिन्न दिशायें हैं ।"[2] प्रेमचन्द के पारिवारिक चित्रण में इस विस्तार के अनेक संकेत मिलते हैं ।

---

1. वातायन 10 अक्तूबर 80 से जनवरी 81
2. परिप्रेक्ष्य और प्रतिक्रियाएँ डॉ. लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय; पृष्ठ 9।

जयशंकर प्रसाद के उपन्यास

जयशंकर प्रसाद की पारिवारिक संकल्पना में स्त्री-पुरुष का समझौता पूर्ण जीवन ही महत्वपूर्ण है । साथ में स्त्री-पुरुष के जीवन की मूल भावनाओं का विश्लेषण करते हुए व्यक्तिवादी जीवन दृष्टि का परिचय भी वे देते हैं । वे पारिवारिक जीवन में प्रेम को दो व्यक्तियों का शारीरिक आकर्षण न मानकर दो हृदयों का मधुर मिलन मानते हैं । वे विवाह का आधार धन को न मानकर प्रेम को ही मानते हैं । प्रसादजी ने प्रेम-पद्धति को अपनाकर भारतीय संस्कृति का समन्वय विवाह पद्धति में किया है । वे पत्नी को उसकी दयनीय स्थिति से उठा कर सम्मानपूर्ण पद देने के पक्ष में हैं । वे पारिवारिक जीवन की सफलता केलिए पति-पत्नी की निष्ठा को बहुत अवश्यक मानते हैं । उन्होंने पत्नी के अधिकारों और कर्तव्यों को पारिवारिक जीवन की सीमा में ही निर्धारित किया है । पत्नी पारिवारिक जीवन से मुक्त होकर शान्ति प्राप्त नहीं कर सकती । "इरावती" उपन्यास में अपने इस विचार की पुष्टि हुई है । उनके अनुसार सफल गृहिणी वही है - "जो एकमात्र पतिकुल की कल्याण कामना से भरी हुई दिनान्त में भी सबको खिला-पिला कर स्वयं यज्ञ-अवशिष्ट अन्न खाती हुई उपालम्भ न देकर प्रसन्न रहती है । वह गृहिणी है, अन्नपूर्णा है ।"[1]

प्रसादजी अपने उपन्यासों में दाम्पत्य सम्बन्धों के सम्यक निर्वाह की दिशा में अत्यन्त सचेष्ट है । उन्होंने स्पष्ट व्यक्त किया है कि पारस्परिक प्रेम, विश्वास, सहयोग और सौहार्द द्वारा सुखमय पारिवारिक जीवन बिता सकता है । "तितली" उपन्यास में तितली आदर्श भारतीय पत्नी और गृहिणी है । वह अनेक विरोधों के बावजूद अपने बाल सखा मधुबन से शादी करती है । दुर्भाग्य की बात है कि लम्पट महन्त का गला घोंट कर मधुबन अन्तर्धान हो जाता है तो तितली उसके मुकदमे की पैरवी केलिए दर-दर भटकती है । इसी बीच उसे अपने

---

1. इरावती - जयशंकर प्रसाद ; पृष्ठ 87

समाज से अनेक यातनाओं का सामना करना पड़ता है । पति केलिए उसके मन मे अगाध निष्ठा है । शैला से वह कहती है - "बहन शैला, संसार भर उनको चोर, हत्यारा और डाकू कह दे, किन्तु मैं जानती हूँ कि वह ऐसे नहीं हो सकते । इसलिए मैं कभी उनसे घृणा नहीं कर सकती । मेरे जीवन का एक कोना उनकेलिए, उस स्नेह केलिए सन्तुष्ट है ।"[1]

सफल पारिवारिक जीवन केलिए पति-पत्नी में पारस्परिक निष्ठा आवश्यक है । विश्वासाघात होने से दोनों का जीवन अभिशप्त बन जाता है । "तितली" उपन्यास में श्यामलाल अपनी पत्नी के प्रति विश्वासाघात करते हुए एक लेडी डाक्टर अनवरी को लेकर कलकत्ता भाग जाते हैं, फलस्वरूप माधुरी का पारिवारिक जीवन अभिशप्त बन जाता है । वह कहती है - "मैं यह जानती हूँ कि मेरे पति सदाचारी नहीं हैं, उनका मुझ पर स्नेह भी नहीं, तब भी यहमेरे मान का प्रश्न था और उससे भी मुझे धक्का मिला । मेरा हृदय टुक टुक हो रहा है ।"[2]

इस उपन्यास की अनवरी पाश्चात्य शिक्षा से प्रभावित है । यह परम्परागत वैवाहिक सम्बन्ध का विरोध करती है । विवाह के सम्बन्ध में उसकी राय है - "मैं तो प्राणी का प्राणी से जीवन भर के सम्बन्ध में बँध जाना दासता समझती हूँ, उसमें आगे चलकर दोनों के मन में मालिक बनने की विद्रोह भावना छिपी रहती है।" [3]

प्रसादजी के "तितली" उपन्यास में आर्थिक अधिकारों की प्रतिस्पर्द्धा एवं प्रभुत्व के कारण संयुक्त परिवार का जर्जर स्वरूप दिखाया गया है । संयुक्त परिवार के एक सदस्य इन्द्रदेव भारतीय संयुक्त परिवार के दोषों पर विचार करते हैं - "भारतीय सम्मिलित कुटुम्ब की योजना की कड़ियाँ चूर-चूर हो रही हैं, वह आर्थिक संगठन अब नहीं रहा, जिसमे कुल का एक प्रमुख सबके मस्तिष्क का संचालन

---

1. तितली जयशंकर प्रसाद ; पृष्ठ 246
2. वही ; पृष्ठ 144
3. वही ; पृष्ठ 119

करता हुआ रुचि को समता का भार ठीक रखता था । प्रत्येक प्राणी, अपनी व्यक्तिगत चेतना का उदय होने पर, एक कुटुम्ब में रहने के कारण अपने को प्रतिकूल परिस्थिति में देखता है । सब जैसे भीतर-भीतर विद्रोही मुँह पर कृत्रिमता और उस घड़ी की प्रतीक्षा में ठहरे हैं कि विस्फोट होके उछल कर चले जाएँ।"[1]

प्रसादजी के उपन्यास ""कंकाल" में बालक रंजन को आठ साल की आयु में माता एक महात्मा का शिष्य बना देती है । गुरु की मृत्यु हुई तो वह उनके मठ का अधिकारी बन जाता है । तब से वह देवनिरंजन कहलाने लगता है । अब वह बीस वर्ष का युवक है । उसकी सखी उन्नीस साल की किशोरी का विवाह श्रीचन्द्र से होता है । सन्तान की उत्कट कामना से पति समेत वह निरंजन के पास पहुँचती है । किशोरी महात्मा से सन्तान का वरदान पाती है । उसका पति श्रीचन्द्र उसे छह महीने केलिए आश्रम में रहने केलिए छोड़ कर स्वयं अमृतसर चला जाता है । किशोरी का एक पुत्र पैदा होता है तो उसका नाम विजय रखा जाता है । पुत्र के पैदा होने पर श्रीचन्द्र निर्णय करता है कि किशोरी अपने जारज सन्तान के साथ काशी में रहे । दूसरी ओर देवनिरंजन के वरदान से रामा नाम की एक विधवा यमुना नाम की एक बच्ची को जन्म देती है । जब दोनों बड़े हुए तो विजय यमुना की ओर आकृष्ट होने लगता है । लेकिन विवाह नहीं होता । विजय का परिचय मुसलमान लड़की गाला से, धनवती विधवा की लड़की से होता है ।

विजय और यमुना का प्रेम, विवाह में परिणत नहीं होता । यमुना इस विषय पर अपना विचार प्रकट करती है - "मैने केवल एक अपराध किया है, वह यही है कि प्रेम करते समय साक्षी नहीं इकट्ठा कर लिया था और कुछ मन्त्रों से कुछ लोगों को जोर पर उसका उल्लेख नहीं कर लिया था, पर किया था प्रेम । यदि उसकायही पुरस्कार है तो मैं इसे स्वीकार करती हूँ ।"[2] प्रसादजी इस उद्धरण के माध्यम से पारिवारिक जीवन में प्रेम की महत्ता को स्पष्ट करते हैं । इसके

---

1. तितली जयशंकर प्रसाद ; पृष्ठ 109
2. कंकाल जयशंकर प्रसाद ; पृष्ठ 217

बावजूद प्रसादजी का यह उपन्यास पारम्परिक सामाजिक दृष्टिकोण को अधिक महत्व देने के पक्ष में भी है ।

प्रसादजी मानते हैं कि स्त्री-पुरुष सम्बन्धों केलिए उत्तम व्यवस्था विवाह ही है । लेकिन तत्कालीन समाज में विवाह सम्बन्धी जो खोखली आचरण है उसे दूर करना है । विवाह की जो पवित्रता है उसका संरक्षण अवश्यक है । उसके अभाव में पारिवारिक जीवन टूट जाता है । प्रसादजी विवाह के अन्तर्गत प्रेम को ही महत्वपूर्ण घटक मानते हैं । वे स्त्री केलिए स्वच्छन्द प्रेम की माँग करते हैं । इस उपन्यास में नवयुग की चेतना का प्रतीक विजय, घण्टी से प्रेम की महत्ता का प्रतिपादन यों करता है - "घण्टी, जो कहते हैं अविवाहित जीवन पाशव है, उच्छृंखलता है वे भ्रान्त हैं । हृदय का सम्मिलन हो तो व्याह है । मैं सर्वस्व तुम्हें अर्पण करता हूँ और तुम मुझे, इसमें किसी मध्यस्थ की आवश्यकता क्यों - मन्त्रों का महत्व कितना ? झगड़े की, विनिमय की, यदि सम्भावना रही तो समर्पण ही कैसा । मैं स्वतन्त्र प्रेम की सत्ता स्वीकार करता हूँ, समाज न करे तो क्या ?"[1] अविवाहित जीवन प्राकृतिक नियमों तथा प्राणि-शास्त्रीय तत्वों के खिलाफ़ है । धार्मिकता के तौर पर अविवाहित जीवन बिताने से व्यक्ति - चाहे पुरुष हो चाहे स्त्री - का जीवन पथभ्रष्ट होता है । अत: स्वस्थ समाज के निर्माण में स्वस्थ पारिवारिक जीवन भी आवश्यक है ।

"कंकाल" उपन्यास की मूल प्रेरणा स्त्री-पुरुष सम्बन्ध है और उसमें व्यक्ति स्वातन्त्र्य का स्वर मुखरित है । स्त्री-पुरुष सम्बन्ध को व्यावहारिक स्वतन्त्रता और व्यक्तिगत विकास पर बल भी है । उपन्यास के प्राय: सभी पात्रों के जीवन में प्रेम का सन्दर्भ है । "पात्रों की बातचीत में नवयुग के अन्त:करण से निकली हुई वाणी की प्रतिध्वनि प्रत्यक्ष हो उठती है जिसमें प्रेम को व्यवसाय के ऊपर स्थान दिया गया है और व्यापारिक विवाह की भावना पर जितने हमारे जीवन को मृतक-सा बना दिया है, कुठाराघात किया गया है ।

---

1. कंकाल जयशंकर प्रसाद ; पृष्ठ 175-76

स्वतन्त्र प्रेम की सम्भावना तभी हो सकती है जब स्त्री-पुरुष दोनों स्वतन्त्रता का अनुभव करेंगे । स्वतन्त्रता का आधार उच्छृंखलता नहीं, संयम है ।"[1] पारिवारिक जीवन के चुनाव में स्त्री-पुरुष को समान अधिकार तथा आज़ादी मिलती है । अधिकार तथा आज़ादी से यह मतलब नहीं कि स्त्री और पुरुष सामाजिक विधि-नियमों का उल्लंघन करे या वे समाज से बाहर आ जाए । सामाजिक मर्यादाओं का पालन करके ही स्त्री-पुरुष स्वतन्त्रता को प्राप्त कर सकते हैं ।

विश्वम्भर नाथ शर्मा कौशिक के उपन्यास

विश्वम्भर नाथ शर्मा कौशिक प्रेमचन्द परम्परा के उपन्यासकार हैं । प्रेमचन्द की तरह ही वे अपने उपन्यासों में सामाजिक जीवन यथार्थ को चित्रित करते हैं । लेकिन उनमें उतनी गहराई नहीं जितनी प्रेमचन्द में है । "भिखारिणी" उपन्यास का नन्दराम ज़मीनदार का इकलौता बेटा है जो अनपढ़ है । वह अपने गाँव की एक लड़की सोना से प्रेम करता है । उससे शादी करना चाहता है । जब वह अपनी इच्छा पिताजी के सम्मुख प्रस्तुत करता है तो पिता अर्जुनसिंह एकदम बिगड़ जाता है । "शंभुसिंह जिसके घर में भूनी भाँग नहीं, जो मेरा खेतिहर है, जो मेरे सामने बात करते हुए थर्राता है - उसे मैं अपना समधी बनाऊँ । यह तो सात जनम नहीं हो सकता ।"[2] नायक का साहसी होने के कारण अन्त तक वह अपने निश्चय पर अटल रहता है तथा और कोई उपाय न देखकर वह प्रेमिका के साथ भाग जाता है । वैवाहिक जीवन में प्रेम की आवश्यकता को महत्व देकर उपन्यासकार ने भिखारिणी उपन्यास की रचना की है । नायक नन्दराम ने अपने पिता से लड़ने का साहस दिखाया है । यह मनोस्थिति तत्कालीन सामाजिक गतिविधियों के प्रति उपन्यासकार की प्रतिक्रिया है । पुत्र-पुत्री के विवाह के सम्बन्ध में माता-पिता जो निर्णय लेते हैं, वे बिलकुल प्राचीन परम्परा के अनुसार होते हैं । उसमें प्रेम के प्रति कोई आस्था नहीं है । इस सामाजिक स्थिति का खण्डन इस उपन्यास में हुआ है ।

---

1. हिन्दी कथा साहित्य : गंगाप्रसाद पांडेय, पृष्ठ 72
2. भिखारिणी विश्वम्भर नाथ शर्मा कौशिक ; पृष्ठ 43

जब अपनी पत्नी सोना की मृत्यु हुई तो नन्दराम अपनी बच्ची जस्सी को साथ लेकर भीख माँगने को विवश होता है । यों वह रामनाथ के घर पहुँचता है । रामनाथ के परिवार वाले नन्दराम के प्रति बड़ा उदारता दिखाते हैं । अत: वह निर्णय कर लेता है कि वह इस घर में रह कर नौकरी करके आजीविका का निर्वाह करे । इसी के साथ बालक रामनाथ तथा नन्दराम की पुत्री के बीच जो आपसी प्यार पनपा हुआ था उसका उनके बढ़ने के साथ प्रेम में परिणत होता है । दुर्भाग्य से रामनाथ का विवाह दूसरी लड़की के साथ सम्पन्न होता है । इस पर जो मानसिक व्यथा जस्सी को होती है जिससे पिता नन्दराम भी बहु परेशान है । कोई और उपाय न सूझने से नन्दराम अपनी बेटी जस्सी के सामने यह प्रस्ताव रखता है कि - "तो क्या हुआ, एक आदमी के क्या दो विवाह नहीं होते ।"[1] पिता के इस मन्तव्य का जस्सी विरोध करके कहती है - "वहमान भी जाय लेकिन मैं तो नहीं मानूँगी ।"[2] जस्सी के माध्यम से उपन्यासकार यह स्थापित करना चाहते हैं कि बहुविवाह प्रणाली शान्तिपूर्ण पारिवारिक जीवन केलिए बाधा उत्पन्न करती है ।

"माँ" उपन्यास में उपन्यासकार यह दिखाने की कोशिश करते हैं कि पारिवारिक जीवन में बच्चों के पालन-पोषण का अपना महत्व है । बच्चों के पालन-पोषण में अगर किसी भी प्रकार की कमी आ जाय तो उसका बुरा असर बच्चों के भविष्य पर पड़ता है । बच्चों को वांछित दिशा देने में जो माता-पिता अपरिचित रहते हैं, वे असल में भूल ही करते हैं । यह भूल बच्चों के भविष्य को बर्बादी के साथ समाज के भविष्य की बर्बादी का कारण बन जाती है । "माँ" उपन्यास का गरीब परिवार, घासीराम तथा उसकी पत्नी सुलोचना जब अपने दोनों बच्चों के पालन-पोषण में पराजित हो जाते हैं तो तीन वर्षीय श्यामनाथ के पालन-पोषण का भार सन्तानविहीन धनी दम्पति ब्रजमोहन-सावित्री उठा लेते हैं । यही नहीं ब्रजमोहन-सावित्री परिवार श्यामनाथ के पिता घासीराम को

---

1. भिखारिणी विश्वंभर नाथ शर्मा कौशिक ; पृष्ठ 225
2. वही ; पृष्ठ 225

अपने घर में नौकरी भी देता है । यद्यपि बहुत मुश्किल से सुलोचना अपने बड़े पुत्र शम्भु का पालन-पोषण करती है फिर भी अपने पुत्र के प्रति वात्सल्य प्रदान करने में वह पीछे नहीं रहती । यों अपनी माता के वात्सल्य को ख्याल में रह कर बड़ा पुत्र शम्भु युवक हो जाता है, समाजयोग्य व्यक्ति बन जाता है । इसलिए शम्भुनाथ का कहना है - "मेरी माता एक सच्ची माता है । यही कारण है कि संसार में मैं सबसे अधिक उनसे स्नेह रखता हूँ । संसार में न कोई ऐसी प्राणी है जो मुझे माता से अधिक प्रिय हो ।"[1] "अपनी माता का बनाया हुआ हूँ । मेरी शिक्षा में भी उन्हीं की सहायता, उन्हीं के प्रोत्साहन ने काम किया ।"[2] बच्चा जब बड़ा होता है तो वह अपने माता-पिता के प्रति इसी उदात्त भावना का अधिकारी बन जाता तो यों समझ ले कि अपने बच्चों के भविष्य निर्माण में माता-पिता ने महान कार्य किये हैं ।

यद्यपि घासीराम-सुलोचना का परिवार आर्थिक विषमता में पड़ कर पिस रहा है फिर भी अपने छोटे पुत्र श्यामु को छोड़ने में सुलोचना का मातृहृदय अनुमति नहीं देता । माता का अपने बच्चे के प्रति जो मानसिक स्थिति है यह मात्र एक माता ही समझ सकती है । किसी भी अवस्था मे वह अपने बच्चे से अलग या दूर नहीं सह सकती । वह कहती है - "मैं यह समझती हूँ कि इसे वहाँ पूरा सुख मिलेगा । यहाँ वह सुख नहीं मिल सकता, पर क्या करूँ, ममता नहीं मानती । मेरा जी यह कहता है कि इसे मेरे पास रहने से ही सुख मिल सकता है और मुझे इसके पास रहने में ।"[3] माता सुलोचना यह स्पष्ट जानती है कि अपना छोटा पुत्र श्यामु ब्रजमोहन-सावित्री परिवार में सुखी रहेगा । यह ठीक है ही । लेकिन माता का वात्सल्यपूर्ण हृदय किसी भी माने में अपने पुत्र को छोड़ने को तैयार नहीं, चाहे उसे वहाँ स्वर्गसमान सुविधाएँ मिल जाये । माता के पुत्र-वात्सल्य के आगे सब कुछ नगण्य स्थापित किया गया है ।

---

1. माँ कौशिक, पृष्ठ 403
2. वही ; पृष्ठ 402
3. वही ; पृष्ठ 55

चतुरसेन शास्त्री के उपन्यास

सामाजिक जीवन में पारिवारिक जीवन की अनिवार्यता और आवश्यकता पर ज़ोर देकर ही आचार्य चतुरसेन शास्त्री ने उपन्यास लिखे हैं। उनकी मान्यता है कि सामाजिक व्यवस्था से पारिवारिक जीवन-स्थिति को अलग नहीं रख सकते। पारिवारिक जीवन में स्त्री और पुरुष को समान स्थिति पर रखने के वे पक्षपाती हैं। उनकी राय में पति और पत्नी को परिवार में एक दूसरे का मालिक या गुलाम नहीं होना है, यदि किसी परिवार में यही स्थिति आ जाती तो वह परिवार पतन की गहराई में पड़ जाता है।

माता-पिता द्वारा आयोजित विवाह के कारण "नीलमणि" उपन्यास की नीलम का वैवाहिक तथा पारिवारिक जीवन अशान्तिपूर्ण है। उसके विचार में यह स्त्रियों के प्रति अन्याय है कि उनकी बिना मर्जी के, बिना रुचि जाने माता-पिता जिनके साथ चाहे उन्हें बाँध दे। "आप क्या यही न्याय समझते हैं कि स्त्रियों को बिना उनकी मर्जी के, बिना उनकी रुचि जाने, माता-पिता जिनके साथ चाहे उन्हें बाँध दे।"[1] उपन्यासकार माता-पिता के द्वारा आयोजित विवाह पद्धति को अनमेल विवाह की समस्या के रूप में प्रस्तुत करते हैं। प्रस्तुत उपन्यास की नीलम पाश्चात्य सभ्यता से प्रभावित है। वह अपने इच्छानुसार विवाह करना चाहती है, पर उसकी इच्छा के विरुद्ध विवाह हो जाने के कारण वह असन्तुष्ट है। उसकी इच्छा के विरुद्ध उसकी शादी महेन्द्र से सम्पन्न हो जाती है। नीलम प्रथम भेंट में ही अपने पति महेन्द्र का अपमान कर बैठती है। वह अपने पति को अपरिचित मानकर उसे अपने व्यक्तिगत एवं घरेलु मामलों में दखल देने के लिए मना कर देती है। वह कहती है - "आपके चरित्र स्वभाव और विचारों से मैं अपरिचित हूँ और आप मेरे से। फिर मैं यह कहूँ कि आप अपरिचित है तो इसमें आपको असन्तुष्ट न होना चाहिए।"[2]

---

1. नीलमणि आचार्य चतुरसेन शास्त्री; पृष्ठ 60
2. वही; पृष्ठ 18

"आत्मदाह" उपन्यास की भगवती का सास के साथ मधुर सम्बन्ध नहीं है । वह घर की शान्ति का भंग कर देती है । भगवती की सास बड़ी सहनशीला है । वह अपने पुत्र एवं पुत्र-वधुओं को समान रूप से प्यार करती है । भगवती सास द्वारा दी गयी कर्तव्य-सम्बन्धी शिक्षा का अस्वीकार करके जवाब देती है - "मैं कोई बाँदी नहीं हूँ । घर भर का धन्धा मुझसे नहीं होगा । फिर अभी तो ब्याहता ही हूँ, मैं ने तुम्हारे घर में कौन-सा पा लिया ।"[2]

इन दोनों उपन्यासों के उद्धरणों से यह विदित हो जाता है कि एक ओर माता-पिता का अपनी बेटी के पारिवारिक जीवन पर अपना अधिकार जमाने की आकांक्षा प्रकटित है, चाहे पुत्री शिक्षित हो या अशिक्षित । माता-पिता की परम्परागत अधिकार भावना के विरुद्ध पुत्री का आक्रोश यहाँ रूपायित है तो दूसरी ओर सहनशीला सास के प्रति बहु की मनमानी का चित्र भी प्रस्तुत किया गया है ।

आचार्य चतुरसेन शास्त्री ने अपनी कथाकृतियों में दाम्पत्य जीवन की भावभूमियों का बड़ा सूक्ष्म विश्लेषण किया है । उन्होंने अनेक युगों का मनो-विश्लेषण करके दाम्पत्य जीवन की सफलता और असफलता का प्रामाणिक साक्ष्य प्रस्तुत किया है । उनके मतानुसार सेवा-भाव एवं कर्तव्य के प्रति जागरूकता सफल दाम्पत्य जीवन के लक्षण है । "आत्मदाह" उपन्यास में चौदह वर्ष के दीर्घ वैवाहिक जीवन में भी सुधीन्द्र और उसकी पत्नी माया के बीच कभी मनोमालिन्य तक नहीं आता । माया अपने सेवा-भाव से सास एवं पति दोनों को प्रसन्न रखती है, वह गृहिणी के कर्तव्य के प्रति जागरूक है । पति-सेवा में हमेशा तत्पर रहने के कारण उनका दाम्पत्य जीवन बड़ा सुखी एवं आदर्शमय है । इस में यह भाव निहित नहीं है कि पत्नी, पति की गुलाम बन कर रहती है ।

उपन्यासकार के परिवार सम्बन्धी विचार बड़े क्रान्तिकारी हैं । वे पत्नी को पति की दासी नहीं मानते । उनकी पत्नी यद्यपि पति की अर्धांगिनी

---

1. आत्मदाह आचार्य चतुरसेन शास्त्री ; पृष्ठ 57

और जीवन संगिनी है फिर भी वह अपने पति की भाँति अपने घर की स्वामिनी भी है । दोनों एक दूसरे के पूरक हैं । उनकेलिए स्त्री न बच्चा पैदा करने या पुरुषों को भोगने की वस्तु है, न आ कारिणी दासी है । वे स्त्री जागरण का तो समर्थन करते हैं, किन्तु स्वच्छन्दता का नहीं । उनका धारणा है कि स्त्री का कर्मक्षेत्र व्यापक होने पर भी उसका वास्तविक कार्यक्षेत्र उसके घर का आंगन ही है । शास्त्रीजी के अनुसार समाज में स्त्री केलिए समानता के अधिकार के साथ पारिवारिक जीवन में सभी प्रकार की सुविधाएँ मिलनी हैं । आज स्त्री आर्थिक अधिकारों के अभावों से संत्रस्त है । निश्चय ही आर्थिक समानाधिकार मिलने पर वह माता, पत्नी और समाज की एक महत्वपूर्ण अंग बन कर अपने व्यक्तित्व का निर्माण कर सकती है ।

आचार्य चतुरसेन शास्त्री सफल दाम्पत्य जीवन केलिए स्त्री-पुरुष की समानता को अधिक महत्व देते है । उनके मतानुसार संभोग-सुख एवं सम्भोग-समानता के अभाव में एक दूसरे के प्रति घृणा के बीज अंकुरित हो जाते हैं और कालान्तर में विवाह-विच्छेद हो जाता है या दोनों में से कोई एक या दोनों ही परस्त्रीगामी या परपुरुषगामी हो जाता है । वह प्रेम की महत्ता को स्वीकार करते हुए भी विवाह से पूर्व के प्रेम को उचित नहीं ठहराते । वे माता-पिता द्वारा आयोजित परम्परागत विवाह को ही उचित मानते हैं । "नीलमणि" उपन्यास के माध्यम से वे स्पष्ट करते हैं - "पहले प्रेम करके पीछे विवाह करना, यह सिद्धान्त सुनने में ही अच्छा है, पर यह सर्वथा अव्यवहार्य है । यदि इसे अमल किया जाएगा तो जीवन की पवित्रता, सतीत्व, पत्नी होने की योग्यता, सब कुछ स्त्री का खतरे में पड़ जाएगा । पुरुष भी गिरने से बच नहीं सकता, पर स्त्री की जैसी सारे संसार में सामाजिक स्थितिहै, उससे स्त्री का सर्वनाश होने का इस सिद्धान्त से भारी भय है ।"[1]

---

1. नीलमणि आचार्य चतुरसेन शास्त्री ; पृष्ठ 122

आचार्य चतुरसेन शास्त्री स्त्री और पुरुष को जीवन सत्ता के दो अधूरे पक्ष बतलाते हैं । दोनों यदि अलग-अलग रहेंगे तो सृष्टि के सब काम समाप्त हो जाएँगे । वे अपने आत्मदाह उपन्यास में कहते हैं - "स्त्री-पुरुष दोनों ही भिन्न वस्तु नहीं, एक जीवन सत्ता के दो अधूरे भाग है । स्त्री-पुरुष संयुक्त हो कर ही एक जीवित और चैतन्य सत्व बनते हैं । जैसे धन और ऋण दो प्रकार के धारावाही तारों से बिजली की धारा प्रवाहित होती है, उसी प्रकार स्त्री और पुरुष के सम्भोग से प्रजनन-प्रवाह चलता है, यदि स्त्री-पुरुष अत्यन्त पवित्रता तथा सामाजिक मर्यादा का पालन करते हुए संयुक्त न हो, तो परमेश्वर की सृष्टि के सब काम ही समाप्त हो जाये ।"[1]

आचार्य चतुरसेन शास्त्री आदर्श पारिवारिक जीवन के समर्थक हैं । यद्यपि वे स्त्री को समान अधिकार देने के पक्ष में हैं फिर भी स्त्री को अपने कर्तव्यों से विचलित होते नहीं दिखाते । स्त्री और पुरुष को अपने-अपने दायरों में खड़े होकर, स्वतन्त्र होकर ही, पारिवारिक मान्यताओं को निभाना है ।

वृन्दावनलाल वर्मा के उपन्यास

वृन्दावनलाल वर्मा अपने सामाजिक तथा ऐतिहासिक उपन्यासों के माध्यम से भारतीय परिवार का आदर्श रूप प्रस्तुत करते हैं । यद्यपि वृन्दावनलाल वर्मा ऐतिहासिक उपन्यासकार के रूप में जाने जाते हैं फिर भी उनके उपन्यासों में पारिवारिक जीवन का चित्रण है । यह तो सर्वविदित है कि सभी प्रकार की सामाजिक, आर्थिक, ऐतिहासिक, मनोवैज्ञानिक गतिविधियों का मूल आधार परिवार तथा पारिवारिक जीवन ही है । वे विभिन्न युगों के परिवारों का विश्लेषण करते हुए तत्युगीन दाम्पत्य सूत्रों का सफल संकलन करते हैं । उनके मतानुसार पति-पत्नी के आपसी झगड़ों द्वारा पारस्परिक प्रेम में बाधा उपस्थित हो जाने से दाम्पत्य तथा पारिवारिक जीवन असफल रहता है । उपन्यासकार सफल दाम्पत्य

---

1. आत्मदाह आचार्य चतुरसेन शास्त्री ; पृष्ठ 127

जीवन केलिए एक दूसरे को कर्तव्यनिष्ठा एवं वैचारिक एकता पर अधिक बल देते हैं । दासता के स्थान पर पवित्र प्रेम सफल दाम्पत्य तथा पारिवारिक जीवन को आधार शिला है ।

"मृगनयनी" उपन्यास में कर्तव्यनिष्ठा और प्रेम को महत्व देनेवाली मृगनयनी और राजा मानसिंह के दाम्पत्य जीवन को प्रस्तुत करते हैं जो आदर्श दाम्पत्य जीवन का प्रतीक है । मृगनयनी अपने संयम, त्याग, सहनशीलता एवं कर्तव्य भावना से अपने पति महाराज मानसिंह को कर्तव्य की ओर प्रेरित करती है । वह स्वयं नियम-संयमपूर्ण जीवन व्यतीत करती रहती है और राजा मानसिंह को भी महत्वजनीन पत्नी की तरह देश और जनता के हित एवं सुरक्षा केलिए प्रेरणा देती है । राजा मानसिंह के साथ मृगनयनी का प्रेम बड़ा ही सात्विक एवं वासनामुक्त है । महाराज मानसिंह कहते हैं - "तुम मेरे मन की राणी हो, हम दोनों इस भवन के एक खण्ड में पालनकर्ता विष्णु भगवान का पूजन-ध्यान करेंगे । इसलिए यह भवन मन्दिर कहलाएगा । तुम मेरी मानिनी हो, मैं तुम्हारा मान, इसलिए इसका नाम होगा मान-मन्दिर ।"[1]

भारतीय समाज में वैवाहिक नियम इतने कठोर है कि विवाह के बाद स्त्री का अन्य किसी व्यक्ति से प्रेम या विवाह के पूर्व का प्रेम पति को सह्य नहीं होता । स्त्री किसी प्रकार अपनी पातिव्रत धर्म का निर्वाह करना चाहती है पर पति का शंकालु दृष्टिकोण स्त्री के जीवन को नारकीय बना देता है । "अचल मेरा कोई उपन्यास के कुन्ती एवं सुधाकर के दाम्पत्य जीवन में अचल के आगमन के बाद सुख-शान्ति विलुप्त हो जाता है । सुधाकर अपनी पत्नी कुन्ती को अतिशय प्यार करता है, पर कुन्ती का आकर्षण सुधाकर की ओर न होकर अपने प्रेमी अचल की ओर बढ़ जाता है । फलस्वरूप वह अपने पति की उपेक्षा करने लगती है । धीरे-धीरे कुन्ती अचल से मिलने केलिए अपने पति से कपट-व्यवहार करती है और कपट का

---

1. मृगनयनी वृन्दावनलाल वर्मा ; पृष्ठ 388

पर्दाफाश होने पर कुन्ती और सुधाकर में मन मुटाव चरम सीमा पर पहुँच जाता है ।

परम्परागत विवाह प्रथा का वृन्दावनलाल वर्मा विरोध करते हैं । इस उपन्यास के एक शिक्षित पात्र का मत है कि - "विवाह संस्कार कदापि न माना जाए । सिवाय हिन्दुओं के अब उसको कोई नहीं पूजता । विवाह को महज एक सिविल कन्ट्राक्ट, केवल एक पारस्परिक इकरार माना जाय और उस इकरार को ज़िन्दगी एक साल या दो साल को रखी जाय । पति-पत्नी हर दूसरे-तीसरे साल उस इकरार को ताज़ा कर सकते हैं । न करें तो विवाह सम्बन्ध को छिन्न-भिन्न खण्डित समझ लिया जाए ।"[1] वृन्दावनलाल वर्मा विवाह का विरोध इसलिए करते हैं कि विवाह के बाद स्त्री को पुरुष की गुलाम बननी पड़ती है । मालिक-गुलाम के रूप में वैवाहिक तथा पारिवारिक जीवन शान्तिपूर्ण नहीं होता है । वे स्त्री को भी व्यक्ति मानते हैं, स्त्री के जीवन में स्वतन्त्रता भी चाहते हैं । विवाहित जीवन से इनका लोप हो जाता है ।

उपन्यासकार माता-पिता द्वारा आयोजित अनमेल विवाहों पर तीखा व्यंग्य कसते हैं । उनकेलिए वैवाहिक जीवन के मूल में प्रेम ही महत्त्वपूर्ण कार्य करते हैं । इस प्रेम के स्पष्टीकरण में अन्तर्जातीय प्रेम विवाह का भी वे समर्थन करते हैं । "मृगनयनी" में लाखी और अटल के अन्तर्जातीय प्रेम विवाह के प्रति लेखक की पूर्ण सहानुभूति है ।

उपन्यासकार पत्नी के तेजोमय रूप को स्वीकार करते हैं । उनकी मान्यता है कि भारतीय पत्नी में प्रेम, ममता, दया, क्षमा और वीरता का अखण्ड आगार है । "नारी के बाह्य सौन्दर्य और लावण्य के परे उसमें निहित आन्तरिक तेज़ को खोज तथा उसके बाह्य और आन्तरिक गुणों में सामंजस्य स्थापित करना उनका लक्ष्य रहता है । उनकी यह नारी पुरुष से कहीं ऊँची है । उनकी

---

1. अचल मेरा कोई वृन्दावनलाल वर्मा ; पृष्ठ 200

दृष्टि में पुरुष शक्ति है तो नारी उसकी संचालक प्रेरणा ।"[1] उपन्यासकार का स्त्री के प्रति स्वस्थ दृष्टिकोण है । वे स्त्री को प्रेरणा और शक्ति का प्रतीक मानते हैं । वे उसे "जीवन की प्रेरणा, प्रातःकाल की उषा जैसी सजग करनेवाली"[2] के रूप में चित्रित करते हैं ।

सुखी दाम्पत्य जीवन केलिए वर्मा जी भी संयम, त्याग, सहनशीलता और कर्तव्य पर विशेष बल देते हैं । उसकेलिए उनकी मान्यता है कि पति-पत्नी में सात्त्विक प्रेम होना परम आवश्यक है । वे वासना के स्थान पर पवित्र प्रेम को सफल पारिवारिक जीवन की आधार शिला मानते हैं । मृगनयना का दाम्पत्य जीवन कर्तव्यनिष्ठा एवं सात्त्विक प्रेम से ही सफल सिद्ध होता है । उपन्यासकार पत्नी के सतीत्व को अधिक महत्व देते हैं ।

प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों में परिवार का स्वरूप

प्रेमचन्दोत्तर युग में, खासकर तीन प्रमुख उपन्यासकारों की रचनाओं में समाज का लोप हो गया है । लेकिन पारिवारिक जीवन-स्थितियों का लोप नहीं हुआ है । इसका प्रमुख कारण यह है कि इन उपन्यासकारों ने- जैनेन्द्र, अज्ञेय और इलाचन्द्र जोशी - व्यक्ति पात्रों को महत्ता दी है । प्रेमचन्दोत्तर युग के मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में जो परिवार चित्रित है वह व्यक्ति केन्द्रित परिवार है । प्रेमचन्द के उपन्यासों में भी व्यक्ति केन्द्रित परिवार है पर उसको रूपायित तथा विघटित करने में सामाजिक स्थितियों का स्थान है । इस दौर के व्यक्ति केन्द्रित परिवार में व्यक्ति का विचार, आचरण और प्रतिक्रियायें अधिक मुख्य हैं । व्यक्तिबद्ध दृष्टि के अनुरूप परिवार का स्वरूप गठित किया जाता है ।

"सुनीता" शीर्षक उपन्यास में श्रीकान्त और सुनीता पति-पत्नी हैं । वे मध्यवर्गीय हैं । वे एक दूसरे के प्रति अपनी ज़िम्मेदारियों को समझते हैं और आपसी

---

1. उपन्यासकार वृन्दावनलाल वर्मा शशिभूषण सिंहल ; पृष्ठ 170
2. मृगनयनी वृन्दावनलाल वर्मा ; पृष्ठ 345

प्रेम से आबद्ध हैं । श्रीकान्त चंचल है । वह तर्कशील है, भावुक और उदार है । उसके दाम्पत्य सम्बन्धों को स्थूल दृष्टि से देखनेवालों को ऐसे परिवार में किसी प्रकार का आन्तरिक तनाव दृष्टिगत नहीं हो सकता है । लेकिन विवाह के तीन वर्षों के अन्दर ही एक प्रकार की जड़ता उस परिवार को घेर लेती है । ऐसी अवस्था आ जाती है कि किसी बाहरी कारण के बिना ही "पति-पत्नी के बीच संवाद की स्थिति नहीं रह जाती । यदि रहती भी है, तो दो व्यक्ति नहीं, दो मुँह बोलते हैं ।"[1] इसी रिक्तता के कारण श्रीकान्त अपने परिवार में कुछ बदलाव लाना चाहता है । "श्रीकान्त चाहता है, घर में कुछ ऋतु बदले, नहीं तो वहाँ अलसता और जड़ता सी छाती जाती है । बहुतेरी प्यार ऐसा हो गया है कि कमरे में होने पर भी कई मिनट तक उसे सुनीता के कहने को कुछ नहीं सूझा है, और सुनीता भी चुपचाप रही है । तब दम घुट-घुट गया है । ऐसा क्यों हो जाना चाहिए, इसका कोई समर्थन, कोई कारण उसके मन को नहीं मिलता ।"[2] उन दोनों के सम्बन्धों में उत्पन्न अवसाद का कारण कोई यौन कुण्ठा नहीं है बल्कि जीवन की एकरसता है । प्रकृति तथा समाज के सम्पर्क से उनमें कोई परिवर्तन नहीं आया है । जीवन प्रवाह में कहीं रुकावट आ पड़ी है ।

हरिप्रसन्न एक उन्मुक्त व्यक्ति है । वह श्रीकान्त का मित्र है । श्रीकान्त हरिप्रसन्न को घर का सदस्य बना लेने की कोशिश करता है । वह उसके जीवन में किसी न किसी प्रकार स्त्री को ले आना चाहता है । हरिप्रसन्न योग्य प्रतिभासम्पन्न होते हुए भी निरुद्देश्य और अव्यवस्थित है । श्रीकान्त अपनी पत्नी को आदेश देता है कि वह हरिप्रसन्न को प्रसन्न रखे । इसमें वह अद्भुत द्वन्द्व से गुज़रती है । एक बार श्रीकान्त कहीं बाहर जाता है तो वह कह देता है कि उसकी अनुपस्थिति में हरिप्रसन्न को कोई असुविधा न हो । सुनीता की ओर आकृष्ट हरिप्रसन्न उसे क्रान्तिकारियों के दल में शामिल करने का ज़िद करता है

---

1. जैनेन्द्र के उपन्यास स्वच्छन्दतावादी परिप्रेक्ष्य में:कल्पना 238 ; डॉ.बच्चनसिंह
2. सुनीता जैनेन्द्रकुमार ; पृष्ठ ।।

और वह न चाहते हुए भी उसके साथ वन में जाता है । सुनीता में हरिप्रसन्न के प्रति एक रहस्यमय उन्मुक्तता का भाव जाग उठता है । आखिर वह सोच लेती है "स्त्री फिर किसलिए है यदि पुरुषों को प्रयोजन-दान, फल-दान में नियोजित नहीं करती ? क्या स्त्री इसलिए है कि पुरुष को अपने से निरपेक्ष रहने दे और महा-प्रकृति को वन्ध्या ? क्यों कि दुनिया को रेगिस्तान नहीं होना है, क्यों कि उसको लहलहाकर हरियाली हो उठना है, इसलिए क्या पुरुषों के इस जगत में विधाता ने हम स्त्रियों को नहीं सिरजा है ?"।

यहाँ उपन्यास के दो प्रकरण उद्धृत हैं जो दोनों सुनीता और श्रीकान्त के पारिवारिक स्थितियों से सम्बन्धित हैं । लेकिन उनमें परिवार को वे विशाएँ सन्दर्भित नहीं है जिनसे हमें पता चले कि उनकी समस्याएँ क्या हैं ! यह तो स्पष्ट है कि उनकी समस्या का आधार कोई सामाजिक स्थिति नहीं हैं । उनमें पात्रों की मानसिक स्थितियाँ मुख्य हैं । उनकी कुण्ठाएँ प्रमुख हैं । पारिवारिक तनाव से व्यक्ति उभर आता है । हरिप्रसन्न के सम्मुख वह अपने को, अपने स्त्री सहज अस्तित्व को पहचानना चाहती है । इसलिए परिवार को संस्कार-शीलता, परिवेश आदि मुख्य नहीं है । व्यक्ति मात्र का विकास और उसकी मानसिक ग्रन्थियों का विकास दिखाया गया है ।

"कल्याणी" उपन्यास की कल्याणी कमाऊ स्त्री है । उसकी मनोव्यथा गहरी है । वह सुन्दरी और सुयोग्य है । असरानी, कल्याणी को कौमार्यावस्था में उसे बदनाम करके चारों ओर से घेर कर, उसकी विवशता का लाभ उठाकर स्वयं उससे विवाह कर लेता है । कल्याणी का पारिवारिक जीवन अत्यन्त दुखद है । पति की स्वार्थमय पाशवीय मनोवृत्ति उसे पग-पग पर चुभती है । कल्याणी सब कुछ सहन करती है । परन्तु वह निडर भी है । वह अत्याचारों के आगे घुटने नहीं टेकती । समय-समय पर अत्याचार को चुनौती देकर अधिक कष्ट उठाती है ।

---

1. सुनीता जैनेन्द्र कुमार ; पृष्ठ 74-75

भारतीय स्त्री की नयी चेतना ने रूढ़िगस्त पातिव्रत के विरुद्ध क्रान्ति की है । कल्याणी का दाम्पत्यजीवन असफल है क्योंकि वह एक तरफ़ डाक्टरनी है और दूसरी तरफ़ गृहिणी । वह विवाह संस्था को स्वीकार करती हुई धर्मपरायण और पातिव्रत जीवन व्यतीत करना चाहती है । लेकिन उसका पति अत्यन्त शंकालु वृत्ति का है । वह चाहता है कि पत्नी डाक्टरनी का पेशा भी करे और किसी से मधुर व्यवहार और स्वच्छन्द आचार-विचार न रखे । डा॰असरानी कल्याणी पर दोषारोपण करते हुए उसे बुरी तरह पीटती है और वह सब चुपचाप सहन कर कहती है - "मैं आपके मन की गृह-लक्ष्मी बन कर स्वयं भी रहना चाहती हूँ पर वह तभी रह सकती हूँ जब डाक्टरनी न रहूँ । डाक्टर होकर अन्त:पुर की शोभा मुझसे बहुत न बढ़ेगी । उस हालत में हर किसी के सामने मुँह उघाड़े मिलना और बोलना होता है । यह आर्य नारी के योग्य नहीं है यह मैं नहीं कहती हूँ बल्कि उस आर्य परम्परा पर चलने की मैं अब इच्छा रखती हूँ दोनों में से कोई एक चुन कर मुझे दे दो - पातिव्रत या डाक्टरी । मैं पति में परायण हो जाऊँ, या डाक्टरी की कमाई करके दूँ, दोनों साथ होना कठिन है । पैर दो नावों पर रहेंगे तो हालत डगमग रहेगी और जो मेरे चुनने की बात हो तो मैं कहूँगी डाक्टर मैं नहीं बनना चाहती ।"[1]

कल्याणी स्त्री के पत्नीत्व को अपना धर्म समझती है । वह सनातन हिन्दु स्त्री की भाँति धार्मिक कृत्यों, पूजा-पाठ तथा पतीत्व में अटूट आस्था रखती है । उसका समस्त स्त्री जाति से यह आग्रह है कि वे सनातन धर्म सीखे । परम साधना और धर्म वही है । उसका अलग अधिकार कुछ न रहे, सब पति में खो जाए । वह पुन: स्मरण दिलाती है - "पति व्यक्ति नहीं है, वह प्रतीक है, इससे सती को यह सोचने का अधिकार नहीं है कि पति सदोष हो सकता है। अपंग हो, विकलांग हो, जैसा हो, पति, पति हो है । पति देवता है, स्मरण रहे कि वह देवता अपने आप में नहीं सतीत्व की महिमा के प्रकाश में हो वह देवता

1॰ कल्याणी जैनेन्द्रकुमार ; पृष्ठ 39

है । इसलिए व्यक्ति रूप में सन्देह बन कर पति के स्थान में चाहे जो हो, कैसा हो वह अपूर्ण हो, तभी उसको भी देवता बना सकती है ।"[1] भारतीय समाज में पति को परमेश्वर स्वीकारने का संकल्प है । तत्कालीन पुरुष प्रधान समाज ने पुरुष को बढ़ा-चढ़ा कर दिखाया है । स्त्री वर्ग इसे स्वीकारने को बाध्य है । अब भी इसी संकल्पना को स्त्री अपने हृदय में संजोकर बैठती है । इस संकल्पना के अनुसार पति के बाहरी आकर्षण का कोई महत्व नहीं । उसमें दैवीक परिवेश को गढ़ा दिया है । जैनेन्द्र कुमार की कल्याणी भी इसी परिवेश से सम्भवत: प्रभावित है । कल्याणी अपने पति डा॰असरानी के हाथों मार खाकर भी पति के प्रति समर्पिता बनी रहती है । कल्याणी तो अपने में सर्वगुण सम्पन्न होती हुई भी पति का अंकुश सहर्ष स्वीकार करती है, क्योंकि उसमें उसे एक तृप्ति, एक तुष्टि मिलती है । सत्य तो यह है - "जैनेन्द्र की नारी दूसरों को शरीर देने केलिए ही अवतरित हुई है । ऐसा करने में उसे किसी भी प्रकार की झिझक और संकोच का अनुभव नहीं होता । इनके उपन्यासों की मध्यवर्गीय नायिकाएँ व्यक्तित्वहीन हैं और चेतनाशून्य हैं, वे केवल वस्तु (कमोडिटी) हैं, जिनका उपभोग कोई भी कर सकता है ।"[2] उनकी स्त्रियाँ मातृत्व को स्त्री जीवन का सर्वस्व और उसकी सार्थकता समझ कर चुपचाप सभी अत्याचारों को सहन करती हैं ।

जैनेन्द्र के सभी पात्रों में परम्परागत मान्यताओं के प्रति बौद्धिक विद्रोह की भावना है, किन्तु वे प्राय: भावुकतापूर्ण करती हुई देखी जाती है । "जैनेन्द्र जी की यह मान्यता है कि मानव में दो मूल प्रवृत्तियाँ होती हैं, एक स्पर्धा की और दूसरी समर्पण की । दोनों की सत्ता व्यक्ति में सदा साथ रहती है । जहाँ व्यक्ति में "पर" के साथ संघर्ष करने की प्रवृत्ति होती है, वहाँ अपने "स्व" को "पर" में मिटाने की ओर भी व्यक्ति प्रवृत्त होता है ।"[3]

1॰ कल्याणी जैनेन्द्र कुमार ; पृष्ठ 8।
2॰ आलोचना उपन्यास विशेषांक, 13, पृष्ठ 131
3॰ जैनेन्द्र और उनके उपन्यास रघुनाथ सरन झालानी ; पृष्ठ 102

दाम्पत्य चित्रण में जैनेन्द्र अपने रूढ़िवादी दृष्टिकोण प्रस्तुत करते हैं । उनका दृष्टिकोण स्वस्थ और स्पष्ट नहीं है । "जैनेन्द्र सामाजिक जीवन से दूर जाकर जिस साहित्य को सृष्टि करते हैं, उसमें व्यक्ति के मानसिक संघर्ष और उसकी परिस्थितिजन्य समस्याएँ प्रमुख रूप से आती हैं, परन्तु उनका निरूपण करने में लेखक का दृष्टिकोण स्वस्थ और स्पष्ट नहीं है । "[1]

"त्यागपत्र" जैनेन्द्र कुमार का बहुचर्चित उपन्यास है जिसमें मातृ-पतृ विहीना लड़की मृणाल की व्यथा-गाथा अंकित है । मृणाल अपने भाई-भाभी के संरक्षण में रहती है । वह अपनी सहेली शीला के भाई से प्रेम करती है । रहस्य खुलने पर उसे बेंतों की बड़ी सजा मिलती है तथा उसकी पढ़ाई छुड़ा दी जाती है । बड़ी तत्परता से उसका विवाह एक अधेड़ पुरुष से कर दिया जाता है । विवाहोपरान्त वह और टूट जाती है । पुरुषप्रधान भारतीय समाज और हमारी परम्पराएँ किस प्रकार स्त्री शोषण पर केन्द्रित हैं, इसका अंकन "त्यागपत्र" में मिलता है । रूढ़ियों व परम्पराओं के आगे मृणाल का शान्त भाव से समर्पण व मूक विद्रोह एक ओर भारतीय समाज में स्त्री की निरीहता और विवशता को पूरी तीव्रता से उभारता है तो दूसरी ओर हमारे आदर्शों व परम्पराओं के खोखलेपन को बड़ी चाव से चित्रित करता है । "मृणाल नये घर से समझौता न कर सकी और प्रायः वह अपने पति के हाथ बेंतों से मार खाती है ।"[2]

अन्त में यह भेद खुल जाता है कि मृणाल के विवाह के पूर्व अपनी साथी शीला के भाई से प्रेम था जो अब कहीं सिविल सर्जन है, तथा आजन्म अविवाहित रहने का प्रण किया है । इस बात पर पति उसे घर से निष्कासित कर देता है । मृणाल भतीजे प्रमोद से कहती है - " मैं स्त्री-धर्म को पति-धर्म ही मानती हूँ उसका स्वतन्त्र धर्म मैं नहीं मानती । क्या पतिव्रता को यह चाहिए कि पति उसे नहीं चाहता तब भी वह अपना भार उस पर डाले रहे । वह मुझे नहीं देखना चाहते,

---

1. आधुनिक साहित्य आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ; पृष्ठ 207
2. त्यागपत्र जैनेन्द्र कुमार ; पृष्ठ 28

यह जानकर मैं ने उनको आँखों के आगे से हट जाना स्वीकार कर लिया । उन्होंने कहा - मैं तेरा पति नहीं हूँ, तब मैं किस अधिकार से अपने को उन पर डाले रहती । पतिव्रता का यह धर्म नहीं है ।"[1] जैनेन्द्र की स्त्री पात्रों की चरित्रगत विशेषता के आधार पर सत्यप्रकाश मिलिन्द का यह मन्तव्य है कि "सबसे बड़ी विचित्रता यह है कि जैनेन्द्र जी के सभी नारी पात्र अपने पति के अतिरिक्त पर-पुरुष की ओर आकर्षित होते हैं । इस आकर्षण का प्रमुख स्त्रोत फ्रायड का यौनवाद ही है । सामाजिक और गार्हस्थ्य जीवन का असन्तोष भी इस प्रकार के चित्रण केलिए उत्तर-दायी हो सकता है, परन्तु प्रधान रूप से इसका कारण यौनाकर्षण ही है ।"[2]

भारतीय परम्परा से जकड़ी हुई होने के कारण स्त्री अपने माता-पिता द्वारा आयोजित विवाह को यों स्वीकार करती है । पिता जिसके गले बाँधना चाहता है स्त्री को वहीं बँधना पड़ता है । इस प्रकार वह आर्थिक गुलामी से जकड़ दी जाती है । ऐसी स्थिति मे पत्नी के स्वतन्त्र अस्तित्व का ही लोप हो जाता है । दुर्भाग्य से यदि पति शंकालु एवं संकीर्ण विचारों का मिल जाए तो दाम्पत्य जीवन विषाक्त बन जाता है । मृणाल का पति उसे पीड़ित करता है । विवाह के बाद मृणाल अपने पूर्व-प्रेमी के सम्बन्ध में अपने पति से कह देती है, वह उससे कुछ छिपाना नहीं चाहती । वह अपना स्त्री-धर्म निभाना चाहती है । पर उसका पति शंकालु वृत्ति का होने के कारण उस पर दुश्चरित्रा का आरोप लगाता है । "ब्याह के बाद मैं ने बहुत सोचा, बहुत सोचा, सोचकर अन्त में यह पाया कि मैं छल नहीं कर सकती । छल पाप है, हुआ जो हुआ, ब्याहता तो पतिव्रता होना चाहिए । उस केलिए पहले उसके प्रति सच्ची होना चाहिए । सच्ची बन कर ही समर्पित हुआ जा सकता है ।"[3] यह सुनने पर मृणाल के प्रति पति की भावना बदल जाती है । धीरे-धीरे परिवार का वातावरण भी बदल जाता है । परिवार में रहना मृणाल केलिए असम्भव हो जाता है । तंग आकर वह पति से कहती है - "मुझे आज चाहे तो घर से दूर कर सकते हैं ।"[4]

---

1. त्यागपत्र जैनेन्द्रकुमार ; पृष्ठ 62
2. जैनेन्द्र - व्यक्तित्व और कृतित्व सत्यप्रकाश मिलिन्द ; पृष्ठ 75
3. त्यागपत्र जैनेन्द्र कुमार ; पृष्ठ 61-62 4. वही; पृष्ठ 62

प्रेम की गरिमा को बनाये रखने मृणाल चुपचाप पति के घर से चली जाती है । वह पति से भीख नहीं माँगती । शरण और आलम्बन की आकांक्षा भी नहीं करती । उसमें हौसला है, आत्मगौरव है । वह घर की चारदीवारी को तोड़कर जीवन की यथार्थता में प्रवेश करना चाहती है । वह सहने को तैयार है ।

मृणाल में सामाजिक रूढ़ियों और मान्यताओं केलिए तीव्र प्रतिहिंसा का भाव है । वह कोयलेवाले में अपने प्रति आकर्षण का अनुभव कर उसके सामने समर्पण करती है । वह जानती है कि यह धोखा ही होगा । जब तक मृणाल उसके साथ है,उसकी सेवा में कोई त्रुटि नहीं रखना चाहती है । अपनी इस गति-विधि को मृणाल "पतिव्रता-धर्म" मानती है । डॉ.चन्द्रकान्त बान्दिवडेकर की राय में "इस नारी की यह आत्मकथा नहीं है क्योंकि इस नारी ने जो भोगा है उसका दाहक स्पर्श इतना झुलसनेवाला है कि वह उसके आत्मकथात्मक माध्यम से आता तो शायद "त्यागपत्र" को इसी प्रकार जलाया जाता जिस प्रकार कुछ युवकों ने शरतबाबू के "चरित्रहीन" को जला दिया था । मृणाल की चरित्र कथा को उसके प्रिय प्रमोद के माध्यम से कहलवा कर जैनेन्द्र ने अनेक कलात्मक स्थितियों एवं पहलुओं का निर्माण किया है ।"[1] मृणाल यद्यपि परम्परागत भारतीय स्त्री की भाँति पतिव्रता नहीं, लेकिन वह उसकी भाँति व्यक्तित्वहीन भी नहीं । वह हमारी सामाजिक व्यवस्था में स्त्री के व्यक्तित्व की स्थिति का प्रश्न उपस्थित करती है । विवाह होने पर उससे पातिव्रत्य धर्म निबाहने की अपेक्षा की जाती है । वह नये घर से समझौता करने का भरसक प्रयत्न करती है लेकिन विवाह पूर्व प्रेम-कहानी सुन कर संकीर्ण मनोवृत्तिवाला पति उसको निष्कासित कर देता है । वह उसके पति का दूसरा शादी है । लेकिन स्त्री को शादी के पूर्व प्रेम करने का अधिकार नहीं, उसकी कोई स्वतन्त्र इच्छा नहीं । हमारी सामाजिक व्यवस्था में स्त्री-पुरुष केलिए भिन्न-भिन्न मानदण्ड निर्मित हैं । घर से निष्कासित होने पर मृणाल का वेदना-पूर्ण जीवन इस अन्याय की परीक्षा करता है । लेकिन इस अन्याय के विरुद्ध

---

1. जैनेन्द्र के उपन्यास मर्म की तलाश डॉ.चन्द्रकान्त बान्दिवडेकर ; पृष्ठ 42

समाज से विद्रोह नहीं करता, केवल घुटता रहता है । "मैं समाज को तोड़ना-फोड़ना नहीं चाहता हूँ । समाज टूटे कि फिर हम किसके भीतर बढ़ेंगे या कि किसके भीतर बिगड़ेंगे । इसलिए मैं इतना ही कह सकता हूँ कि समाज से अलग होकर उसकी मंगलाकांक्षा में खुद ही टूटता रहूँ ।"[1] समाज से विच्छिन्न होकर यह विद्रोह नकारात्मक है ।

अज्ञेय के उपन्यास हिन्दी साहित्य में आधुनिकता के परिचायक हैं । हिन्दी उपन्यास की गति-विधि का अध्ययन करते हुए मुंशी प्रेमचन्द ने एक बार बताया था कि आगे के उपन्यास जीवनी का रूप धारण कर लेंगे । अज्ञेय से यह भविष्यवाणी पूर्ण हुई है । अज्ञेय ने अपना उपन्यास में कथा के बहिरंग पक्ष को महत्व नहीं दिया है । "शेखर:एक जीवनी" के प्रथम भाग मे व्यक्ति निर्माण का बीजारोपण हुआ है ।

"शेखर:एक जीवनी" में पारिवारिक जीवन के दो आयाम मिलते हैं । एक है शेखर का अपना घर जिसमें उसके माता-पिता और भाई-बहन हैं । यह प्रकटत: एक साधारण परिवार है । अज्ञेय पारिवारिक जीवन की व्यापकता की ओर नहीं जाते हैं जबकि शेखर के चरित्र को प्रक्षेपित करने केलिए परिवार की परिस्थितियों का उल्लेख करते हैं । लेकिन प्रस्तुत उपन्यास में शेखर का चरित्र सामान्य न होने के कारण अन्य सदस्यों के साथ शेखर का सम्बन्ध भी विचित्र है । अपने पिताजी के साथ के सम्बन्ध को स्वयं शेखर महत्व देता है । डाँटने-फटकारने के बाद पिता क्षमा की जगह सुलह करना पसन्द करते हैं । पिता "कभी क्षमा नहीं करते - क्षमा छोटे को किया जाता है । जिस प्रकार क्रोध में वे छोटे को छोटा नहीं समझते, उसी प्रकार क्रोध के उतरने पर भी कितनी स्वच्छ, एहसान के भाव से मुक्त, कितनी विशाल सर्वव्यापी होती है उनकी उदारता । इसलिए शेखर पिटकर भी उन्हें पूजता है "[2] लेकिन माता के साथ उसका

---

1. त्यागपत्र : जैनेन्द्र कुमार ; पृष्ठ 80
2. शेखर:एक जीवनी,प्रथम भाग अज्ञेय ; पृष्ठ 114

सम्बन्ध असाधारण है । शेखर के प्रति माता की हर प्रतिक्रिया का वह अपने ढंग से विश्लेषण करता है और वह पाता है कि माता को वह पूर्णत: स्वीकार नहीं कर सकता । "माँ का विश्वास न मिलना उसे सबसे पहले विद्रोह केलिए प्रेरित करता है । शेखर का आदि विद्रोही रूप माँ को लेकर है ।"[1]

शेखर जन्मजात विद्रोही है । अत: शेखर केलिए आवश्यक हो जाता है है कि वह समाज तथा परिवार की सत्ता को स्वीकार न करे क्योंकि बचपन में माँ-बाप का उचित संरक्षण उसे प्राप्त नहीं हुआ है तथा उसे कठोर नियन्त्रण में रखा गया है ।

माता के स्थान पर शेखर बड़ी बहन से वही सम्बन्ध आजमाना चाहता है जिसमें वह सफल भी होता है । इस प्रकार एक ओर पात्र की विशिष्टता के कारण और दूसरी ओर उसका अन्य पात्रों के साथ के विचित्र सम्बन्ध के कारण "शेखर:एक जीवनी" के पारिवारिक जीवन का स्वरूप साधारण नहीं है । इस उपन्यास में पहली बार स्वीकृत मान्यता का बिम्ब टूटने लगता है । शेखर का माँ के प्रति प्रकटित प्रतिक्रिया बाल सहज घटनाएँ या बाल मनोविज्ञान की विशिष्टताओं के अन्तर्गत विश्लेषित करके हम टाल नहीं सकते । उसमें व्यक्ति के व्यक्तित्व का सवाल उठता है । शेखर सब को यों ही स्वीकार नहीं कर पा रहा है । परिवार की चहारदीवारी को शेखर कभी स्वीकारता नहीं है । उसका प्रतीकात्मक वर्णन माँ के अविश्वास प्रकट करने पर शेखर की भटकन में संकेतित है । "स्वतन्त्रता की खोज, टूटती हुई नैतिक रूढ़ियों के बीच नीति के मूल स्रोत की खोज है । यह लीजिए कि समाज की खोखली सिद्ध हो जानेवाली मान्यताओं के बदले व्यक्ति की दृढ़तर मान्यताओं की प्रतिष्ठा करने की कोशिश है । मैं मानता हूँ कि चरम आवश्यकता के, चरम दबाव के, निर्णय करने की चरम आवश्यकता के क्षण में हर व्यक्ति अकेला होता है, और इस अकेलेपन में वह क्या करता है इसी में उसकी

---

1. अज्ञेय और आधुनिक रचना की समस्या डॉ रामस्वरूप चतुर्वेदी ; पृष्ठ 82

आत्मिक धातु की कसौटी है ।"[1] इसलिए यह कहा जा सकता है कि शेखर ने अपने घर की चहारदीवारी को तोड़ा है । वह पारिवारिक स्थितियों को यथावत् स्वीकार नहीं करता है ।

इस उपन्यास में अंकित परिवार का दूसरा आयाम स्वयं शेखर के अन्वेषित घर की संकल्पना है । जब से शशि उसके पास रहने लगती है तब से उसे इस ओर ध्यान देना पड़ता है । शशि के लिए वह एक बार उसका घर भी हो जाता है - "कठोर और कटु स्वयं नारी की तरह चिरन्तन शशि का निर्णय, कठोर और कटुता और चिरन्तन नारी का अभिमान कि जो समाज उसका आदर नहीं करता, उसी के हाथों नष्ट-भ्रष्ट, छिन्न-त्रस्त-ध्वस्त हो कर वह उसकी अवमानना करेगी ।" वह चाहता है कि उसका घर बने । वह उसमें बाधक न हो । पर उसे तिरस्कृत किया जाता है और शशि को हमेशा अपने साथ रहने का आदेश देता है । अत: शेखर का अपना ढूँढ़ा हुआ घर - जिसमें यथार्थ पारिवारिक संकल्प का यथार्थ पूरी तरह से विन्यसित नहीं है - सामान्य सामाजिक प्रतिमानों का तिरस्कार करता है ।

इन दोनों पारिवारिक बिम्बों में एक ओर परम्परा का निषेध है तो दूसरी ओर रूढ़ मान्यताओं का तिरस्कार है ।

"संन्यासी" उपन्यास का नायक नन्दकिशोर दो स्त्रियों - शान्ति और जयन्ती - से प्रेम करता है । लेकिन अपनी जन्म सहज प्रकृति संदेहशीलता और अहंवादिता के कारण उन दोनों स्त्रियों को वह न सुखी रख सका और वह स्वयं सुखी न हो सका । नन्दकिशोर के प्रति अपने हृदय में शान्ति का अटूट प्रेम है । लेकिन जब शान्ति के जीवन में तीसरे व्यक्ति बलदेव का प्रवेश होता है तब नन्दकिशोर का अन्तर्मन क्षुब्ध हो उठता है । परिणाम यह निकलता है कि वह बड़ी मानसिक अशान्ति और कुण्ठा का शिकार बन जाता है । यही नहीं शान्ति गर्भवती है

---

1. आत्मनेपद अज्ञेय ; पृष्ठ 67-68

यह जानकर वह घर छोड़ देता है । यों नन्दकिशोर जीवन की वास्तविकता से पलायित होता है ।

प्रो॰ मिश्र की लड़की जयन्ती से उसका परिचय होता है और उसके साथ विवाह करके जीवन को भी बर्बाद करता है । पारिवारिक जीवन में पति-पत्नी के बीच शंकालु वृत्ति के बड़े भयावह परिणाम होते है । पति-पत्नी में विश्वास आवश्यक है । जयन्ती के साथ विवाह के बाद सन्देह जनित ईर्ष्या से नन्दकिशोर का मन भर जाता है । नन्दकिशोर के साथ विवाह के पूर्व कैलाश नामक व्यक्ति के साथ जयन्ती का प्रेम सम्बन्ध था । यह बात नन्दकिशोर के मन को कचोट लेती है । यद्यपि जयन्ती विवाहोपरान्त अपने पति के प्रति पूरी तरह से ईमानदार रहती है, किन्तु उसके पति के सन्देह के कारण दाम्पत्य जीवन कटु बन जाता है । वह पत्र के माध्यम से अपने पति का विश्लेषण प्रस्तुत करती है । "आपने वैवाहिक सुख और शान्ति के इरादे से मुझसे विवाह कभी नहीं किया, बल्कि अपने सामाजिक अधिकार के पूरे प्रयोग से मुझे कलुषित और दलित करके एक हिंसात्मक सुख प्राप्त करने का उद्देश्य आपका प्रारम्भ से ही रहा है ।"[1]

नन्दकिशोर ने अपने अहं की तुष्टि केलिए ही जयन्ती से विवाह कर लिया था । "विवाह ! जयन्ती के साथ विवाह । इसका अर्थ यह है कि यही जयन्ती जो इस समय मेरे इतने निकट होने पर भी मुझसे इतनी दूर है, मेरी दासी बन कर रहेगी और अपने अज्ञात गर्व और अव्यक्त घृणा के भावों को कुचले जाने पर आँधी के वेग से विच्छिन्न लता की तरह एकमात्र मेरे चरणों का आश्रय पाकर विवश होकर उनसे लिपटी रहेगी ।"[2]

दमित कामवासना, सन्देह तथा अहंभावना से ग्रस्त पति के साथ का पारिवारिक जीवन प्राय: कटु ही रहता है । अहंभाव से ग्रस्त पति, पत्नी पर

1॰ संन्यासी इलाचन्द्र जोशी ; पृष्ठ 413
2॰ वही ; पृष्ठ 318

प्राय: अपना अधिकार जमाना चाहता है । परिणामस्वरूप पारिवारिक जीवन में घुण्ठाजन्य संघर्ष की स्थिति उत्पन्न होता है । नन्दकिशोर ऐसा एक व्यक्ति है । वह अधिकार चाहनेवाला एवं स्त्री की सत्ता को अस्वीकार करनेवाला युवक है । इसीलिए उसका पहला दाम्पत्य जीवन भी अशान्त होता है । दूसरी पत्नी जयन्ती के प्रति भी उसका वही व्यवहार रहता है । उसे आत्मिक प्रेम न देकर उसके शरीर से खिलवाड़ करता है । जयन्ती अपने पति नन्दकिशोर से कहती है – "आप में अभिमान तो है ही, पर अहंभाव भी इस दर्जे का है । इस अहंभाव को तृप्ति केलिए आप चाहते हैं कि जिस स्त्री से आपका सम्बन्ध हो वह पूर्ण रूप से आपकी होकर रहे, उसका कुछ भी स्वतन्त्र रूप से अपना कहने को न रहे, उसका शरीर, उसका मन, उसकी प्रत्येक वासना, प्रत्येक कामना, आपकी इच्छा की बलि हो जाय, उसके भीतर छिपी हुई कोई गुप्त से गुप्त प्रवृत्ति उसकी अपनी होकर न रहे, वह सब कुछ बिना किसी असमंजस्य के आपके पैरों तले समर्पित कर दे । सीता के युग में पौराणिक काल में यह प्रकृतिविरुद्ध बात भले ही सम्भव रही हो, पर किसी भी वास्तविक युग में यह सम्भव नहीं हो सकती ।"[1] जयन्ती ने अनुमान कर लिया कि इस अभिमानी पुरुष के साथ निर्वाह असम्भव है । वह शिक्षिता और आधुनिका है । वह पति के हाथ कठपुतली बन कर रहना नहीं चाहती ।

पारिवारिक जीवन में पति-पत्नी के बीच विश्वास ही तो केन्द्रबिन्दु है । यह दोनों को बहुत निकट रखता है । "जो विवाह समाज की मर्यादा रक्षा पूरी तरह नहीं कर पाता वह चोरों का विवाह है । विवाहित जीवन को सुखी बनाने की सबसे पहली शर्त यह है कि विवाह समाज के अनुशासन के अनुसार हो, उसके बाद दूसरी शर्त यह है कि पति-पत्नी की प्रकृतियाँ आपस में सामंजस्य स्थापित करने वाली हो, वैषम्य बढ़ानेवाली नहीं ।"[2] नन्दकिशोर के पारिवारिक जीवन में इसका सर्वत्र अभाव लक्षित है ।

---

1. संन्यासी इलाचन्द्र जोशी ; पृष्ठ 38।
2. वही ; पृष्ठ 27।

इलाचन्द्र जोशी ने अपने उपन्यास "लज्जा" में परिवार से बढ़कर व्यक्ति को ही अधिक प्रश्रय दिया है । मनोवैज्ञानिक धरातल पर कथा को चित्रित करने केलिए उनके इस उपन्यास में पारिवारिक जीवन का महत्व गौण है । अत: लज्जा में निहित व्यक्ति अपने अहं की पूर्ति केलिए अन्य सभी मूल्यगत पारिवारिक सम्बन्धों को नगण्य मान लेता है । अत: अपने प्राणप्रिय भाई राजु आत्महत्या का शिकार बनता है । इसी मनोवैज्ञानिकता के कारण पारिवारिक चित्रण को वांछित दिशा में रूपायित नहीं कर सका है ।

प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासकारों ने, खासकर इन तीन उपन्यासकारों ने, व्यक्ति के परिवेश को चित्रित किया है । परिवार को सामाजिक इकाई को आधारशिला समझना उनका लक्ष्य प्रतीत नहीं होता । सामाजिक मूल्य संकट के बिखरे चित्र हमें यद्यपि मिलते हैं फिर भी पारिवारिक सन्दर्भ में उन चित्रों से उभरता नहीं गया है । पर इतना अवश्य कहा जा सकता है कि जैनेन्द्र एवं अज्ञेय में व्यक्ति परिवार सहित ही परिकल्पित है जबकि इलाचन्द्र जोशी में परिवार और व्यक्ति का विलयन असम्भव ही रहता है ।

यशपाल के औपन्यासिक पात्र विवाह विरोधी हैं । वे जान-बूझ कर अथवा अनजाने में विवाह से कतराते हैं और यदि विवाह बन्धन मे पड़ जाते हैं तो उसे तोड़ फेंकने केलिए आतुर हैं । उन्हें मुक्त कराने में उपन्यासकार सहायक होते हैं । वे ऐसी परिस्थितियों को सृष्टि करते हैं, जिनके फलस्वरूप प्रेमियों तक का विवाह सम्भव नहीं होता अथवा उनका विवाह, सम्बन्ध विच्छेद में परिणत हो जाता है ।

मानव जीवन में प्रणय-भाव नैसर्गिक कामना है । प्रणय में एकाधिकार की भावना प्रमुख रहती है । आज की सामाजिक व्यवस्था में स्त्री-पुरुष के प्रणय अथवा उनके निकट सम्बन्धों को अन्तिम परिणति, विवाह, को स्वीकार किया जाता है । प्रणय से विवाह और विवाह से गृहस्थी बनती है । विवाह और गृहस्थी

से एक मर्यादा की स्थापना होती है जो भावना पर अधिक निर्भर है । उस मर्यादा से बाँध कर चलता हुआ मनुष्य जीवन के भौतिकतावादी मूल्यों को अपनाने में हिचकिचाता है । पाठकों को इस हिचकिचाहट को दूर करने केलिए यशपाल स्त्री-पुरुष के प्रणय सम्बन्धों तथा वैवाहिक मान्यताओं पर निरन्तर कुठाराघात करते हैं ।

"दादा कामरेड" उपन्यास की शैल को उपन्यासकार ऐसी स्त्री के रूप में प्रस्तुत करते हैं जो स्त्री-पुरुष के पारस्परिक आकर्षण को केवल दैहिक आवश्यकता के रूप में देखती है । इस आवश्यकता के साथ किसी मानसिक भावना को जोड़ने के पक्ष में वह नहीं है । शैल की दृष्टि में, विवाह के परिणामस्वरूप स्त्री, पुरुष की सम्पत्ति बन कर रह जाती है । उसके अनुसार विवाह अनावश्यक है । इस विषय में उसका मत है - जहाँ स्त्री का अपना कुछ शेष नहीं रह जाता । यदि स्त्री को किसी न किसी की बन कर ही रहना है तो उसकी स्वतन्त्रता का अर्थ ही क्या हुआ ? स्वतन्त्रता शायद इस बात की है कि स्त्री एक बार अपना मालिक चुन ले परन्तु गुलाम उसे ज़रूर बनना है ।"[1] वह विवाह के द्वारा पुरुष से बँधने में विश्वास नहीं रखती । प्रणय-बन्धन द्वारा किसी को, केवल एक को मानसिक, शारीरिक रूप से बन जाने में भी उसे अपनी स्वतन्त्रता की हानि जान पड़ती है । प्रेम के सम्बन्ध में उसका प्रश्न है - "क्या संसार भर की अच्छाई एक ही व्यक्ति में समा सकती है ? और जगह अच्छाई दिखाई देने पर उसे कैसे अस्वीकार किया जा सकता है ? क्या मनुष्य-हृदय का स्नेह केवल एक ही व्यक्ति पर समाप्त हो जाना ज़रूरी है ? "[2] शैल पुरुष के आकर्षण द्वारा जीवन का प्रसार चाहती है । अनन्यता की भावना उसकी समझ से बाहर है । यदि प्रेमी उस पर एकाधिकार की भावना जताता है तो उसकी यह स्वामित्व भावना शैल को स्वीकार नहीं है । यों शैल विवाह की अपेक्षा स्त्री के एक साथ कई साथी रखने में विश्वास करती है । इसलिए उसका स्वच्छन्द जीवन है । वह कई व्यक्तियों से प्रेम करती

---

1. दादा कामरेड यशपाल ; पृष्ठ 32
2. वही ; पृष्ठ 109

हुई यौन सम्बन्ध स्थापित करती है । वह विवाह को स्त्री की गुलामी मानती है । उसके अनुसार - "जब स्त्री को एक आदमी से बैंधा जाना है और सामाजिक आवश्यकताओं के अनुसार उसको अधीन रहना है, उस पर निर्भर करना है, उस सम्बन्ध को चाहे जो नाम दिया जाए, वह है स्त्री की गुलामी ही ।"[1]

"देशद्रोही" उपन्यास में डाक्टर खन्ना परिस्थिति-चक्र में पड़कर बजोरियों का बन्दी बनता है । फिर गज़नी में रहकर उसका विवाह अपने स्वामी की पुत्री नर्गिस से हो जाता है । नर्गिस का पूर्ण समर्पण, उसे पशुवत् जान पड़ता है । एक दिन दाम्पत्य जीवन को त्याग कर, वह रूस जा पहुँचता है । रूस में आत्मनिर्भर विचारशील युवती गुलशाँ उसकी ओर आकृष्ट होकर उससे विवाह करना चाहती है । किन्तु खन्ना विवाह-बन्धन में पड़ना नहीं चाहता । उसकी पत्नी राज दिल्ली में है । खन्ना को उसका स्मरण प्राय: हो जाता है, किन्तु वह इस सम्बन्ध में तर्क करता रहा है - "राज मुझे नहीं, मुझ से मिलनेवाले सन्तोष से प्रेम करती थी या वह उस एकमात्र पुरुष को प्रेम करती थी जिस पर जीवन की प्रत्येक बात केलिए निर्भर थी, जिसके बिना जीवन सम्भव न था । मैं जैसे राज से प्रेम करता था, वैसे ही किसी दूसरी स्त्री से भी कर सकता हूँ । राज भी, जो कोई भी उसका पतिहोता उसी से प्रेम करती । मुझ में ही क्या विशेषता है ।"[2] खन्ना का यह विचार पति-पत्नी को साधारण स्त्री-पुरुष के रूप में देखता है । यह सही है, विवाह के द्वारा स्त्री-पुरुष संयोगवश परस्पर समीप आ सकते हैं । इसमें उनकी विशिष्टता किसी बात की नहीं है, किन्तु विवाह के बाद उनके सम्बन्ध में एक विशिष्टता आ जाती है, यह तथ्य झुठलाया नहीं जा सकता । स्त्री-पुरुष, पति-पत्नी के रूप में निकट रहकर एक विशेष प्रकार की आत्मीयता प्राप्त कर लेते हैं । जैसे दो व्यक्ति सन्ताप आकर मित्रता का विशिष्ट सम्बन्ध प्राप्त करते हैं ।

---

1. दादा कामरेड यशपाल ; पृष्ठ 31
2. देशद्रोही यशपाल ; पृष्ठ 55

यशपाल की मान्यता है कि आर्थिक पराधीनता के कारण ही पत्नी, पति की अधीनता एवं दासता स्वीकार करती है । उनके मतानुसार पत्नी आर्थिक स्वतन्त्रता प्राप्त करने के बाद ही पति-पत्नी के शासक-शासित एवं मालिक-गुलाम के भेद-भाव को समाप्त कर सकती है । प्रस्तुत उपन्यास के अन्ना के माध्यम बन्धा की निरीह एवं दीनदशा का कारण उपन्यासकार प्रस्तुत करते हैं । अन्ना कहता है - "तु ने अपने आपको बलिदान कर सब सहा, अब उसके प्रति विद्रोह भी करो तो क्या कर सकती हो, जब तक जीवन के संघर्ष में अपने पैरों पर खड़े होने का साधन तुम्हारे पास न हो ।"[1] यशपाल सफल दाम्पत्य जीवन केलिए पारस्परिक वैचारिक एकता, पति-पत्नी के सन्तुलित यौन-सम्बन्ध, एवं पत्नी की आर्थिक स्वतन्त्रता को प्रमुख मानते हैं । इनके अभाव में पारिवारिक जीवन विघटित होता है ।

"झूठा-सच" उपन्यास मे मध्यवर्ग की सजीव तस्वीर है । अत: मध्यवर्ग की पारिवारिक समस्याओं का अंकन विस्तार से है । उपन्यास में तारा, कनक, शीला, पुरी, रतन सभी प्रेम और विवाह को व्यक्तिगत स्तर पर झेलते हैं । ये सभी विवाह को सामाजिक बन्धन के रूप में न स्वीकार कर वैयक्तिक सम्बन्ध के रूप में मान्यता देते हैं । शीला, रतन से प्रेम करती है, पर विवाह मोहनलाल से होता है । वह प्रेम और विवाह को अलग-अलग स्वीकार करती है - "मुहब्बत का धर्म अपनी जगह है, घर-बार का धर्म और ब्याह अपनी जगह ।"[1] शीला, मोहन लाल की पत्नी है, पर वह रतन से प्रेम नहीं छोड़ती, यही नहीं वह रतन के बच्चे की माँ भी बनती है, समाज में जो मोहनलाल का बेटा जाना जाता है । प्रेम को विवाह से ऊपर जानकर वह विवाह के बन्धन को तोड़कर रतन के साथ गृहस्थी बसा लेती है ।

दूसरी ओर जयपुरी, कनक से प्रेम करता है और विवाह भी करता है, परन्तु ऊर्मिला के प्रति भी आकर्षित है । अत: कनक-पुरी का वैवाहिक जीवन

---

1. झूठा-सच - भाग । यशपाल; पृष्ठ 199
1. देशद्रोही यशपाल; पृष्ठ 293

सफल नहीं हो पाता । एक बच्चो के आने पर भी इनके सम्बन्धों में तनाव छिप रहता है, तो कनक पुरो से सम्बन्ध विच्छेद कर लेतो है । कनक पुरो के साथ किसो भो प्रकार का समझौता करने को तैयार नहीं । वह अपना स्वतन्त्र व्यक्तित्व बनाये रखना चाहतो है । उसका मत है कि नौकरो करने वालो स्त्रो को पुरुष के समान स्वतन्त्रता और अधिकार मिलने चाहिए । जहाँ भो काम करेंगो, जाना ही होगा । आखिर जो औरतें अपने पाँव पर खड़ो होतो हैं, आतो जातो हो हैं। मर्द कैसे काम करते हैं, औरतें करतो हैं ।"[1] कनक पुरो का घर छोड़कर तारा से मिलतो है, उसे अपना निर्णय सुना लेतो है - "हम लोगों की रुचि और प्रकृति एक दूसरे के अनुकूल नहीं हैं । लोकलाज से बचने केलिए जितना निबाह सकतो थो निबाह दिया । अब नहीं निबाह सकतो ।"[2]

तारा मध्यवर्ग की लड़को है । वह चाहतो है कि खूब पढ़-लिख कर विद्वान और योग्य पुरुष से विवाह करे । उसके मत में - "स्त्रो अपने से कम योग्य अथवा हीन व्यक्ति के प्रति कभो श्रद्धा या प्रेम नहीं कर सकती ।"[3] इसकारण तारा मुसलमान असद के प्रति आकर्षित है । परिस्थितिवश उसका विवाह सोमराज से होता है, जिसे वह कभो भो हृदय से स्वोकार न करसकतो है । सोमराज के पाशवोय व्यवहार से पीड़ित होकर वह घर से भागने को विवश होती है । डॉ॰इन्द्रनाथ मदान के शब्दों में - "उपन्यास में तारा का सोमराज की पत्नो होना झूठा-सच है । यह काननो तौर पर सच है । किन्तु नैतिक तथा न्याय को दृष्टि से झूठ । झूठ तथा सच को समस्या को इस उपन्यास में प्रेम, शादो और तलाक के माध्यम से और अंशत पुरो के पतन द्वारा उठाया गया है ।"[4] तारा-सोमराज के विवाह पर सुदर्शन मलहोत्रा का विचार यों है - तारा, माता-पिता तथा घर और परिवार के सम्मान को रक्षा करना चाहतो है दूसरा कारण यह कि

1॰ झूठा-सच - भाग । यशपाल ; पृष्ठ 378
2॰ वहो ; पृष्ठ 548
3॰ वहो ; पृष्ठ 81
4॰ हिन्दो उपन्यास - पहचान और परख डॉ॰इन्द्रनाथ मदान ; पृष्ठ 214

अयोग्य व्यक्ति को पत्नी बनने से बचने केलिए उसने जिस भाई का भरोसा कर लिया था वह उसका साथ नहीं देता और तीसरा कारण यह कि उसका प्रेमी भी विवश अवस्था में उसे विवाह से बचा नहीं सकता ।"[1]

"मनुष्य के रूप" शीर्षक उपन्यास की सोमा एक छोटे से पहाड़ी गाँव की विधवा लड़की है जो अपने सास-ससुर, जेठानियों के अत्याचारों से पीड़ित है । वह घर से निकलती है । दुर्घटना से बचाने के चक्कर में एक बार ड्राईवर धनसिंह गाड़ी रोकता है तो गाड़ी खराब हो जाती है । दोनों आपस में मिलते हैं, दोनों में प्रेम हो जाता है । धनसिंह उसे भगा ले जाता है । धनसिंह को पुलिस पकड़ लेती है, धनसिंह जेल जाता है और सोमा कामरेड भूषण की सहायता से सेठ ज्वालासहाय के यहाँ आश्रय पाती है । सोमा और धनसिंह के प्रेम प्रसंग में भूषण का प्रगतिशील दृष्टिकोण है । "जो मर्द औरत एक साथ रहना चाहते हैं, उन्हें ज़बर्दस्ती रोकिएगा तो वे मिलने की चेष्टा में बदमाश बनेंगे ही । उन्हें एक साथ रहने दीजिएगा तो बदमाशी खत्म हो जाएगी । आखिर उसे किसी मर्द के हवाले करिएगा ही जिसे वह चाहती है वह क्या बुरा है ।"[2]

मनोरमा, सरोला परिवार की इकलौती बेटी है । उच्च शिक्षा प्राप्त मनोरमा कामरेड भूषण के प्रति अनुरक्त है । भूषण गरीब परिवार का है, साथ ही साम्यवादी दल से सम्बन्धित भी है । इसलिए एम॰ए॰ तक शिक्षा प्राप्त करके भी वह अच्छी नौकरी प्राप्त नहीं कर सका । भूषण मनोरमा की भावनाओं को जानता है और वह उसकी सीमाओं को भी समझता है - "पचहत्तर रुपये माहवार में क्या जीवन हो सकता है । मैं अपने आपको धोखा नहीं देना चाहता, और न किसी दूसरे को ।"[3] भूषण को मालूम है कि मनोरमा के परिवार की आर्थिक स्थिति अच्छी है । अपनी तुच्छ आमदनी से मनोरमा जैसी लड़की की देख-रेख

1॰ यशपाल के उपन्यासों का मूल्यांकन :डॉ॰सुदर्शन मजीठिया ; पृष्ठ 168
2॰ मनुष्य के रूप यशपाल ; पृष्ठ 74-75
3॰ वही ; पृष्ठ 78

असम्भव है । ईमानदार होने के वास्ते भूषण मनोरमा से अलग हो जाता है ।

पारिवारिक समस्याओं से ऊब कर मनोरमा फिल्म प्रोड्यूसर सुतलीवाला के विवाह प्रस्ताव को स्वीकार करती है । मनोरमा के इस निर्णय से घर में कोहराम मच जाता है । उसके इस निर्णय से पारम्परिक पारिवारिक विचारों पर आघात पहुँचता है । मनोरमा के इस निर्णय पर भाई-भाभी समझते हैं कि "लड़कियों के विवाह जैसे होते हैं अगर मनोरमा का विवाह उसी तरह होता तो लालाजी चालीस-पचास हज़ार देते ही, बीस-पच्चीस हज़ार ऊपर से खर्च होता । भाइयों को भी पाँच-पाँच हज़ार देना ही पड़ता । माँ जी तो फ्रयर रोड की कोठी दहेज में देने का निश्चय किये हुए थीं । उस कोठी का किराया अलग ही रखती थीं । यह घर की सम्पत्ति में से ही तो जाता ।"[1] अगर माँ-बाप की ओर से नियमित रूप से मनोरमा की शादी होती तो परिवार से इतना अधिक धन अलग हो जाता । अब यह सम्पत्ति बची है । इस कारण भाई इस विवाह का विरोध नहीं कर सके । भाई-बहन के बीच जो सनातन पारिवारिक सम्बन्ध रखता आया है उसमें टूटन आ पड़ी है । भाइयों को अपनी बहन मनोरमा से जैसे कोई मतलब नहीं रह गया है ।

मनोरमा अपनी शादी के बाद सुख और शान्ति के साथ जीवन नहीं बिता सकती है । वह सोचती है - "क्वाँरे जीवन में वह कौन अभाव था, जो अब पूरा हो गया है ? सुतलीवाला ने उससे विवाह का प्रस्ताव क्यों किया ? दूसरी लड़कियाँ विवाह के बाद कैसे हँसती भरी, गुदगुदायी सी जान पड़ती है ? जैसे कोई रहस्य उनके होठों पर आकर फूट जाना चाहता हो, परन्तु वह केवल प्रवंचना का ग्लानि अनुभव कर रही थी । क्वाँरा होने वह क्यों कर दयनीय थी क्यों कैसे ?[2]

---

1. मनुष्य के रूप यशपाल ; पृष्ठ 157
2. वही ; पृष्ठ 192

संयुक्त परिवार में प्रेम तथा भावना का एकमात्र आधार धन होता है । इसी कारण सेठ ज्वालासहाय का परिवार एक बहुत ही मामूली घटना से टूट कर बिखर जाता है । सभी को पहनने को एक जैसी ही साड़ियाँ खरीद लायी जाती हैं, यहाँ तक कि घर की नौकरानी सोमा केलिए भी उन्हीं साड़ियों में से एक साड़ी खरीदी जाती है । इस पर भाभी के अहं को चोट पहुँचती है । वह अपने बैरिस्टर देवर से कहती है - "क्या मैं तुम्हारी नौकरानी हूँ ? तुम मेरेलिए अपनी नौकरानी के साथ की साड़ी लाये हो ? कमाने के नाम पर एक पैसा कमाने की हिम्मत नहीं । दूसरों की कमाई पर गुलछर्रे उड़ाये और उन्हीं की बेइज़्ज़ती करे ।"[1] उन्हें जिठानी तथा कमाऊ पति की पत्नी होने का विशेष सम्मान क्यों नहीं दिया जाता, इस बात को लेकर वह नाराज़ हो जाती है । संयुक्त परिवार में बहुत मामूली बातों पर भी संघर्ष छिड़ जाता है । इससे स्पष्ट है कि संयुक्त रूप से रहने के बावजूद भी परिवारों में प्रायोन भावात्मक एकता तथा स्नेहिल सम्बन्ध नहीं रह जाते हैं ।

तत्कालीन सामाजिक गति-विधि के खिलाफ़ उपन्यास के स्त्री तथा पुरुष पात्र विवाह तथा परिवार सम्बन्धी स्वतन्त्र तथा नये विचार रखते हैं । वे परिवार तथा विवाह को सामाजिक जीवन का अवश्यक घटक नहीं मानते । नैतिकता सम्बन्धी मूल्यों को भी उतना महत्व नहीं देते जितने भारतीय परिवेश में देते आये हैं । मनोरमा के वैयक्तिक जीवन में अपने परिवारवालों का सहयोग पूर्ण रूप से नहीं मिलता । यद्यपि मनोरमा के परिवारवाले धनी हैं, फिर भी उचित रूप से मनोरमा की शादी करा देने में वे तैयार नहीं होते । यही नहीं मनोरमा के प्रेम सम्बन्ध पर परिवारवाले इतने आश्वस्त है कि उनका धन बच गया । पारिवारिक दायित्वों को निभाने में परिवारवाले हिचकते हैं, सम्पत्ति को अपने कब्ज़े में सुरक्षित रख लेने के इच्छुक हैं । सम्पत्ति के समक्ष पारिवारिक रिश्ता नगण्य बन जाता है । इसी कारण से मनोरमा का वैवाहिक जीवन सअसफल हो

---

1. मनुष्य के रूप यशपाल ; पृष्ठ 195-96

जाता है । यशपाल को स्त्री "अर्थ और काम के दो पाटों के बीच नारी शताब्दियों से पिसती चली आयी है । देश को स्वतन्त्रता, नारी जागरण और शिक्षा के प्रसार के बावजूद नारी का शोषण जारी है । उसका शोषण रोका नहीं, शोषण का रूप-भर बदला है । पर आज नारी इतनी निरीह नहीं रही कि अपने शोषण का बदला न ले सके । उसकी विवशता का लाभ उठाकर पुरुष वासना-पूर्ति केलिए उसे विनाश के मार्ग पर ले जाता है तो द्रुतगति से उस ओर बढ़ती हुई वहअपने साथ असंख्य पुरुषों को विनाश के गर्त में ढकेल कर कितने ही परिवारों को नष्ट करके समाज से बदला ले लेती है ।"[1] वे विवाह व्यवस्था का विरोध न करने पर भी अवश्य कुछ परिवर्तन चाहते हैं । वे विवाह व्यवस्था को समाप्त करने के पक्ष में हैं क्योंकि विवाह शोषण का एक अंग है ।

उपेन्द्र नाथ अश्क का उपन्यास "गर्म राख" आज के मध्यवर्गीय युवक के जीवन-संघर्षों, आशा-आकांक्षाओं, तथा पलायन प्रवृत्तियों की कथा प्रस्तुत करता है । इसमें मध्यवर्गीय जीवन के गहरे-हल्के रंगों का प्रसार है । जगमोहन और सत्या का प्रेम स्थिर गति से प्रवाहित होता हुआ कसमान्त को प्राप्त होता है । प्रेम-व्यापार एक विषम-चक्र सा "गर्म राख" में घूमता है ।

इस उपन्यास का जगमोहन निम्न-मध्यवर्गीय परिवार का सदस्य है । वह साधारण परिस्थितियों में पल कर युवक बनता है । उसमें अपने वर्गगत संस्कारों एवं कमज़ोरियों की छाप प्रकट है । उसके ऊँचे स्वप्न हैं । कॉलज के लड़कों को पढ़ाना और एम॰ए॰ करना उसकी इच्छा है । किन्तु उसके पास साधन नहीं है । इस कारण वह मानसिक विकृतियों तथा ग्रंथियों का शिकार बन जाता है । जीवन के संघर्ष के साथ आर्थिक एवं सामाजिक रुकावटें उसकी प्रत्येकइच्छा पर रोक लगा देती है । मानसिक घुटन के कारण वह अपने को शिथिल समझता है । इस कारण वह अपने स्वाभाविक सम्बन्ध और प्रेम को पाप समझता है ।

1॰ समकालीन हिन्दी उपन्यास की भूमिका :डॉ॰रणवीर रांग्रा ; पृष्ठ 30

आर्थिक तंगी के कारण जगमोहन का प्रेम असफल हो जाता है । नायिका सत्या मकड़ी के जाले की तरह जगमोहन को अपने चारों तरफ़ से बाँधने का यत्न करती है । लेकिन जगमोहन इस जोंक रूपी प्रेम से अलग रहता है । "दुरो को वह चाहता था किन्तु वह उससे दूर थी । सत्याजी से वह दूर रहना चाहता था किन्तु वह उसके नितान्त निकट थी । यह नारी, जो इतने दिन से उसके गिर्द मकड़ी का जाला बुने जा रही है, उसका सारी प्रतिभा का रक्त चूस जाएगी । एक अनचाहे संग को निबाहने केलिए वह बाध्य हो जाएगा और उसे जीवन भर बाध्य रहना पड़ेगा ।"[1] यही कारण है कि सत्याजी के प्रति उसके मन में प्रेमभावना नहीं जागती है । जागती तो भी विवाह करने की स्थिति में वह नहीं है । वह स्पष्ट रूप में अपने पत्र में सत्याजी को लिखता है - "हमारा वैवाहिक जीवन नरक-सरीखा हो जाएगा मैं स्वयं दूसरे के प्रति ऐसे विवश हूँ । पर मेरा आपके साथ यों रहना उस विवशता का अनुचित लाभ उठाना है । और यह मैं आपका और अपना अपमान समझता हूँ ।"[2]

जगमोहन, द्रौपती से प्रेम करता है लेकिन अपनी इस आर्थिक विषमता में विवाह कर पाना असम्भव है । अपनी इस विषमता के कारण वह द्रौपती से प्रेम प्रकट नहीं कर पाता । "मुझे दुरो का ध्यान छोड़ देना चाहिए इसमें सफलता निराशा और व्यथा के सिवा कुछ हाथ न आएगा जब तक वह अपनी शिक्षा समाप्त कर नहीं लेता,प्रेम के चक्र में न पड़ेगा"।[3] उपन्यासकार विवाह की समस्या को आर्थिक पहलू के माध्यम से चित्रित करते हैं । आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न न होने के कारण अधिकांश मध्यवर्गीय जीवन में विवाह एक समस्या बन जाती है । "आर्थिक स्थिति में विवाह उसे बेड़ी जैसा नज़र आता था जो उसकी आकांक्षा को हर पलांग को बाँध दे ।"[4]

---

1. गर्म राख उपेन्द्र नाथ अश्क ; पृष्ठ 520
2. वही ; पृष्ठ 466
3. वही ; पृष्ठ 215
4. वही ; पृष्ठ 470

आर्थिक विषमता के बावजूद जगमोहन की पारिवारिक संकल्पना टूट जाती है । बिगड़ी आर्थिक स्थिति मध्यवर्ग के व्यक्ति को शरीर की सहज आवश्यकताओं के प्रति उदासीन तो बना नहीं सकती किन्तु उसके मन की अनुभूतियों को अवश्य मार देती है । उसके चारों ओर विषमता -विवशता का जाल बुना रहता है और उसे लाचार अपनी अन्तप्रेरणा के विरुद्ध आचरण करना पड़ता है ।

इस उपन्यास में सुखी और सफल दम्पति एक भी नहीं है जगमोहन यह देखता है कि भगतराम, शुक्ला तथा चाचक विवाहित होकर भी असन्तुष्ट है । जगमोहन सोचता है - "जैसे वे मूर्ख हैं, वैसा ही वह है । अन्तर केवल यह है कि वे उसे प्रकट कर देते हैं और यह नैतिकता का अवतार बना उस पर क्रुद्ध होता रहता है लेकिन ये तो सब विवाहित हैं । पर उससे क्या इस देश में जब बरबस बच्चे-बच्चियों को एक दूसरे के गले बाँध दिया जाता है, विवाहित होकर भी कितने जोड़े वास्तविक आनन्द को समझ पाते हैं, कितने जीवन भर भूखे नहीं रहते ।"[1] अश्क यह स्पष्ट करते हैं कि आधुनिक युग के आर्थिक अभाव के कारण वैवाहिक जीवन अशान्तिपूर्ण है ।

"गिरती दीवारें" शीर्षक उपन्यास में उपेन्द्रनाथ अश्क निम्न मध्यवर्ग के वैवाहिक जीवन, आर्थिक और सामाजिक समस्याओं, इच्छाओं, कुण्ठाओं, विडम्बनाओं का चित्रण करते है । उपन्यास का नायक एक अत्यन्त साधारण मध्यवर्गीय व्यक्ति है जो अपनी अनेक असमर्थताओं के बावजूद भावप्रवण भी है । उपन्यासकार इस उपन्यास के द्वारा मध्यवर्गीय पारिवारिक जीवन का चित्रण करना चाहते हैं । "मध्यवर्ग के परिवार में किस तरह कलह का ताण्डव होता रहता है, हवा से लड़नेवाली स्त्रियों के कारण परिवार किस तरह नरक में परिणत हो जाता है, इस तरह के परिवार के नव युवकों को जीवन संघर्ष में किन-किन कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है ।"[2] पारिवारिक वातावरण के अन्धकार में अपनी प्रतिभा

---

1. गर्म राख उपेन्द्र नाथ अश्क ; पृष्ठ 242
2. उपन्यासकार अश्क डॉ.इन्द्रनाथ मदान ; पृष्ठ 145

के विकास की राह खोजने वाले युवक की आकुलता तथा मानसिक विकास का चित्र प्रस्तुत किया गया है । परिस्थितियों के प्रवाह में बहता हुआ अनेक कुण्ठाओं से ग्रस्त युवक वेतन मध्यवर्गीय जीवन की असमर्थताओं को हमारे सम्मुख साकार कर देता है । मध्यवर्गीय व्यक्ति को इन अनेक विध कुण्ठाओं और असमर्थताओं की दीवारें आमरण घेरे रहती हैं ।

उपन्यास का नायक महत्वाकांक्षी युवक वेतन है, जिसके सम्मुख अन्य युवकों की भाँति जीवन की कोई दिशा स्पष्ट नहीं है । उसका पिता या और कोई व्यक्ति उसका मार्ग-प्रदर्शन नहीं कर पा रहा है । वेतन में प्रतिभा है पर उसके सदुपयोग से वह अनभिज्ञ है । उसका लक्ष्य उच्च है, पर मार्ग अस्पष्ट है । फलस्वरूप उसको अपने जीवन के हर मोड़ पर असफलता के दर्शन होने लगते हैं । वास्तव में वेतन ऐसे निम्न-मध्यवर्गीय युवकों का प्रतिनिधि है जो शिक्षित होते हुए भी बेकार हैं, दिशाहारा की भाँति भटकते हैं और अपना जीवन-लक्ष्य निश्चित करने में ही असफल हैं ।

वेतन के माता-पिता ने उसका विवाह एक साधारण, अत्यन्त सरल हृदयवाली लड़की चन्द्रा के साथ करा दिया । यह वेतन को रुचि के अनुकूल नहीं था । फिर भी वह परिस्थितियों से समझौता करके अपनी पत्नी चन्द्रा को अपने अनुकूल बना लेने की कोशिश करता है । वह चन्द्रा से कहता है - "यदि तुम मुझ सी अध्ययनशील बन जाओ तो हमारे बीच पति-पत्नी के बदले संगी और संगिनी का नाता स्थापित हो जाएगा और दिन-प्रतिदिन हमारे प्रेम की जंजीर मज़बूत होती जाएगी ।"[1]

चन्द्र ये बातें मान लेती तो है पर वह वेतन की तरह साहित्यिक नहीं बन पाती । वह पति के अनुरूप बनने में ही अपना धर्म मान लेती है ।

---

1. गिरती दीवारें उपेन्द्र नाथ अश्क ; पृष्ठ 387

चेतन भी उसे पतिव्रता बनाये रखने का आदर्शात्मक प्रयास करता है । यद्यपि चन्द्रा शारीरिक धरातल पर पति को खुश रख सकती है फिर भी निराश चेतन उसकी चचेरी बहन नीला पर आकृष्ट हो जाता है । पर वह अपनी पत्नी से भी बिछुड़ नहीं पाता है । महत्वाकांक्षा के गर्त में पड़ कर पारिवारिक जीवन को जटिल बनानेवाली मध्यवर्गीय चेतना का आभास साकार करना उपन्यासकार का लक्ष्य है ।

भगवतीचरण वर्मा का उपन्यास "टेढ़े-मेढ़े रास्ते" एक सम्पन्न ज़मींदार परिवार की कथा के माध्यम से जीवन की जटिलताओं और पारिवारिक टूटन की व्याख्या है । उपन्यास में रामनाथ तिवारी की अहंवृत्ति से परिवार की टूटन दिखायी गयी है । यह अहंवृत्ति केवल उनके प्रजाजनों तक ही सीमित नहीं वरन् अपने पारिवारिक सदस्यों के प्रति भी है । बड़ा पुत्र दयानाथ के कांग्रेस में शामिल होने की सूचना प्राप्त होते ही वे कानपुर आकर दयानाथ को आज्ञा देते हैं कि वह तुरन्त कांग्रेस छोड़ दे क्योंकि उससे उनका नाम और कुल कलंकित हो रहा है । दयानाथ तर्क करने पर वे क्रोधित होकर कहते हैं - "मैं तुम्हारा बाप हूँ कि तुम मेरे बाप हो ? ख़बरदार । अब जो दूसरी बात ज़बान पर आयी तो मैं तुम्हारी ज़बान खींच लूँगा ।"[1]

अधिकार और सत्ता का पागलपन उनके समस्त व्यक्तित्व पर छाया हुआ है । उनकी यह अहम्मन्यता ही उनके पारिवारिक विघटन का मूल कारण है । उनके तीनों पुत्रों - दयानाथ, उमानाथ, प्रभानाथ - को वे सह्य नहीं हैं । पुत्रों तक ही उनका दुर्व्यवहार सीमित नहीं । उनकी यह धारणा है कि कुल के नियन्त्रण केलिए कुल के शासक की आज्ञा अनिवार्य है । उनकी आज्ञा मानना परिवार के प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य है क्योंकि वे कुल के अधिपति हैं । "दयानाथ को मैं ने दण्ड नहीं दिया, दयानाथ को दण्ड दिया है इस कुल के कर्ता ने, इस कुल की ओर से । जब तक मैं इस कुल का कर्ता हूँ, संचालक हूँ, तब तक मेरी बात, मेरा प्रत्येक

---

1. टेढ़े-मेढ़े रास्ते भगवतीचरण वर्मा ; पृष्ठ 14

निर्णय कुल का निर्णय है,उसके प्रत्येक सदस्य का निर्णय है । याद रखना आजवाले तुम्हारे पिता का अधिकार कल तुम्हारे बच्चों के साथ तुम्हारा अधिकार होगा ।"[1]

दयानाथ स्वतन्त्रता आन्दोलन में कांग्रेस का सक्रिय कार्यकर्ता बन जाता है । देश की आवश्यकता और कांग्रेस के आह्वान पर अपनी वकालत छोड़ देता है । फलस्वरूप उसे अपने पिता का, जो विदेशी शासन का अवश्यक अंग है, विरोध सहना पड़ता है । रामनाथ, दयानाथ के कांग्रेस में शामिल होने पर उन्हें घर की सम्पत्ति और उत्तराधिकार से वंचित होने की धमकी देते हैं । पिता का विरोध दयानाथ की आर्थिक व्यवस्था को ध्वस्त कर देता है । लेकिन वह अपनी ज़िद पर डटा रहता है जो उसे पैतृक अधिकार के रूप में प्राप्त हुई थी । अपनी इसी अहम्मन्यता के कारण वह अपने सामाजिक जीवन में असफल रहता है ।

रामनाथ का दूसरा पुत्र उमानाथ शिक्षित और विवाहित है । उसकी पत्नी महालक्ष्मी सुन्दरी और त्यागमयी रमणी है जिसके रहते हुए उमानाथ जर्मनी में हिल्डा से विवाह करता है । वह अपने इस कार्य को छोटे भाई प्रभानाथ के सामने न्यायोचित ठहराना चाहता है - "मैं ने अपनी पहली पत्नी से अपनी इच्छा के अनुसार विवाह नहीं किया, वह मेरे गले में ज़बर्दस्ती मढ़ दी गयी । मैं उससे प्रेम नहीं करता, कर भी नहीं सकता, वह मेरे लिए त्याज्य है ।"[2] परम्परागत पारिवारिक संकल्पना को टूटन यहाँ रूपायित है । परम्परागत वैवाहिक रूढ़ि को न निबाहने केलिए उमानाथ अपने तर्क भी गढ़ लेता है । वर्माजी का मत है कि "जहाँ लोग स्त्री और पुरुष के अधिकारों को समझने लगे हैं, डाईवोर्स की आवश्यकता प्रतीत की जाने लगी है । पर अधिकांश हिन्दु स्त्री को सम्पत्ति ही समझते हैं ।"[3] एक ओर वह स्वीकारता है कि महालक्ष्मी में सौन्दर्य है, मोम की मूर्तिवाला सौन्दर्य

---

1. टेढ़े-मेढ़े रास्ते भगवतीचरण वर्मा ; पृष्ठ 54
2. वही ; पृष्ठ 95
3. हिन्दी उपन्यास में चरित्र-चित्रण का विकास रणवीर रांग्रा ; पृष्ठ 267

है, पर दूसरी ओर वह हिल्डा में महालक्ष्मी से अलग जो कुछ पाता है, वह है सजीव उल्लास । यहाँ उपन्यासकार परम्परित विवाह संस्था का विरोध करते हैं ।

विदेश से लौटे हुए उमानाथ को महालक्ष्मी पाती तो है, पर उमानाथ उसका नहीं रह गया है । उमानाथ स्वयं महालक्ष्मी से अपने दूसरे विवाह की बात बता देता है । यद्यपि महालक्ष्मी सब कुछ जानती है फिर भी वह अनजान बनी रहती है, सब कुछ सहती है । उसकेलिए अपने पति का सुख ही सबकुछ है । उसकी एकमात्र इच्छा है कि अपने अतिशय उदार सद्व्यवहार से पति का हृदय जीतना और उसे अपनाने का प्रयत्न करना । परम्परा ने उसे पति के चरणों की दासी बनने की सीख दी है । वह कहती है - "आप मुझे त्याग चुके मैं आपकी पत्नी नहीं रही । ठीक है, लेकिन आप तो मेरे पति हैं, स्वामी हैं मैं तो आपकी दासी हूँ । आपउन्हें बुला लें । जब वह पूछे कि मैं कौन हूँ, तब आप कह दें कि मैं नौकरानी हूँ । और मैं विश्वास दिलाती हूँ कि मैं उनकी सेवा करूँगी, उनकी पूजा करूँगी ।"[1] अपने को गुलाम मानने की महालक्ष्मी की मानसिकता में सामाजिक पतन की सूचना है । स्त्री के प्रति अत्याचार का यह एक उत्तम उदाहरण है । यही पारिवारिक जीवन की सबसे बड़ी विसंगति है ।

इस उपन्यास में एक ऐसे ही कुलीन संयुक्त परिवार का विघटन दिखाया गया है, जहाँ नेतृत्व के प्रश्न को लेकर दो पीढ़ियों में भयंकर संघर्ष होता है । उस परिवार का कर्ता रामनाथ तिवारी अनियन्त्रित अधिकार भावना के कारण परिवार के प्रत्येक सदस्य को आतंकित करके वशीभूत करना चाहता है, फलस्वरूप उनके पुत्र ही उनकी अवज्ञा करते हैं । उनके देखते-देखते परिवार के नूतन एवं पुरातन विचारों का ऐसा संघर्ष आरम्भ हो जाता है, जिससे परिवार बिखरता है ।

---

1. टेढ़े-मेढ़े रास्ते भगवतीचरण वर्मा ; पृष्ठ 195

यशपाल के साथ प्रेमचन्दोत्तर युग के अन्य जितने उपन्यासकार हैं उन्होंने अपनी रचनाओं में व्यक्ति को केन्द्रित करने का कार्य नहीं किया है । अर्थात् उनके उपन्यासों में वस्तुत: समाज काफ़ी सक्रिय है । कम से कम समाज केन्द्रित पात्रों को इन उपन्यासकारों ने प्रस्तुत किया है । प्रेमचन्द युग की तुलना में उनमें यह इतना तो सक्रिय है कि कुछ कुछ बदले । लेकिन इसी मात्रा में पुरानी मान्यताओं में अपने को डुबोने की प्रवृत्ति भी है । अर्थात् गति-शीलता के समान्तर गतिहीनता की पलायनशील प्रवृत्ति भी इस दौर के उपन्यासकारों में उपलब्ध है । हिन्दी उपन्यास की विकासरेखा अत्यधिक स्पष्ट है । थोरे-थोरे इस विधा ने हमारी सामाजिक आकांक्षाओं के अनुरूप अपनी गति को बढ़ाने का कार्य किया है । जिन कुछ उपन्यासों के माध्यम से परिवार की स्थिति को जाँचने-परखने का कार्य किया गया है वह अपर्याप्त होते हुए भी इतना अवश्य कहा जा सकता है कि हिन्दी उपन्यास का यह एक प्रमुख विषयक्षेत्र है । परिवार के बदलाव को उसकी वास्तविकता में तथा वांछित दिशा में प्रस्तुत करते हुए पारिवारिक जीवन के कई अनछुए परिदृश्यों को उद्घाटित भी किया गया है । यह भी कहना उचित लगता है उपन्यास मात्र पारिवारिक जीवन सन्दर्भ में ही नहीं, सामाजिक क्रियाकलापों के सन्दर्भ में कई प्रामाणिक तथ्य प्रस्तुत कर रहे हैं ।

अध्याय दो

आधुनिक हिन्दी उपन्यास में

पारिवारिक जीवन का टूटता बिम्ब और मूल्य परिवर्तन

परिवार का बिम्ब

पारिवारिक जीवन उपन्यास का आनुषंगिक विषय है । दरअसल वह समाज को देखता है और प्रतिफलित करता है । इसलिए जिन उपन्यासों में पारिवारिक जीवन अंकित है वह समाज मे उपलब्ध सामाजिक स्थितियों में जीते-जागते परिवारों का ही अंकन है । अत: पारिवारिक बिम्ब सामाजिक बिम्ब का एक संक्षिप्त रूप है । यह भी द्रष्टव्य है कि परिवार का स्वरूप सामाजिकता के समान्तर होते हुए भी उपन्यासकार अपनी कल्पना शक्ति का प्रभूत मात्रा में उपयोग करता है । तब उसको कई इच्छित दिशाओं का समाहरण उसमे होता है । अर्थात सामाजिक क्रियाकलापों के अनुसार प्रतिफलन धर्मी स्वरूप उपन्यास में मिलता है तथा उसके साथ जिस किसी बिम्ब को उपन्यासकार गठित करता है उसमें उपन्यासकार की अनेक इच्छित दिशाएँ मूर्त होती हैं । लेकिन यह सामाजिकता को अधिक प्रेरित और प्रोत्साहित करने के हेतु होता है । उसकी संश्लिष्टताओं को पहचानने के हेतु होता है । परिवार का बिम्ब सामाजिकता के प्रतिकूल अंकित होना सम्भव नहीं है । पर वह प्रतिकूल शक्तियों के प्रतिकूल सन्दर्भित हो सकता है । कल्पनाश्रित दिशाओं की प्रासंगिकता वहीं तक है । जिन उपन्यासों में परिवार की कथा अंकित है उनमें परिवार का बिम्बांकरण कहीं सामान्य होता है कहीं असामान्य । दोनों प्रकार के बिम्बों में सहज और असहज स्थितियों का अंकन भी होता है । इस परिस्थान हुए परिवर्तन के चिह्नों को ढूंढ़ना पड़ता है । पारिवारिक जीवन सम्बन्धी उपन्यासों में परिवार का बिम्ब उपन्यासकार का सामाजिक एवं संवेदनात्मक दृष्टि का द्योतक है । सामाजिक दृष्टि के कारण इन बिम्बों में नये मार्ग को तलाशने के संकेत मिलते हैं । उनमें स्वाकृति और अस्वीकृति का सहसात बड़ी सफलतापूर्वक हुआ होता है । पारिवारिक जीवन के बिम्ब के भीतर इन सब का समालोचन होता है ।

परिवार का टूटता बिम्ब

अनेक कारणों से हमारा समाज बदलता है । बाह्य कारणों के समान आन्तरिक कारण भी होते हैं । बाह्य कारणों में आधुनिक जीवन के विभिन्न पक्ष होते हैं जैसे शिक्षा का विकास, वैज्ञानिक विकास तथा अन्य सामाजिक एवं राजनीतिक परिस्थितियाँ आदि । आन्तरिक करण में मुख्य है विवेक का विकास और यथार्थ को समझ । इसका यह अर्थ नहीं कि हमारे समाज का समग्र विकास हुआ हो । लेकिन विकास की असंख्य सम्भावनाएँ हर युग में दीखती हैं ।

परिवर्तन के अनुसार हमारी जीवन-रीतियों में बदलाव आते हैं । कई पुरानी मान्यताएँ अस्वीकृत होती हैं साथ ही उसी अनुपात में कभी कई पुरानी मान्यताएँ सुरक्षित भी होती है । नयी मान्यताएँ स्वीकृत होती हैं तथा पुरानी मान्यताएँ अस्वीकृत भी होती हैं । यह द्वन्द्व हर समाज की वास्तविकता है । इसलिए सामाजिक स्थिति का जो आरोह-अवरोह है उसके अनुसार परिवार की जीवन-रीतियों में परिवर्तन के कुछ लक्षण मिल सकते हैं । मोटे तौर पर परिवार सम्बन्धी नयी-पुरानी मान्यताओं की सुरक्षा के बावजूद उन्हें अस्वीकृत समझने की भावना भी मिलती है । अर्थात परिवार का बिम्ब टूटता दिखाई देता है । आधुनिक परिवारों में कम से कम पुरानेपन के प्रति झुकाव कम है । पुरानी मान्यता के प्रति खिंचाव समाप्त हो रहा है । द्वन्द्व भले ही चलें, नयी मान्यताओं को भले ही पूरी स्वीकृति न मिले फिर भी परिवार का ठोस स्वीकृत बिम्ब अब दरारों से युक्त है । कहीं-कहीं वह टूट चुका है ।

पारिवारिक टूटन को मूर्तिभंजक पात्रों की प्रतिक्रियाओं के माध्यम से स्पष्ट किया जा सकता है । विभिन्न उपन्यासों के उदाहरणों से पारिवारिक बिम्ब के टूटने के दृश्य पर्याप्त मात्रा में स्पष्ट हो सकते हैं । विभिन्न उदाहरण यों हैं -

अज्ञेय विवाह संस्था के प्रति अनास्था व्यक्त करते हुए पारिवारिक जीवन की विषमता प्रस्तुत करते हैं । "नदी के द्वीप" की रेखा पति से तलाक प्राप्त कर स्वच्छन्द जीवन व्यतीत करती है । दूसरी ओर रेखा का पति अपनी अलग गृहस्थी बना लेता है । चन्द्रमाधव भी अपनी पत्नी और बच्चे को छोड़कर अलग परिवार बसा लेता है । भुवन विवाह को सामाजिक बन्धन मानकर स्वीकार नहीं करता है, बल्कि पारिवारिक व्यवस्था का भंग करता हुआ रेखा के साथ अवैध यौन सम्बन्ध स्थापित करता है । इस उपन्यास का चन्द्रमाधव कहता है - "गृहस्थी का आइडिया ही असल में झूठ है, एक काल विपर्यय है, उस वर्ग-जीवन का प्रतीक है जो वर्ग ही आज मर रहा है । क्यों हम उसके द्वारा स्वीकृत एक परिपाटी को मानते चलें, जबकि स्वयं उसमें ही हमारी आस्था नहीं है ।"[1] विवाह और परिवार के प्रति रेखा का विचार है - "दिज़ ईज़ व्हाट मैरेज इज़ टु ए वुमन - आज अपनी शादी हो, कल से सारी दुनिया के नर-नारियों की जीवन व्यवस्था करने में लग जावें, यह स्त्री-स्वभाव ही है कि पुरुष के जीवन वेलिए वह निरन्तर साँचे बनाते चले ।"[2]

इसी उपन्यास में गर्भवती होने पर भुवन, रेखा के सामने विवाह का प्रस्ताव रखता है जिस पर रेखा अपनी प्रतिक्रिया यों व्यक्त करती है - "भुवन, तुम समाज की दृष्टि से देखते हो । वह दृष्टि गलत नहीं है, अप्रासंगिक भी नहीं है, निर्णायक भी वह नहीं है । व्यक्ति को दबाकर इस मामले का जो भी निर्णय होगा, गलत होगा घृण्य होगा, असह्य होगा । मेरे कर्म का - सामाजिक व्यवहार का नियमन समाज करे, ठीक है, मेरे अन्तरंग जीवन का नहीं ।"[3]

भारतीय दहेज-प्रथा ने कन्या के जीवन को कलंकापूर्ण बना दिया है और परिवार को विघटित किया है । कन्या के माता-पिता आर्थिक अभावों

---

1. नदी के द्वीप अज्ञेय ; पृष्ठ 258
2. वही ; पृष्ठ 320
3. वही ; पृष्ठ 215

से ग्रस्त रहने के कारण कन्या का विवाह उपयुक्त वर के साथ नहीं करा पाते । आर्थिक दृष्टि से स्वस्थ लड़कों के माता-पिता भारी दहेज की माँग करते हैं । कन्या का पिता निराश होकर अपनी कन्या को किसी प्रौढ़ व्यक्ति के साथ ब्याह देता है जो कन्या केलिए अभिशाप है । "सूरज का सातवाँ घोड़ा" की जमुना का विवाह दहेज के अभाव में एक प्रौढ़ व्यक्ति के साथ होता है । "आज नब्बे प्रतिशत लड़कियाँ जमुना की परिस्थिति में हैं । वे बेचारी क्या करें । तन्ना से उसकी शादी नहीं हो पायी, उसके बाप दहेज जुटा नहीं पाये ।"[1] फलस्वरूप जमुना अपनी युवावस्था में ही विधवा बन जाती है और उसका पारिवारिक जीवन टूट जाता है । "निम्न मध्यवर्गीय लोगों की घुटन, निराशा उनके आर्थिक संघर्ष तथा अनैतिकता का चित्रण" उपन्यासकार ने इस उपन्यास में युग-सापेक्ष दिखाया है ।

अमृत राय के "बीज" उपन्यास में सत्यवान और उषा के माध्यम से मध्यवर्गीय सम्मिलित परिवार प्रथा का अन्त दिखाया गया है । उषा और सत्यवान के बीच के पारिवारिक कलह का अन्त माँ से अलग होने पर ही जाता है । इस उपन्यास में यह स्पष्ट करने का प्रयास हुआ है कि परिवार में पुरानी और नयी पीढ़ी का संघर्ष चलता है । सत्यवान की माँ अपनी बहु से सन्तुष्ट नहीं । उसे बहु की बातें अच्छी नहीं लगतीं । सत्यवान को लगता है कि यह माँ का अत्याचार है जिससे उषा और उसका जीवन विषाक्त होता जा रहा है । तीनों अन्दर ही अन्दर एक दूसरे से असन्तुष्ट रहते हैं । सत्यवान सोचता है - "दुनिया खामखा संयुक्त परिवार की लाश ढो रही है, संयुक्त परिवार मर गया । इन हालतों में संयुक्त परिवार अब चल नहीं सकता । कितना संघर्ष मैं ने उस केलिए नहीं किया, मगर कोई नतीजा निकला ? सिवाय बदमज़गी और भी मनमुटाव, और भी ज़िन्दगी, इतना कि एक को दूसरे की शकल से नफ़रत हो जाए । बस यही नतीजा निकला मगर अब बहुत काफ़ी चख चुका इसके मज़े, अब तो अलग हो अपना घोंसला बनाऊँगा । जहाँ

---

1. सूरज का सातवाँ घोड़ा धर्मवीर भारती; पृष्ठ 34
2. स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास का शिल्प विकास राधेश्याम कौशिक; पृ 180

सिर्फ़ तीन लोग होंगे, उषा, मैं और हमारा मुन्ना ।"[1] असन्तोष का यह स्पष्टीकरण या अस्वीकृति के चिह्न असल में पारिवारिक बिम्ब के टूटने की ओर संकेत करते हैं । इन परिवर्तनों को बदलाव के बाह्य या आन्तरिक कारणों के तहत देखा जा सकता है । इन उदाहरणों में उपन्यास का कोई पात्र प्रमुखता के साथ प्रस्तुत होता है जिसके अस्तित्व को विशेष रूप से शब्दबद्ध करना उपन्यासकार का लक्ष्य है । लेकिन उसमें सामाजिक भूमिका का भी प्रतिफलन है । अत: कोई भी परिवर्तन अपने आप घटित नहीं है । उसके मूल में सामाजिक विकास का एक पक्ष रहता है ।

सम्मिलित परिवार के प्रति असन्तोष

संयुक्त परिवार के सदस्यों की सीमा एवं परिभाषा के सम्बन्ध में समाजशास्त्रियों के विभिन्न मत हैं । श्रीमती इरावती कर्वे के अनुसार - "संयुक्त परिवार उन व्यक्तियों का एक समूह है जो साधारणतया एक स्थान में रहते हैं, जो एक रसोई में पका भोजन करते हैं, जो सामान्य सम्पत्ति के स्वामी होते हैं और जो सामान्य उपासना में भाग लेते हैं, तथा जो किसी न किसी प्रकार एक-दूसरे के रक्त सम्बन्धी हैं ।"[2] डॉ॰देशाई के अनुसार - "संयुक्त परिवार उसे कहते हैं जिसमें मूल परिवार से अधिक पीढ़ियों के सदस्य (तीन या अधिक पीढ़ियों के सदस्य) सम्मिलित हो तथा उनके सदस्य एक दूसरे से सम्पत्ति, आय तथा पारस्परिक अधिकारों एवं कर्तव्यों के द्वारा सम्बंधित हों । "[3] समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण के अन्तर्गत यह आवश्यक नहीं है कि संयुक्त परिवार के सभी सदस्य भोजन एवं धर्मकार्य एक साथ करते हों और उनकी सम्पत्ति भी संयुक्त हो । हिन्दु कानून के अनुसार एक संयुक्त परिवार के अन्दर वे सब व्यक्ति आते हैं जो एक सामान्य पूर्वज के वंशज हैं । इनमें उनकी पत्नियाँ एवं अविवाहित लड़कियाँ भी सम्मिलित

1• बोज अमृतराय; पृष्ठ 168
2• किनशिप आर्गनाइज़ेशन इन इंडिया डॉ॰इरावती कर्वे; पृष्ठ 10
3• द ज्वाइन्ड फैमिली इन इंडिया आई.पी॰देशाई; पृष्ठ 48

हैं । और उन्हें संयुक्त रूप में एक संयुक्त परिवार तब तक माना जाएगा जब तक कि यह सिद्ध न हो जाय कि उस परिवार के सदस्य विभाजित हो गये हैं । इन सदस्यों की सम्पत्ति अगर संयुक्त है तो अच्छा ही है, पर यदि सम्पत्ति संयुक्त न भी हो, तो भी एक परिवार संयुक्त बना रहता है ।"[1]

स्वातन्त्र्योत्तर युग में सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थितियों में हुए परिवर्तन के कारण संयुक्त परिवार का विघटन होने लगा । संयुक्त परिवार के स्थान पर व्यक्ति केन्द्रित परिवार उभरने लगा । आधुनिक हिन्दी उपन्यास में संयुक्त परिवार के प्रति असन्तोष तथा उसके फलस्वरूप संयुक्त परिवार के विघटन का चित्रण है । इस विघटन का अपना समाजशास्त्र है । परिवार समाज की मूल इकाई होने के कारण इस विघटन को व्यापक परिप्रेक्ष्य में देखना ज़रूरी है । अत: इस प्रकार के पारिवारिक असन्तोष का अर्थ मूल्य परिवर्तन से है ।

आधुनिक समाज की पढ़ी-लिखी स्त्रियाँ संयुक्त परिवार का विरोध करती हैं । जैनेन्द्रकुमार का उपन्यास "सुखदा" की सुखदा इसका उदाहरण है । उसकी शादी एक मध्यवर्गीय परिवार के सदस्य कान्त, जो कम आमदनीवाला व्यक्ति है, के साथ होता है । सुखदा जानती है कि मध्यवर्गीय व्यक्ति की आय बहुत कम है, मात्र एक व्यक्ति की आमदनी से पति-पत्नी का जीवन-निर्वाह भी मुश्किल है। ऐसी हालत में परिवार के सभी सदस्यों का जीवन-निर्वाह एक व्यक्ति की कमाई से कैसे निबाहा जा सकता है । यही नहीं कमाऊ व्यक्ति की कमाई पर ध्यान केन्द्रित करके परिवार के अन्य सदस्य स्वतन्त्र रूप से गैर-ज़िम्मेदार होकर घूमते फिरते हैं । इस कारण से सारे परिवार का आर्थिक बोझ एक व्यक्ति के कन्धे पर पड़ता है । संयुक्त परिवार की इसी नीति पर सुखदा क्रुद्ध है । "कुछ दिन बाद ही मुझे गृहस्थी में बहुत-सी बातों का अभाव दिखाई देने लगा । वेतन का कुछ भाग गाँव में श्वसुर को भेजा जाता था, सो क्यों ? जेठ क्यों कुछ कमाने का काम जल्दी

---

1. भारतीय सामाजिक संस्थाएँ रवीन्द्र नाथ मुकर्जी ; पृष्ठ32।

नहीं करते ? ननद को तबीयत क्यों इधर लगी रहती है ? हम लोग कितनी तंगी में रहते हैं, फिर भी उन सबको रुपया पहुँचाया जाता है, यह बिलकुल ठीक नहीं है । इन बातों को लेकर अनबन होने लगी ।"[1]

सुखदा और कान्त के गाँव से दूर शहर में अलग रहने पर भी कान्त गाँव के अपने परिवार से सम्बन्ध बनाये रखता है । जब अपने पुत्र को नैनिताल के स्कूल भेजकर पढ़ाने का अवसर निकलता है तो कान्त इसका विरोध करता है । इसका एक ही कारण है आर्थिक तंगी । बच्चे की पढ़ाई के सम्बन्ध में कान्त बहाना ढूँढ़ता है कि "ऊँची पढ़ाई का मोह झूठा है सुखदा, उससे आदमी धरती से उखड़ा जाता है और तबीयत से बिलायती बनने लगता है ।"[2] बाहरी दृष्टि से कान्त का यह कथन बिलकुल भारतीय परिवेश के अनुकूल लगेगी । आर्थिक तंगी का एक प्रमुख कारण इस उपन्यास में संयुक्त परिवार बताया गया है जो पूर्ण रूप से सही न होने पर भी सही है । जब तक भरा-पूरा परिवार एक व्यक्ति की आमदनी पर टिकता हो तो आर्थिक विषमता आती है ।

संयुक्त परिवार के प्रति असन्तोष का कारण मात्र आर्थिक ही नहीं, बल्कि परिवार के अन्य सदस्यों का कटु होना भी है, अर्थात अत्याचार का एक बदला हुआ रूप । अमृतराय कृत "बीज" उपन्यास का सत्यवान-उषा का अन्तर्जातीय विवाह था जिससे सत्यवान की माता नाखुश है । इसी कारण से उसका पारिवारिक जीवन सुखपूर्ण नहीं है । उषा को हमेशा अपनी सास की शिकायतें सुननी पड़ती है । उपन्यास का प्रत्येक सदस्य संयुक्त परिवार से असन्तुष्ट है । सत्यवान और उषा के बीच जो पारिवारिक कलह है वह माँ के अलग होने पर सुलझ जाता है । उपन्यास में यह स्पष्ट करने का प्रयास हुआ है कि संयुक्त परिवार की टूटन का कारण पुरानी और नयी पीढ़ी का संघर्ष है । सत्यवान की माँ अपनी बहू से

---

1. सुखदा जैनेन्द्र कुमार ; पृष्ठ 10
2. वही ; पृष्ठ 89

सन्तुष्ट नहीं है । सत्यवान को लगता है कि माँ का अत्याचार बढ़ता जा रहा है । वह अपनी माँ को समझाता है - "रहूँगा तो मैं शहर में ही, लगभग रोज़ ही आऊँगा, तुम्हें देख जाऊँगा, कभी तुम वहाँ चली आना सब ठीक हो जाएगा उसी तरह प्रीति बनी रहती है, इस तरह हर वक्त बर्तनों को आपस में टकराने और बजते रहने से दिल फट जाते हैं ।"[1] सत्यवान सोचता है - "हम दो पीढ़ियों के लोग हैं । और पुरानी पीढ़ी नयी पीढ़ी के लिए जगह बनाने को तैयार नहीं है ।"[2] इसमें पीढ़ियों का वैमनस्य ही नहीं है अपितु मनमुटाव से उत्पन्न संघर्ष को दिखाया गया है जो एक युग तक दबा पड़ा था और अब इस प्रकार प्रकट होने लगा है ।

"भूले बिसरे चित्र" शीर्षक उपन्यास में भगवतीचरण वर्मा ने संयुक्त परिवार व्यवस्था तथा उसके विघटन को कहानी कही है । उपन्यास की रचना बदलते हुए जीवन मूल्यों के आधार पर हुई है । लेखक ने प्रत्येक पीढ़ी का संघर्ष अपनी गत पीढ़ी के परिप्रेक्ष्य में दिखलाया है । मुंशी शिवलाल उस मध्यवर्ग के प्रतिनिधि है, जो संयुक्त परिवार को मध्यवर्गीय जीवन का अविभाज्य अंग मानता है । मुंशी शिवलाल स्वयं तो विधुर है परन्तु उसका संयुक्त परिवार है और उस परिवार में उसके छोटे भाई राधेलाल का शासन है । यद्यपि ज्वालाप्रसाद का विवाह हो चुका है तथापि संयुक्त परिवार में नयी बहू के स्थान पर राधेलाल की पत्नी का ही आधिपत्य है । इसकी ओर संकेत करती हुई छिनकी शिवलाल से कहती है - "देखो, छोटी मालिकन बहु के साथ बड़ी ज़्यादती करती है । बिचारी ज्वाला की बहु कच्ची उमिर की, तीन दिन रात उइ से काम लेती है । हम पूछित हन कि तुम छोटी मालिकन का मना काहे नहीं करत हो ।"[3] छिनकी को समझाते हुए शिवलाल कहते हैं - "अरी छोड़ भी, बहु कोई पराये थोड़े ही है । घर की मालिकन है, जैसा ठीक समझती है वैसा करती है ।"[4] संयुक्त परिवार की यह

---

1. बोझ अमृतराय ; पृष्ठ 219
2. वही, पृष्ठ 170
3. भूले-बिसरे चित्र भगवती चरण वर्मा ; पृष्ठ 16
4. वही ; पृष्ठ 16

विशेषता है कि उसमें से यदि कोई व्यक्ति आर्थिक दृष्टि में अन्य लोगों से ऊपर हो जाता है तो सारा परिवार उसी के आश्रय में जीवन-यापन करने लगता है । ज्वालाप्रसाद के नायब तहसीलदार होते ही सब की आँखें उसी ओर लगी रहती हैं, क्योंकि नायब तहसीलदारी कम महत्वपूर्ण पद नहीं है । इसी से छिनकी उल्लास का प्रदर्शन करती हुई यमुना से कहती है - "तुम्हारे भोलेपन पर बलिहारी हाऊँ । बहू । अरे, नायब तहसीलदार बड़ा अफसर होता है, बस ऐसा समझो जैसा राजा होय । सैकड़न नौकर चाकर, चीज़ बस्त, जमा जथा । बस रानी महारानी की तरह रहिये बहू ।"[1]

संयुक्त परिवार की टूटती हुई धारणा की ओर इंगित करती हुई मुंशी शिवलाल इसे प्रगतिशील दृष्टिकोण मानता है - "अधिकार और शक्ति अपना स्थान बदल रहे हैं । एक जगह से टूट कर दूसरी जगह जा रहे हैं । परिवार की परम्परा टूट रही है ।"[2] उपन्यासकार का विश्वास है कि अधिकांश मध्यवर्गीय पारिवारिक कलह के मूल में पराश्रयी प्रवृत्ति विद्यमान रहती है । इसलिए वह इस आपत्ति से मुक्ति प्राप्त करने का यह उपाय सोचता है । गतिशील सामाजिक व्यवस्था में यह आवश्यक है कि व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं के अनुरूप ही अपना सम्पर्क रखे । इस तथ्य की अभिव्यक्ति उपन्यासकार ने ज्वालाप्रसाद के परिवार की कहानी के माध्यम से ही की है । राधेलाल का संयुक्त परिवार अपने स्वार्थों केलिए ज्वालाप्रसाद के पद और मर्यादा से खेलकर अपने को आर्थिक दृष्टि से सुदृढ़ बनाना चाहता है । अतः इस शोषण के विरुद्ध आवाज़ उठाकर छिनकी यमुना से कहती है - "ज़बरदस्ती हमारे भण्डारघर की चाबी छीन लीन्हिन । फतेहपुर के घर की मालकिन तौ रहै हो, यहूँ आपके मालकिन बन बैठी । बेदरदी के साथ खरच होई । ज्वाला बिचरऊ पिसके कमाइ है, और यह संड-मुसंड चचेरे भाई हुमक के खाइ है ।"[3] लेकिन जब इतने पर भी यमुना ध्यान नहीं देता तो वह पुनः सजग

1• भूले-बिसरे चित्र भगवती चरण वर्मा ; पृष्ठ 17
2• वही ; पृष्ठ 100
3• वही ; पृष्ठ 113

हो उठती है - "अपने भाग का नाहि खाय रहे हैं, गंगा के भाग का खाय रहे हैं ई सब लोग । ई गंगा, राजा केर लड़का आया । आगे बढ़के पढ़ो लिखो, ज़मीन जायदाद खरीदो, बड़ा मनई बनो । तौन ईकेर भाग ई सब ठलुआ खाए जात है ।"[1] अब यमुना के मन में अपने पति की कमाई लुटने का दुख होता है और पिछली की बात उसे सत्य प्रतीत होती है ।

संयुक्त परिवार के लोग ज्वालाप्रसाद की अर्जित सम्पत्ति का उपयोग मात्र नहीं करते अपितु समाज में उसके नाम एवं प्रतिष्ठा का दुरुपयोग करने में भी नहीं हिचकते । राधेलाल और श्यामलाल मिलकर ज्वालाप्रसाद के नाम पर अपनी बहू के लिए जेवर बनवा लेते हैं । पिछली इस रहस्य का उद्घाटन करती है । "हम कहानी गठित हन । तुम्हारी जिठानी को आध सेर की हसली और सवा सेर के पैरन के कड़ा जो अबहि-अबहि सुनार के यहाँ से गढ़ि के आये हैं, तौन हम कहानी गढ़ि रही हन । लुटाओ अच्छी तरह ते आँख मूँद के लुटाओ और गंगा का कंगाल बनाय देय ।"[2] राधेलाल की शोषण नीति का परिणाम यह होता है कि संयुक्त परिवार प्रणाली की भित्ति ढह जाती है । ज्वालाप्रसाद मज़बूर होकर जायदाद के सिलसिले में बटेश्वरीप्रसाद वकील से कह देते हैं - "मेरे पास कोई ज़मीन-जायदाद नहीं है, और मुद्दतक खानदान आज समझ लीजिए टूट चुका है ।"[3]

बढ़ती हुई पारिवारिक लड़ाई और पुरानी मान्यताओं की होड़ मुंशी शिवलाल की मृत्यु का कारण बनती है । मुंशी शिवलाल की मृत्यु के साथ ही वह संगठन सूत्र टूट जाता है, जो सभी को अब तक एक-सूत्र में बाँधे हुए था । पिता की मृत्यु के बाद भी जब पारिवारिक झगड़ा शान्त होने के स्थान पर और उग्र हो जाता है तो खीझकर ज्वालाप्रसाद को अपने चाचा राधेलाल से स्पष्ट रूप में कहना पड़ता है - "आप कल शाम के समय फतेहपुर के लिए रवाना हो रहे हैं समझे, अपने

---

1. भूले-बिसरे चित्र भगवतीचरण वर्मा ; पृष्ठ 114
2. वही, पृष्ठ 157
3. वही, पृष्ठ 181

बीबी-बच्चों के साथ । लगी हुई नौकरी सम्हालिए जाकर ।"[1] "इस नये यथार्थ सन्दर्भ से अनेक संस्कार जागे । जिसके परिणामस्वरूप सांस्कृतिक पुनरुत्थान की प्रवृत्ति उभरने के प्रयास में हैं और नये और पुराने अनमेल संयोग से एक अधकचरी मन:स्थिति जन्म ले रही है, या नये जीवन को गढ़ने में अपनी असमर्थता से पराजित होकर समाजद्रोह, अनास्थाशील विघटनवादी असहिष्णु प्रवृत्तियों को ही नये जीवन-मूल्य समझ बैठी है अथवा नये जीवन को गढ़ने की अपनी क्षमता के प्रति आस्थावान नये संस्कारों को रूपायित कर रही है जिनमें एक ओर तो परम्परागत स्वस्थ आदर्शों की स्वीकृति है तो दूसरी ओर नवीन परिस्थितियों के अनुरूप नये आदर्शों को गढ़ने की बलवती आकांक्षा भी है ।"[2] श्यामलाल की पत्नी सास के अत्याचारों से इतनी पीड़ित हो जाती है कि उसके अन्तर्मन से यह आवाज़ निकलती है - "जी मॉं आवत है कि ई चुड़ैल बुढ़िया का कौनों दिन ज़मीन पर पटकि के ऐस कचरी कि ज़िन्दगी भर केलिए ज़बान बन्द हुई जाए ।"[3]

मुंशी शिवलाल की मृत्यु होते ही ज्वालाप्रसाद में परिवर्तन होता है । अत्यन्त विवश होकर वह अपने चाचा के लड़के रामलाल को हटाता है । ज्वाला-प्रसाद अपने चाचा से कहता है - "मैं ने जो कुछ आप लोगों से कहा है, वो आप लोगों के हित में और अपने हित में कहा है । लड़कों से कहिए कि ईमानदार बने और मेहनत करें । इनकी ईमानदारी और मेहनत में मैं उन्हें हर तरह की मदद करने को तैयार हूँ । मेरे साथ रह कर ये सब लोग आवारा, कमज़ोर और बेईमान तथा लुटेरे बन रहे हैं । आखिर इनकी ज़िन्दगी को सुधारना आपका कर्तव्य है ।"[4] डॉ॰कुंवरपाल सिंह का कथन समीचीन है कि "उपन्यास में पुरानी पीढ़ी के मूक समर्पण की यातनाओं को देखकर युवा पीढ़ी का संघर्ष है ।"[5]

1• भूले-बिसरे चित्र भगवतीचरण वर्मा, पृष्ठ 184
2• आलोचना -स्वातन्त्र्योत्तर विशेषांक, पूर्णांक 34 पृष्ठ 34
3• भूले-बिसरे चित्र भगवतीचरण वर्मा; पृष्ठ 206
4• वही, पृष्ठ 249
5• हिन्दी उपन्यास, सामाजिक चेतना डॉ॰कुंवरपाल सिंह; पृष्ठ 159

हम देखते हैं कि ज्वालाप्रसाद का संयुक्त परिवार छिन्न-भिन्न हो जाता है । उपन्यासकार ने यह स्पष्ट किया है कि पुरानी पीढ़ी की भाँति नयी पीढ़ी परम्परागत मान्यता को नहीं निभाती है । नयी पीढ़ी के सामने परिवार से अधिक व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा है, इसी कारण से विश्वलाल की मृत्यु के बाद संयुक्त परिवार की कड़ी टूट जाती है । "संयुक्त परिवार के भ्रा लन आदर्श ढहते जा रहे हैं । संयुक्त परिवार के स्थान पर व्यक्ति का अपना सीमित परिवार रह गया है ।"[1]

"सारा आकाश" उपन्यास का मूल कथानक पारिवारिक विघटन को लेकर है । पारिवारिक विघटन का मतलब संयुक्त परिवार के विघटन से है । जब समर अपना स्वतन्त्र व्यक्तित्व बनाना चाहता है तब पुरानी मूल्य मर्यादाएँ आड़े आती हैं और वह उसके प्रति आक्रामक और विद्रोही हो जाता है । उपन्यास-कार ने शिरीष के माध्यम से आज़ादी के तुरन्त बाद के संयुक्त परिवार का चित्र प्रस्तुत किया है । शिरीष, दिवाकर और समर अपनी वास्तविक स्थिति से परिचित हैं और वे इस नतीजे पर पहुँचते हैं कि संयुक्त परिवार की परम्परा को तोड़ना होगा । उन्हें विश्वास है कि आज की आर्थिक स्थिति में संयुक्त परिवार चल नहीं सकता । अगर कोई संयुक्त परिवार के पक्ष में है तो वह कोरी भावुकता होगी । यही भावुकता सारी विसंगतियों को जन्म देती है । "रात-दिन हैरान-परेशान रहेंगे, लड़ेंगे-मरेंगे, सब होगा, लेकिन रहेंगे साथ ही, इज़्ज़त का सवाल अलग चूल्हा न जलने की हठ, अपरी भावुकता के पीछे स्वार्थ की खींचातान, इन सब के कारण कितनी हत्यायें आत्महत्यायें रोज़ होती है ।"[2] इसके अतिरिक्त सबसे बड़ी हानि यह है कि संयुक्त परिवार के चौखटे में व्यक्ति का व्यक्तित्व घुट जाता है । सारा समय समस्याएँ बनाने या बनी-बनायी समस्याओं को सुलझाने में चला जाता है । फलस्वरूप व्यक्तित्व का विकास नहीं हो पाता । उल्टी-सीधी बातों में फँसकर

---

1. हिन्दी उपन्यास में मध्यवर्ग डॉ. मंजुलता सिंह ; पृष्ठ 25
2. सारा आकाश : राजेन्द्र यादव ; पृष्ठ 193

व्यक्ति का दिमाग अपने सपने पूरे करने लायक नहीं रह जाता । किसी प्रकार की बौद्धिक और मानसिक वृद्धि के लिए शक्ति शेष नहीं रहती । दुनिया को प्रगति से परिचित होना भी असम्भव होता है । राजेन्द्र यादव के विचार में "व्यक्ति का निजी स्वातन्त्र्य चेतना, स्वतन्त्र विकास स्वप्न, महत्वाकांक्षा या अपनी अस्मिता की पहचान - इस सबके चलते पारिवारिक जीवन में दरार पड़ती है ।"[1]

बुढ़ापे में माँ-बाप से अलग होना शिरोष अनुचित नहीं मानता । यदि माँ-बाप बच्चों के व्यक्तित्व के विकास में बाधक बनते हैं तो उनसे अलग होना ही बेहतर है । संयुक्त परिवार विशेषत: जहाँ अभिशाप्त सिद्ध होता है, उसे तोड़ना ही स्पृहनीय होता है ।

हिन्दु परिवार में स्त्री को सम्मान और प्रतिष्ठा उसके पति के साथ है । यही पति यदि अपनी पत्नी का तिरस्कार करता है तो पूरे परिवार में उस स्त्री का निरादर होने लगता है । उपन्यास की प्रभा ससुराल प्रवेश करते ही पति द्वारा उपेक्षित होती है । प्रभा सुन्दर है और पढ़ी-लिखी भी है जो उसकी जिठानी की आँखों में खटकती है । जब समर अपनी पत्नी का तिरस्कार करता है तो बड़ी का साहस और बढ़ जाता है । प्रभा जब पहली बार भोजन बनाती है तो जिठानी उसे नीचा दिखाने के लिए दाल में एक मुट्ठी नमक मिला देती है । वह समर से यहाँ तक कहती है - "ठीक है सब ढंग पर आ जाएँगी, लालाजी औरत को जब तक दबाकर नहीं रखा जाता तब तक ठीक नहीं रहती है और खास तौर से जब पहले से ही किसी के गुमान बढ़े हुए हों । औरत तो लकड़ी का बन्दर है । ऐसा भी मरा प्यार क्या कि आदमी को आगा-पीछा कुछ भी न दिखाई दे । चाहे कितनी पढ़ ले, चाहे जितनी खूबसूरत हो, तो काम तो वही करना पड़ेगा नाम भी वही रहेगा । औरत की तो शोभा ही घर सम्भालने में है । अब इससे क्या फायदा कि किताबें तो तुमने लाखों पढ़ लीं और आता नहीं

---

1. साप्ताहिक हिन्दुस्तान 30मार्च, 1980 ; पृष्ठ 39

खाक-धूल भी । पहले दिन खाना बनाया सो तो तुमसे ठीक बना नहीं और भई बने तब जब आता हो वो तो किसी-किसी को आदत होवै लालाजी बिना कटे-पीटे ठीक नहीं होवै ।"[1] संयुक्त परिवार की मान-मर्यादाओं को निभाने में शिक्षित प्रभा समर्थ नहीं होती । जाने-अनजाने प्रभा इन मर्यादाओं का तिरस्कार करती है । इसका मूल कारण स्त्री का शिक्षित होना ही है । पर्दा करने से उसे नफ़रत है । इसलिए उसे श्वसुर के प्रकोप का भी भागी बनना पड़ता है । इस कारण समर के पिता जब-तब प्रभा को टोकते रहते हैं । एक दिन जब प्रभा छत पर धान बोनने चली जाती है तो समर के पिता पुत्र-वधु पर चरित्र हीनता का लांछन लगाने से भी नहीं चूकते । कोई और जगह दाल बीनने को रह ही नहीं गयी है ? छत पर ही बीनेगी । ऐसे ही उस दिन छत पर ही बालटी ले जाकर सिर धोया गया । उस दिन तो चुप हो गया; मन्नो ने सिफारिश कर दी । अब तभी बात छत पर ही होगी ? हमेशा गूँगे की तरह मनहूस-सी घूमती रहेगी आँख चुराती रहेगी, कुछ दिमाग ही नहीं समझ में आते साहबज़ादी के । वहाँ छत पर तेरा नाल गड़ा है । मैं साफ़ कहे देता हूँ, मुझे ये बातें ज़रा भी पसन्द नहीं है । जाड़े के दिन हैं, बीस आदमी छत पर धूप खाने का बहाना करके ताक झाँक करते रहते हैं । बहू की तरह रहो ।"[2]

एक दिन समर जब प्रभा के शरीर पर पुरानी फटी साड़ी देखता है तो माता से पत्नी के लिए एक साड़ी माँग लेता है । परन्तु समर की माता बहू से ही नहीं अपने पुत्र से भी तंग आ चुकी है । बहू दहेज नहीं लायी और पुत्र कुछ कमाता नहीं । वह स्पष्ट कर देती है - "अच्छा तू बोलने लगा अपनी बहू से । तू तो ज़रा-ज़रा सी बात पर छाती पर चढ़-चढ़ आएगा । तू ही एक अनोखा बहूवाला है । दूसरी बहू नहीं है । वह सिखा-सिखा कर भेजती होगी ।"[3] एक दिन समर अपने छोटे भाई के गाल पर चाँटा लगा देता है तो माँ बहुत अधिक

---

1. सारा आकाश राजेन्द्र यादव ; पृष्ठ 63-64
2. वही ; पृष्ठ 137
3. वही ; पृष्ठ 176-77

कुपित होती है । ये काहे को जानेंगे तमीज़-सलीका । "वो" तो सब तू ने सीख लिया है एक दिन में उस कलमुँहो से । लो अब हमें तमीज़-सलीका सिखाने चला है लाड़ला । कल तक पैदल चलना नहीं जानता था, अब आसमान पर उड़ने लगा । बेशरम तू है या वह है, जब देखो तब बहू की तरफ़दारी लिए चला आ रहा है, न छोटे का ध्यान, न बड़े की तमीज़ ।"[1] दूसरी ओर समर को पिता से यह सुनना पड़ता है - "ऐसा मालूम होता कि तू ऐसा होगा तो मैं तुझे पैदा होते ही खोद कर गाड़ देता । अब तो पढ़ा लिखाकर हाथी बना दिया है तो तेरे पर फूटेंगे ही, घर में अब तो कोई कुछ रहा ही नहीं ? अपनी मर्ज़ी के ही बादशाह हो गये । तू ऐसा ही चला आया था ईश्वर के पास से । हम तो कहें कौन कहे, कौन कहें । समझदार लड़का है, ख़ुद सोचेगा उन्हें तो खाने को मिलता है अच्छा-से-अच्छा, वो क्यों सोचने लगे ? अपनेलिए पढ़ लूँ .....अपनेलिए कपड़े - बहू को साज-श्रृंगार । जब तक कोई कुछ कहे नहीं .....कहे नहीं, तो सिर पर ही चढ़े चले आते हैं ।"[2] जब समर आगे कुछ बोलता है तो पिता और नाराज़ हो जाते हैं । "वे तो मैं पहले ही जानता था वो तो सब दोख ही रहा था, असल बाप का हो, अभी निकल जा, अभी । तू तो जाएगा जब जाएगा, ला मैं ही निकाले देता हूँ । निकालो जी, इनका सामान निकालो, करो विदा दोनों को । हमें कुछ मतलब नहीं हमारेलिए तो दोनों मर गये ।"[3]

शिरीष समर को सुझाव देता है कि यदि वह स्वयं जीवित रहना चाहता है और उसकी पत्नी को भी रखना चाहता है तो किसी भी स्थिति में अलग घर बसाना होगा । शिरीष अपने विचारों को अधिक स्पष्ट करता है । "संयुक्त परिवार का शाब्दिक अर्थ चाहे कितना ही महान हो, उसका सबसे बड़ा दोष यह

---

1. सारा आकाश राजेन्द्र यादव ; पृष्ठ 206
2. वही ; पृष्ठ 161
3. वही ; पृष्ठ 282

है कि परिवार का कोई सदस्य अपने व्यक्तित्व का विकास नहीं कर पाता । सारा समय या तो समस्याएँ बनाने में या बनी बनायी समस्याओं को सुलझाने में लग जाता है । लड़ाई-झगड़ा, खींचातान, बदला, ग्लानि सब मिलकर वातावरण ऐसा विषैला और दमघोटू बना रहता है कि आप साँस नहीं ले सके ।"[1]

संयुक्त परिवार के दमन-चक्र समर और उसकी पत्नी प्रभा के व्यक्तित्व विकास में बाधक होता है । पारम्परिक पारिवारिक मर्यादा एवं प्रतिष्ठा दो उन्हें किसी स्तर पर मिलने नहीं देता । परिणाम यह निकलता है कि वे एक घर में रहते हुए भी परस्पर अजनबी बने रहते हैं । आधुनिक युग की परिवर्तित परिस्थिति में संयुक्त परिवार व्यवस्था लाभदायक कम, हानिप्रद अधिक है । शिरोष के मत में - "आज आर्थिक स्थिति यह आ गयी है कि संयुक्त परिवार चल नहीं सकता । हिन्दु समाज में, या समाज में ही जहाँ जितनी ही गड़बड़ी, अव्यवस्था, चीख-पुकार आपको दिखाई दे रही है उसका एकमात्र कारण है कि हम लोग ज़बरदस्ती एक जगह रहना चाहते हैं । लड़ेंगे-मरेंगे सब होगा लेकिन रहेंगे एक जगह ही । चूल्हा अलग होने में घर की नाक कटती है, इज्जत का सवाल आड़े आता है ।"[2]

असल में "सारा आकाश" में पुरानी और नयी मान्यताओं की टकराहट ही चित्रित है । संयुक्त परिवार जब अपनी सीमाओं एवं कमियों के साथ एक बृहत्तर ढाँचा बना रहे तो व्यक्ति मुक्त नहीं हो सकता । क्योंकि वह इस ढाँचे का अभिन्न अंग है । फिर भी नयी परिस्थितियों से परिचित पीढ़ी अनुभव करने लगती है और यह अनुभव नये मूल्यों से सम्बन्धित है । अत: यह उपन्यास संयुक्त परिवार के प्रति असन्तोष व्यक्त करके मूल्य संघर्ष को ही प्रक्षेपित कर रहा है ।

अमृतलाल नागर कृत "बूँद और समुद्र" उपन्यास का महिपाल संयुक्त परिवार का सदस्य है । महिपाल की माता प्राय: ननिहाल में रहती थी और

---

1. सारा आकाश राजेन्द्र यादव ; पृष्ठ 209
2. वही ; पृष्ठ 158-59

वहाँ उसका आधिपत्य भी था । माता के आधिपत्य से उस परिवार के अधिकाँश सदस्य संतुष्ट नहीं थे । जब माता की मृत्यु हुई तो ननिहाल की पारिवारिक स्थिति बदल गयी । माता की मृत्यु के पहले परिवार में महिपाल का जो महत्व-पूर्ण स्थान था, माता की मृत्यु से वह नष्ट हो गया । महिपाल की माता के आधिपत्य से परिवार अन्य सदस्य जर्जरित थे उनकी ओर से प्रतिशोध की भावना जाग उठी । "भाभियाँ अपनी मरी हुई ननद के अत्याचारों का बदला उनकी सन्तानों से लेने लगीं ।"[1] यह तो ठीक है कि संयुक्त परिवार में किसी एक व्यक्ति पर अधिकार एकत्रित होता है जिसकी अधीनता में सारा परिवार चाहे खुश हो या नाखुश - जीवन बिताते हैं । इसमें अधिकतर सदस्य असन्तुष्ट भी हैं । यद्यपि इस असन्तुष्टि का प्रकटन नहीं हो जाता फिर भी उनके मन में प्रतिशोध की आग धधकने लगती है । वे प्रतिक्रिया की ताक में रहते हैं और उचित मौके पर वे ज़रूर प्रतिशोध कर लेते भी हैं ।

संयुक्त परिवार के मुखिया की मृत्यु पर उसके पक्षपातियों की स्थिति परिवार में आपत्तिजनक हो जाती है । महिपाल के जीवन में भी यही स्थिति होती है । उसे अपने ननिहाल में रहना नामुमकिन हो जाता है । अत: उसे अपने छोटे भाई तथा अपने परिवार को लेकर अलग रहना पड़ता है । बहुत मेहनत करके, पेट काट कर वह अपने छोटे भाई जयपाल को पढ़ाता है । यही नहीं संयुक्त पारिवारिक संस्था के अनुसार महिपाल अपने छोटे भाई का विवाह भी करा देता है । जब उसने छोटे भाई का विवाह करा दिया तो आशीर्वाद के नाते दहेज की व्यवस्था नहीं की थी । इसीलिए आर्थिक अभाव का अनुभव जयपाल के पारिवारिक जीवन में विसंगतियाँ पैदा करने लगा । फलस्वरूप जयपाल, महिपाल से रूठे हैं - "भइया ने मेरे साथ किया ही क्या है ? अगर वह मेरी शादी दहेज लेकर करते तो मेरे विलायत जाने का खर्च उसमें निकल जाता । वह अपने आशीर्वाद के फेर में बेवकूफियाँ करते फिरें तो उसकी ज़िम्मेदारी मेरे ऊपर किस

---

1. डूब और समुद्र अमृतलाल नागर ; पृष्ठ 190

तरह आती है ।"[1]

संयुक्त परिवार में वैयक्तिक स्वतन्त्रता का निषेध प्रकट है । यद्यपि महिपाल संयुक्त परिवार में रहकर, अपने वयक्तिक जीवन में अनेक विसंगतियों का सामना करता था, संयुक्त परिवार के कटु अनुभवों को झेलता था, फिर भी वह अपने भाई को वैयक्तिक स्वतन्त्रता का महत्व न देकर, अपनी इच्छा के अनुसार जयपाल का विवाह करा देता है । अपने भाई द्वारा कराये गये विवाह से जयपाल असन्तुष्ट है । इस असन्तुष्टि का कारण भाई का आदर्शवाद ही है । उचित दहेज की कमी से जयपाल का भविष्य आर्थिक तंगी से जर्जरित हो जाता है । उसका पक्ष है कि यदि विवाह में उचित दहेज प्राप्त होता तो उसका पारिवारिक जीवन आर्थिक दृष्टि से सुधर जाता । संयुक्त परिवार की परिधि से मुक्ति न मिल सकने से जयपाल के जीवन में यह अवस्था आती है । वैयक्तिक स्वतन्त्रता के खिलाफ़ आवाज़ उठाने के साथ-साथ संयुक्त परिवार प्रणाली का विरोध भी प्रकट है ।

महिपाल की लड़की शकुन्तला का भावी पति संयुक्त परिवार में रहते हुए भी संयुक्त परिवार के झंझटों से दूर रहता है । इस पर महिपाल की पत्नी कल्याणी कहती है - "दामाद देव संयुक्त परिवार में रहते हुए भी घर से स्वतन्त्र है । ये घर में रहते अवश्य हैं, ये ही चौके में खाते-पीते हैं, पर भावज को खाने की माहवारी रकम देकर । घर का हिस्साब किताब भाइयों के साफ है और आपस में बन बनाव भी खूब है ।"[2] आधुनिक समाज अर्थ केन्द्रित है । अर्थ की धुरी पर आधुनिक पारिवारिक सम्बन्ध खड़ा है । अर्थ केन्द्रित समाज में अर्थ के आधार पर सभी पारिवारिक मूल्यों और सम्बन्धों को आंकता है । परिवारों में कोमल भावनाओं का स्थान स्वार्थ ने हटप कर लिया है । स्वतन्त्र रह कर ये ही घर में

---

1. बूँद और समुद्र अमृतलाल नागर ; पृष्ठ 194
2. वही ; पृष्ठ 283

रहते हुए, एक ही घर से खाते हुए दामाद का अपने भावज को खाने को माहवारी रकम देने के पीछे यही मानसिकता है ।

माता-पिता की मृत्यु के बाद घर का सारा बोझ महिपाल पर पड़ जाता है । उसकी जो आमदनी है उससे सारे परिवार का रोज़खर्चा निभाना मुश्किल है । फिर भी उस पर जो ज़िम्मेदारी निहित है उसे ईमानदारी के साथ निभाता है, अपने भाई का भविष्य उज्वल बना देता है । महिपाल का यह कर्तव्य-निर्वाह संयुक्त परिवार की देख-रेख की अपेक्षा व्यक्ति की वैयक्तिक मान्यता के निर्वाह का परिचायक है । जो भी हो, वह पूरी निष्ठा से अपने छोटे भाई की पढ़ाई की पूर्ति में सहायक बनता है, शादी भी करा देता है । लेकिन अपने भाई के निर्मम व्यवहार से रुष्ट होकर महिपाल को अलग बसना पड़ता है । उससे अलग रहने का यह मतलब नहीं के महिपाल का संयुक्त परिवार व्यवस्था के प्रति घृणा है । लेकिन तत्कालीन पारिवारिक परिस्थिति में संयुक्त परिवार से अलग रहना उन दोनों भाइयों केलिए सार्थक है । महिपाल के दामाद का भी संयुक्त परिवार है । लेकिन वहाँ यह विशेषता देखते हैं कि सभी सदस्य एक साथ रहते हैं, एक साथ खाते हैं, लेकिन भावज को खाने की माहवारी देता है । यह भी संयुक्त परिवार के प्रति असन्तोष का प्रकटन है । इसका कारण यह है कि आज का जीवनमूल्य अर्थ पर केन्द्रित है । इस अर्थ केन्द्रित जीवन मूल्य के माध्यम से ही पारिवारिक सम्बन्ध का विघटन और संगठन सम्भव है । इसके सम्बन्ध में डॉ.रामविलास शर्मा ने "हूँद और समुद्र" को "पुरानी समाज व्यवस्था के बनते-बिगड़ते और बदलते हुए भारतीय परिवार का महाकाव्य"[1] बताया है ।

"पचपन खम्भे लाल दीवारें" उपन्यास में मध्यवर्गीय परिवार की बढ़ती आर्थिक कठिनाइयों तथा उन्हें झेलती हुई स्त्री का चित्र प्रस्तुत किया गया है । उपन्यास में मध्यवर्गीय परिवार की बढ़ती आर्थिक तंगी से परिवार की टूटन

---

1. आस्था और सौन्दर्य डॉ.रामविलास शर्मा; पृष्ठ 134

की कथा विन्यस्त है । कल तक स्त्री परिवारों में बन्द थी लेकिन आज वह शिक्षित है, आत्मनिर्भर है । प्रस्तुत उपन्यास की सुषमा अपने परिवार का आर्थिक भार स्वयं वहन करने को तैयार हो जाती है । सुषमा अपने मध्यवर्गीय परिवार के भरण-पोषण के लिए कॉलेज की नौकरी करती है तथा लड़कियों के हॉस्टल में वार्डन हो जाती है । इससे उसके जीवन का बहुत सारा समय बह जाता है और प्रौढ़ अवस्था में कदम रखती है । यद्यपि वह इस बीच में नील से प्रेम करती है पर उससे शादी नहीं कर पाती । इसका कारण यह है कि सुषमा का जीवन अपने परिवार से आबद्ध है । वह अपने परिवार की ज़िम्मेदारियों को भूलना नहीं चाहती । पारिवारिक ज़िम्मेदारियाँ सुषमा के वैयक्तिक जीवन में बाधाएँ उत्पन्न करती है । इस कारण संयुक्त परिवार के प्रति सुषमा असन्तोष है । इसका मतलब यह नहीं कि वह अपनी पारिवारिक ज़िम्मेदारियों से दूर भाग निकलती है । "पहली बात तो नील यह है कि मेरी बहुत ज़िम्मेदारियाँ हैं । तुमसे तो कुछ छिपा नहीं है । पक्षाघात से पीड़ित बाबू, दो बहनें और भाई, सब मुझे ही करना है ।"[1]

सुषमा की मजबूरी है उस का परिवार और परिवार का उत्तरदायित्व । वह उसे निभाती है । लेकिन दूसरी ओर उसका परिवार है जो अपने उत्तरदायित्व से विमुख है । सुषमा की माँ अपनी बहन कृष्णा से कहती है - "तुम जानो कृष्णा, सुषमा की शादी तो अब हमारे बस की बात नहीं रही । इतना पढ़-लिख गयी, अच्छी नौकरी है और अब तो क्या कहते हैं, हॉस्टल में वार्डन भी बननेवाली है । बंगला और चपरासी अलग से मिलेगा, बताओ इनके जोड़ का लड़का मिलना तो मुश्किल ही है ।"[2] एक भरा-पूरा परिवार और उसका उत्तरदायित्व जब सुषमा लेती है तो वह उत्तरदायित्व के लिए ही जाती है । वह आर्थिक स्रोत का उत्स मात्र बन जाती है ।

सुषमा की छोटी बहन नीरू की शादी की हलचल में सभी लोग व्यस्त हैं । लेकिन सुषमा कहीं इससे बहुत दूर अलग उदास है । उसका मन बिलकुल रीता

---

1. पचपन खम्भे लाल दीवारें उषा प्रियंवदा ; पृष्ठ 119
2. वही ; पृष्ठ 10

है । नीरू की शादी की सारी खुशियाँ उसे अछूता छोड़ जाती हैं । माँ का सुषमा के प्रति कृत्रिम लाड़-प्यार उसे और भी बेगाना बना देता है । सुषमा अपने को एक कमज़ोर, विवश स्त्री अनुभव करती है । "उसे जीवन में न जाने कहाँ कुछ ऐसी बात बिगड़ गयी थी, जो अब लाख बनने पर भी न बनेगी । इतने लोगों से घिरे रहने पर भी वह अकेली रहेगी ।"[1] व्यक्ति की अहमियत को भूलने वाले पारिवारिक वातावरण का चित्रण इसमें हुआ है । सुषमा की अहमियत उसका जीवन है । पर उस जीवन को संयुक्त परिवार ने अनदेखा किया है जिससे वह अधिक बेगानापन महसूस करती है ।

"यह पथ बन्धु था" उपन्यास में परम्परागत मूल्यों एवं मान्यताओं पर आधारित पारिवारिक जीवन की मर्माहत कहानी रूपायित है । प्रस्तुत उपन्यास मे ठाकुर परिवार की सरस्वती की कष्टगाथा द्वारा एक ओर लेखक संयुक्त परिवार में सहिष्णु स्त्री के अपमान, कष्ट और यातना की करुण कहानी कहता है, तो दूसरी ओर श्रीमोहन और श्रीवल्लभ के अलगाव के द्वारा वह स्पष्ट बता देता है कि श्रीनाथ ठाकुर और उनकी पत्नी के प्रयत्नों के बावजूद भी आर्थिक कारणों से सम्मिलित पारिवारिक जीवन टूट रहा है । सरो सोचती है - "क्या कभी "ये" ऐसा कुछ नहीं करेंगे कि वह भी उतनी निश्चिन्तता अनुभव कर सके जो कि उसकी जेठानी या देवरानी करती है ।"[2]

यह कुछ करने का तात्पर्य आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भर होना है । सम्बन्धों में तनाव और कटुता बढ़ने के कारण ही पिता श्रीनाथ ठाकुर जो पहले गौ के समान सीधे और मूक थे, अपने पुत्र श्रीमोहन के प्रति कठोर हो उठते हैं । श्रीमोहन को लगा - "शेष कुटुम्ब ने दीवारहीन एक दीवार ऐसी खींच ली थी, उठा ली थी कि जिसकी अपेक्षा कोई सी भी दीवार अच्छी ही होती तब होते हैं, तब मैं दीवार खिंची होती है । जब सामनेवाले की दीवार आप

---

1. बचपन खम्भे लाल दीवारें : उषा प्रियंवदा ; पृष्ठ 136
2. यह पथ बन्धु था नरेश मेहता ; पृष्ठ 309

केलिए अभेद्य हो जाएगी कुछ नहीं कहा जा सकता । दीवार अभेद्य तभी होती है जब अन्तर में खिंची होती है ।"[1]

उपन्यासकार ने बदलते मानवीय सम्बन्धों, राजनीतिक सामाजिक संस्थाओं और आर्थिक व्यवस्थाओं के खोखलेपन से संयुक्त परिवार के प्रति बड़ा असन्तोष व्यक्त किया है । इस असन्तोष के कारण भाई-भाई, पिता-पुत्र, सास-बहु, देवरानी-जिठानी के परम्परागत सम्बन्ध बदल गये हैं । उनमें सौहार्द, संवेदना और स्नेह की तरलता के स्थान पर स्वार्थ और ईर्ष्या-द्वेष रह गये हैं । डॉ.रामदरश मिश्र के शब्दों में - "श्रीधर के टूटने के साथ एक परिवार के टूटने की बड़ी स्वाभाविक कथा इस उपन्यास में उभरती है । एक ही परिवार में उभरनेवाले मूल्यों की टकराहट, सम्बन्धों की विच्छिन्नता आदि का बड़ा निर्मम चित्र अंकित हुआ है ।"[2] श्रीधर की परिवार टूटन के मूल में सामाजिक शोषण नीति ही काम करती है । इस स्थिति को देखकर श्रीधर इस परिणाम पर पहुँचता है कि - "पैसा शोषण का अस्त्र है, वह चाहे प्रकाशचंद के हाथ में हो, चाहे स्वाधीनता की लड़ाई लड़नेवाले ठाकुर साहब जैसे तपे हुए नेता के हाथ में, चाहे किसी के हाथ में । वह शोषण का अस्त्र बार-बार श्रीधर जैसे ईमानदार, स्वप्नदर्शी व्यक्ति को तोड़ता है और अन्त में पाता है कि वह हारा हुआ, टूटा हुआ आदमी बनकर शेष रह गया है ।"[3]

सामन्तीय मूल्यों का विरोध

पारिवारिक मान्यताओं में अनेक प्रकार के सामन्तीय मूल्य आरोपित रहते हैं । साधारण अवस्था में वे मूल्य स्वीकृत और प्रेत्साहित किये जाते हैं । लेकिन उनकी जड़ता का एहसास कभी-कभी होता है । ये सामन्तीय मूल्य कभी

---

1. यह पथ बन्धु था : नरेश मेहत्ता ; पृष्ठ 355
2. हिन्दी उपन्यास एक अन्तर्यात्रा : डॉ.रामदरश मिश्र ; पृष्ठ 144
3. वही ; पृष्ठ 143

व्यक्ति के स्तर पर तोड़े जाते हैं, कभी सामाजिक स्तर पर । अज्ञेय का उपन्यास "नदी के द्वीप" में रेखा पारिवारिक सामन्तीय मूल्य को व्यक्ति के स्तर पर तोड़नेवाली पात्र है । नेमिचन्द जैन ने इसलिए यों लिखा है - "स्त्री-पुरुष सम्बन्धों के विषय में समाज की खोखली, मिथ्या मान्यताओं के प्रति व्यक्ति के तीखे विद्रोह को व्यक्त किया है ।"[1] रेखा के चरित्र में कहीं भी किसी भी प्रकार की जड़ता को अपनाने की स्थिति नहीं है । इसलिए वह परिवार के बारे में भी ऐसा ही सोचती है । उसका निजी स्वार्थ उसे सामन्तीय मूल्यों के औचित्य में संकीर्ण करता नहीं है । इसलिए वह कहती है - "अब अगर मैं मर जाऊँ तो परमात्मा के - प्रकृति के - प्रति यह आक्रोश लेकर नहीं जाऊँगी कि मैं ने कोई भी फुलफिलमेंट नहीं जाना - पूर्ण भाव लेकर ही जाऊँगी - परमात्मा के प्रति और भुवन तुम्हारे प्रति ।"[2]

इस कथन में मात्र उसकी शारीरिक तृप्ति का संकेत नहीं है । उसकी मानसिक तृप्ति के संकेत ही मिलते हैं । इससे बढ़कर इन मूल्यों का तिरस्कार बलपूर्वक संकेतित है जो स्वीकृत सामन्तीयता के खिलाफ व्यक्त होता है । पुरुष के अनुसार शारीरिक एवं मानसिक शक्ति को पारिभाषित करने के बदले स्त्री के सन्दर्भ में स्त्री की मानसिक अवस्था को देखा गया है । इसे सामन्तीय मूल्यों का तिरस्कार कह सकते हैं । इस कारण से प्रस्तुत उपन्यास में परिवार का एक स्वीकृत बिम्ब टूटता है । उपन्यास में रेखा का पति हेमेन्द्र स्वेच्छाचारी और अहंकारी है जबकि पत्नी सुशिक्षिता तथा आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर । दोनों के सम्बन्ध विच्छेद के विषय में प्रसिद्ध है कि "विवाह आठ वर्ष पहले हुआ था, पर विवाह के दो-एक वर्ष बाद ही पति-पत्नी अलग हो गये थे । कारण कोई ठीक नहीं जानता और रेखा से पूछने का साहस किसे है ? कोई कहता है विवाह से पहले रेखा का किसी से प्रेम था पर उससे विवाह हो नहीं सकता था ; उसने बाद

---

1. अधूरे साक्षात्कार : नेमिचन्द जैन ; पृष्ठ 22
2. नदी के द्वीप अज्ञेय, पृष्ठ 159

में दूसरा विवाह कर लिया तो समाहित रेखा ने, उसके माता-पिता ने जो वर खोज लिया उसे चुपचाप स्वीकार कर लिया पर उसे वह दे न सकी जो पति को देना चाहिए, कोई यह कहते हैं कि पति की ही आदतें शुरू से खराब थीं ।"[1]

भुवन के कथन में कहीं भी चुनौती नहीं है । वह अपने में सीमित और संकुचित है । उसके विचार में न परिवार की मान्यता है न समाज की जबकि रेखा में है । "मैं तो समझती हूँ, हम अधिक से अधिक इस प्रवाह में छोटे-छोटे द्वीप हैं, उस प्रवाह से घिरे हुए भी, उससे कटे हुए भी, भूमि से बन्धे और स्थिर भी ।"[2] रेखा का यह कथन भी विचारणीय है - "हम जीवन की नदी के अलग-अलग द्वीप हैं - ऐसे द्वीप स्थिर नहीं होते, नदी निरन्तर उनका भाग्य गढ़ती चलती है, द्वीप अलग-अलग होकर भी निरन्तर घुलते और पुन: बनते रहते हैं । नया घोल, नये अणुओं का मिश्रण, नयी तलहट एक स्थान से मिटकर दूसरे स्थानों पर जमते हुए नये द्वीप ।"[3]

उसके कथन में द्वीप का संकेत व्यक्ति बिम्ब से सम्बंधित है । साथ नये अणुओं के मिश्रण का सम्बन्ध सामन्तीय मूल्यों से मुक्त होकर नये मूल्यों की खोज से है ।

उपन्यास में भुवन का सम्बन्ध गौरा से हो जाता है । यह सम्बन्ध इतना तीव्र होता है कि रेखा उसके सामने निरी ईर्ष्यालु महिला बन कर ही नहीं रहती । रेखा उन दोनों के सम्बन्ध को नये सिरे से देखती है । रेखा भुवन से अलग होकर भी शान्त और सन्तुष्ट है । मैं शान्त हूँ, जो भावनाएँ मुझे तोड़ती, मरोड़ती, विक्षुब्ध करके रख देती थी, अब मुझे छूती तक नहीं ।

---

1. नदी के द्वीप अज्ञेय ; पृष्ठ 27
2. वही ; पृष्ठ 22
3. वही ; पृष्ठ 315

और यह नहीं कि मैं हृदयहीन हो गयी हूँ, संवेदनशून्य हो गयी हूँ - नहीं, मैं अधिक संवेदनशील भी हूँ, पर अधिक अनासक्त भी ।"[1]

व्यक्ति के इस स्वातन्त्र्य से उद्भूत विचार और परिवार सम्बन्धी व्यक्ति की मानसिकता का एक मानक रूप उपन्यास के इन व्यक्ति सम्बन्धों के बीच हमें प्राप्त होता है ।

मध्यवर्गीय जीवन के विभिन्न परिदृश्यों को प्रस्तुत करके धर्मवीर भारती "सूरज का सातवाँ घोड़ा" शीर्षक उपन्यास में परिवार के टूटते बिम्बों का अच्छा-खासा परिचय देते हैं । बाहर से पूरी तरह कसा हुआ पारिवारिक बिम्ब भी आन्तरिक स्तर पर शिथिल और बिखरा हुआ होता है । मानिक मुल्ला द्वारा प्रस्तुत कहानियों में, जिनमें अलग-अलग व्यक्तियों की परिवार कथाएँ हैं, पारिवारिक बिम्ब के बिखराव के संकेत हैं । इस कारण से नेमिचन्द जैन ने सम्भवत: यों लिखा है कि "सूरज का सातवाँ घोड़ा" अपनी शिल्पगत नवीनता और ताज़ेपन, उन्मुक्त हास्य और व्यंग्य तथा उनके पीछे निहित निम्न-मध्य वर्गीय जीवन के खोखलेपन और कुण्ठा की अभिव्यक्ति के लिए निस्सन्देह उल्लेखनीय है ।"[2] वास्तव में उपन्यासकार का लक्ष्य भी यही है । इस उपन्यास का तन्ना नैतिक बन्धनों से बिन्धा हुआ है । वह असत्य से समझौता नहीं कर पाता । समाज की सामन्तीय धारणाओं के प्रति उसमें विद्रोही भावना है । "जब पूरी व्यवस्था में बेईमानी है, तो एक व्यक्ति की ईमानदारी इसी में है कि वह एक व्यवस्था द्वारा लादी गयी सारी नैतिक विकृति को भी अस्वीकार करे और उसके द्वारा आरोपित सारी झूठी मर्यादाओं को भी, क्योंकि दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू होते हैं । लेकिन हम यह विद्रोह नहीं कर पाते ।"[3] व्यक्ति सामाजिक प्राणी होने के नाते समाज से विलग नहीं रह सकता । समाज में व्यक्तियों ने ही सामन्तीय व्यवस्था बनायी है जिससे अपने अधिकार और शक्ति को सुरक्षित रखना चाहता है । व्यक्ति-व्यक्ति

---

1. नदी के द्वीप अज्ञेय ; पृष्ठ 279-80
2. अधूरे साक्षात्कार नेमिचन्द जैन ; पृष्ठ 119
3. सूरज का सातवाँ घोड़ा धर्मवीर भारती ; पृष्ठ 56

में ऐसे सामन्तीय मूल्य जाने-अनजाने में समाहित है । यह व्यक्ति को अतिरेकता है पर यह एक सामाजिक मानसिकता भी है । स्वभावत: कोई भी व्यक्ति इससे मुक्त नहीं । लेकिन तन्ना इन सारी सामाजिक विकृतियों और झूठी मर्यादाओं का उल्लंघन करता है । व्यक्ति भीतरी रूप से इसका विरोध कर सकता है, पर विद्रोह करने में वह असमर्थ है । समाज की सामन्तीय मानसिकता का तन्ना भी शिकार बन जाता है । इसी कारण से ही लिली से विवाहित होने के बावजूद तन्ना का पारिवारिक जीवन नरकतुल्य बन जाता है । "जो इस नैतिक विकृति से अपने को अलग रखकर भी इस तमाम व्यवस्था के विरुद्ध नहीं लड़ते, उनकी मर्यादा शीलता सिर्फ परिष्कृत कायरता होती है । संस्कारों का अन्धानुकरण ।"[1] इन सामन्तीय विचारधाराओं ने मणिक मुल्ला के पारिवारिक जीवन की संकल्पना को तोड़ दिया । वह लिली और सत्ती के प्रति ईमानदार न रह सका । सामाजिक व्यवस्थाएँ और नैतिक विकृतियाँ इतना जटिल है कि उनका जाल तोड़कर बाहर आने का साहस उपन्यास के किसी भी पात्र में नहीं है । "हर युग में समकालीन धारणाएँ और मान्यताएँ हुआ करती हैं, जो पूरे तौर पर नहीं तो कम से कम गत युग की समकालीन मान्यताओं की अस्वीकृति के फलस्वरूप उत्पन्न होती हैं । इस प्रकार ये मान्यताएँ हर युग में विकासशील हुआ करती है ।"[2] पुराने मूल्यों की नींव पर ही नवीन मूल्यों की आधारशिला टिकी हुई होती है, क्योंकि प्राचीन मूल्यों का ही विकास नया रूप धारण करता है ।

नैतिक साहस के अभाव के कारण मणिक मुल्ला प्रेम की विफलता में व्यक्तिवादी, अन्तर्मुखी, असामाजिक, आत्मघाती, उच्छृंखल हो जाता है । न तो वह लिली से ईमानदार है और न सत्ती के प्रति । मणिक मुल्ला की झूठी मान-मर्यादा ने दोनों को ही तोड़ फेंका । "हम सब परम्पराओं, सामाजिक परिस्थितियों, झूठे बन्धनों में इस तरह कसे हुए हैं कि उसे सामाजिक स्तर पर ग्रहण

---

1. सूरज का सातवाँ घोड़ा : धर्मवीर भारती; पृष्ठ 57
2. स्वातन्त्र्योत्तर कथा साहित्य सीताराम शर्मा; पृष्ठ 45

नहीं कर पाते, उसकेलिए संघर्ष नहीं कर पाते और बाद में अपनी कायरता और विवशताओं पर सुनहरा पानी फेर कर उसे चमकाने की कोशिश करते रहते हैं ।"[1] सामन्तीय विचार समाज और व्यक्ति में इतना रूढ़ मूल है कि उससे मुक्त होने तक की बात व्यक्ति या समाज सोच तक नहीं सकता है । यह धारणा व्यक्ति के नस-नस में समाहित है । व्यक्ति में प्रतिक्रिया की शक्ति तो है हो, लेकिन उसका मौन उन सामन्तीय विचारों को पोषित करने की कोशिश ही करता है ।

जैनेन्द्र के उपन्यास "सुखदा" की सुखदा अपने पति के मित्र लाल के सम्पर्क में आ जाती है जो क्रांतिकारी है । सुखदा लाल की विचारधारा से प्रभावित होती है । लाल में ऐसे गुण विद्यमान हैं, जिनका एक स्त्री आकांक्षी है । लाल से परिचित होने पर पारिवारिक जीवन से बाहर स्वतन्त्र रहने का उपदेश लाल से मिलता है तो वह लाल के क्रांतिकारी विचारों की ओर आकृष्ट होती है । सुखदा विचार करती है कि वैवाहिक जीवन की तुलना में प्रेमी का जीवन ही व्यक्ति-विकास में सहायक है । परम्परागत सामन्तीय समाज व्यक्ति-विकास में बाधक है । लाल का कथन है कि - "उधर पश्चिम की तरफ़ से आ रहा है यह तूफान । आप श्रेष्ठ को लेंगे, निकृष्ट को फेंक देंगे । वह उस फेंके हुए उच्छिष्ठ को ही धर्मा बनाकर उठा बढ़ा चला आ रहा है । वह स्वप्नवाद नहीं है, वह ठेठ तनकर और कर्मवाद है । आदर्श नहीं, एकदम वह व्यवहार है । उसमें आत्मा की बात नहीं, आदमी की बात है, वह स्त्री देवी नहीं है, और आत्मा नहीं है, वह स्त्री और साधिन है ।"[2] परम्परागत सामन्तीय विवाह पद्धति के, प्रति सुखदा में ऊब और विद्वेष है । यह ऊब और विद्वेष अपने पति या पुरुष वर्ग की अहंभावना से उद्भूत है । यद्यपि उपन्यास में मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त के फलस्वरूप उद्भूत समस्याओं पर भी ज़ोर है फिर भी पारिवारिक जीवन का यह चित्रण सामन्तीय मूल्यों के प्रति विरोध सूचित करने केलिए भी उपयुक्त है ।

---

1. सूरज का सातवाँ घोड़ा धर्मवीर भारती ; पृष्ठ 71
2. सुखदा जैनेन्द्र कुमार ; पृष्ठ 154

सामन्तीय मूल्यों का निषेध अमृत राय के "बीज" उपन्यास में भी प्राप्त है । अधिकार और शक्ति के सामने प्रत्येक व्यक्ति का सिर झुक जाने की सामन्तीय भावना नये समाज में भी विद्यमान है । परम्परागत दृष्टि का विश्लेषण करें तो स्पष्ट होगा कि समाज में किस कदर सामन्तीय मूल्य युक्त है । "पुरुष देवता है और स्त्री दासी है, पुरुष राजा है और स्त्री बाँदी, पुरुष हीरा है और स्त्री धूल ।"[1] स्त्री, पुरुष का मात्र अनुकर्ता न होकर अपने स्वतन्त्र अस्तित्व की घोषणा करती हुई, आत्मनिर्भरता के साथ अपना मार्ग स्वयं निर्धारित करनेवाली है । वह परम्परागत समाज के "अबला" मूल्य का ध्वंस करते हुए अबला स्त्री के मूल्यों की प्रतिष्ठा का आह्वान करती है । पुरुष के एकाधिकार के प्रति व्यंग्य करती है । परम्परागत समाज-व्यवस्था के सामन्तीय मूल्यों के प्रति प्रत्यक्ष एवं परोक्ष विद्रोह करती है । "स्त्री रात की संगिनी है, शय्या का अलंकार, बिस्तर की जगमगाहट । स्त्री के पास पुरुष क्रीड़ा केलिए आता है । स्त्री की कोई दूसरी उपयोगिता नहीं है ।"[2]

इसी उपन्यास की राजेश्वरी पति परित्यक्ता है, जो उच्च शिक्षा प्राप्त और प्रगतिशील विचारवाली है । वह स्वतन्त्र जीवन-यापन करती है । उसका परिचय सत्य से होता है जो सत्य को भाई समान मानती है । लेकिन समाज की दृष्टि में उन दोनों का सम्बन्ध अवांछित है । सत्य सोचता है - "पुरुष और स्त्री दो इन्सानों की तरह आपस में मिल ही नहीं सकते । स्त्री और पुरुष होने के पहले भी दोनों आदमी हैं, इन्सान हैं और दो इन्सानों के बीच अगर ऐसे प्यार का भाव आ जाय तो न तो वह अनुचित है और न उस पर दाँतों तले उँगली देने की ही ज़रूरत है ।"[3] स्त्री और पुरुष का अलग-अलग व्यक्तित्व मानने की सामन्तीय धारणा के बदले व्यक्ति-व्यक्ति समझने की प्रगतिशील धारणा को स्वीकारना है । स्त्री और पुरुष को सबसे पहले इन्सान मान लेने से समाज तथा परिवार की सारी

---

1. बीज अमृत राय ; पृष्ठ 269
2. वही ; पृष्ठ 324
3. वही ; पृष्ठ 48

समस्याओं का हल सम्भव है । लेकिन आज के समाज में भी इसे स्वीकारने की मानसिकता लक्षित नहीं होती । सत्यवान का समाज को इस मानसिकता के प्रति आक्रोश है ।

राजेश्वरी में तत्कालीन सामाजिक मान्यताओं के प्रति विद्वेष और आक्रोश है । लेकिन वह इस सामाजिक परिधि से बाहर नहीं आ सकती । यद्यपि राजेश्वरी अब स्वतन्त्र है, तथापि वह सामन्तीय मूल्यों का अल्लंघन नहीं कर पाती । राजेश्वरी का परिचय पर-पुरुष से होता तो है लेकिन वह न तो अपनी वासना दमित कर पाती है और न ही समाज को चुनौती देकर दूसरा विवाह ही । वह तो घुट-घुट कर ज़िन्दगी जी लेती है क्योंकि "हमारे इस मौजूदा समाज में, जिसमें स्त्री का कोई स्वतन्त्र अस्तित्व माना ही नहीं जाता, जिसमें उसका अपने जीविकोपार्जन केलिए कुछ करना भी सन्देह की दृष्टि से देखा जाता है ।"[1]

सही और गलत की भिन्न-भिन्न दृष्टियों में समाज की वास्तविक उन्मुक्तता स्पष्ट व्यंजित होती है । स्त्री और पुरुष सम्बन्धों सही और गलत के मूल्य निर्धारण में बाह्य वातावरण सम्बन्ध मात्र ही नहीं है बल्कि परिवार में भी अन्ततः यही मूल्य चलता है और यही स्वीकृत है । इसीलिए स्त्री केलिए स्वीकारे गये मूल्यों में सामन्तीय दृष्टि विद्यमान है ।

शिक्षा का विकास और स्वच्छन्दतावादी दृष्टिकोण ने पारिवारिक जीवन पर महत्वपूर्ण प्रभाव डाला है । इस प्रभाव ने परिवार के ढाँचे को हिला दिया है । पारिवारिक जीवन की विडम्बनाओं के कारण शिक्षित स्त्रियों ने पारिवारिक जीवन का विरोध किया है । परिवार में व्यक्ति के व्यक्तित्व का जब तिरस्कार होता है तब पारिवारिक जीवन असह्य होता है । "डूँड और समुद्र" का बड़ा का वैवाहिक जीवन दुखी है, वह स्वच्छन्द जीवन बिताना चाहती है ।

---

1. बाज अमृत राय; पृष्ठ 143

वह कहती है - "हम चाहते हैं कि औरतें भी पढ़ लिख कर नौकरी करें । तब जैसे नरेन मनमानी करता है वैसे ही औरतें भी करेंगी । घर-गृहस्थी की झंझट नहीं । मज़े में दफ़्तर गये, होटल में खाया और जिसके साथ मन में आया, घूमें फिरें ।"[1] आज की स्त्री समझती है कि पुरुष को सबकुछ करने की आज़ादी है । इसी सामन्तीय विचार का विरोध आज स्त्री प्रकट कर रही है ।

स्त्री की पतित स्थिति का कारण आर्थिक परतन्त्रता है । इसे स्वीकारते हुए वनकन्या के माध्यम से स्त्री की आत्मनिर्भरता की आवश्यकता को स्पष्ट किया गया है । "आम ज़िंदगी में स्त्री घर का काम-काज सबकी सेवा टहल करनेवाली और पुरुष के भोग की वस्तु होने के अलावा और कुछ भी नहीं । हाँ, उसका एक महत्व यह अवश्य है कि वह बच्चा पैदा करनेवाली मशीन भी है । बच्चे चूँकि इन्सान की ज़िन्दगी को बढ़ाने के लिए अहम् ज़रूरी है, इसलिए उनका उत्पादन करनेवाली फैक्टरी का महत्व है ।"[2] वनकन्या के इस कथन का मतलब यह है कि स्त्री वर्ग में पुरुष प्रधान समाज की क्रूरताओं के प्रति विरोध प्रकट करने की क्षमता बढ़ रही है ।

"एक इंच मुस्कान" शीर्षक उपन्यास में अमला नामक पात्र के माध्यम से पारिवारिक मूल्यों पर लादी गयी सामन्तीयता का विरोध प्रकट किया गया है । वह कहती है - "वह सड़ना नहीं चाहती, सूखना नहीं चाहती, बहना चाहती है, निरन्तर बहना चाहती है, अनजानी, अनदेखी दिशाओं में बहना चाहती है, दूर-दूर निरुद्देश्य सी, लक्ष्य हीन सी पर निर्बन्ध और उन्मुक्त ।"[3] इस कथन में व्यक्ति की अतिरेकता अधिक कार्य कर रही है । उपन्यास में इस विरोध को दिशान्वेषी बनाने का उपक्रम है । अमला के कथन में भटकन ही अधिक है और मूल्य सापेक्षता कम दिखाई पड़ती है । "मुझे तो बस अदेखे-अजाने रास्तों में भटकना

---

1. बूँद और समुद्र अमृतलाल नागर ; पृष्ठ 65
2. वही ; पृष्ठ 111
3. एक इंच मुस्कान मन्नू भण्डारी और राजेन्द्र यादव ; पृष्ठ 112

अच्छा लगता है । सोचती हूँ – राह निश्चित हो, मंज़िल मालूम हो, तो चलने का आनन्द ही क्या भला ।"[1]

रमेश बक्षी कृत "बैसाखियों वाली इमारत" उपन्यास का पत्रकार बौद्धिक व्यक्ति है । वह प्रेम, विवाह, परिवार, वैवाहिक सम्बन्ध को घृणा की दृष्टि से देखता है । किसी भी पारिवारिक सम्बन्ध में वह सहज नहीं हो पाता । इसलिए वह स्त्री-पुरुष का मात्र शारीरिक सम्बन्ध ही मानता है । इसी में वह अपने जीवन को धन्य मानता है । पत्नी से भी केवल शारीरिक सम्बन्ध के अलावा और कुछ नहीं चाहता । उसके लिए जीवन में प्रेम, ममता, वात्सल्य, दया का कोई महत्व नहीं है । अगर कोई ऐसी भावनाओं से युक्त है तो, उसकी दृष्टि में वह मूर्खता है । उस की पत्नी इस विचार का विरोध करती है । इस कारण से उनका पारिवारिक जीवन बिखरता है । "हम पति-पत्नी एक दूसरे से कुत्ते-बिल्ली की तरह लड़ रहे हैं । माँ-बाप-भाई, परिवार सारे-सारे रिश्ते परिचित होने पर भी एक-दूसरे से हम ऐसे कट गये हैं कोई पतंग सी कैसी तुनकमिज़ाजी से न कटे ।"[2]

पत्रकार पात्र मिस जायस और वसुधा से शारीरिक सम्बन्ध रखने की कोशिश करता है । वह अपनी पत्नी से भी केवल शारीरिक सम्बन्ध का ही आकांक्षी है । –"मैं ने तुमसे इसलिए शादी नहीं की कि प्रेम-प्रेम के ढकोसले दुहराऊँ – तुमसे शादी की है, मेरा तुम्हारा पति-पत्नी का रिश्ता है – प्रेम नाम का मूर्खता हमारे बीच नहीं है । मैंने अरेंज्ड मैरिज केवल इसलिए की है कि प्रेम का गोरख-धन्धा मुझे बेवकूफ लगता है ।"[3] सम्पूर्ण बिखराव प्रस्तुत उपन्यास में दिखाया गया है । भले ही यह दृष्टिकोण हमारी सामाजिक व्यवस्था के अनुकूल नहीं है फिर भी रूढ़ियों के प्रति जो विरोध दर्शाया है, वह शुद्ध है ।

---

1. एक इंच मुस्कान मन्नू भण्डारी और राजेन्द्र यादव ; पृष्ठ 151
2. बैसाखियों वाली इमारत रमेश बक्षी ; पृष्ठ 78
3. वही ; पृष्ठ 23

"अमृत और विष" उपन्यास में विवाह के सन्दर्भ में, जिसमें स्त्री और पुरुष के सही निर्णयों को महत्व मिलता है, सामाजिक मूल्य-हीनता का विरोध किया गया है । रानो बाला विधवा है जोकि पारम्परिक परिवार की दृष्टि से पिछड़ी है । यही सामन्तीय दृष्टि है । इसलिए उपन्यास का रमेश जब उसका हाथ बंटाना चाहता है तो विरोध होता है । लेकिन वह उसका विरोध करता है । रमेश अपने मामो ससुर रघुवीरसिंह से कहता है - "आप आज़ाद भारत में इस तरह दो शरीफ़ युवक-युवतियों को जोकि बालिग हैं, समझदार हैं, स्वतन्त्र हैं, शरीफ़ आदमियों की तरह विवाह करके अपना संस्कार बताना चाहते हैं, इस तरह अपमानित कैसे कर सकते हैं ।"[1] विधवा, परिवार और समाज के लिए अभिशप्त है । सामन्तीय धारणा यह रही है कि पति की मृत्यु का कारण पत्नी की चरित्रगत बुराइयाँ ही हैं । विधवा के सुधार का कोई भी कार्य परिवार और समाज में नहीं चलता था ।

इस प्रकरण में जितने उपन्यास विश्लेषित हैं उनमें अधिकांश उपन्यासों में पारिवारिक जीवन की अस्पृहणीयताओं का विरोध किया गया है । यह बदले हुए जीवन-परिवेश के कारण है । पारिवारिक बिम्ब के टूटने के पीछे नया, बदला जीवन-परिवेश का सशक्त योगदान है । सामाजिक मान्यताएँ बदलती हैं तो परिवार का पुराना बिम्ब यों ही सुस्थिर नहीं रह सकता है । इसलिए जिन पात्रों के माध्यम से विरोध संकेतित है वह विरोध का शाब्दिक संकेत मात्र नहीं है बल्कि, सामन्तीय मूल्यों के प्रति प्रकट की गयी अप्रीतिकर प्रतिक्रिया का प्रमाण भी है

रूढ़ियों का निषेध

उपन्यासों में परिवार की कथा एक मूल्यपरिदृश्य का कार्य करती है । परिवार की कथा अपनी रफ्तार से आगे बढ़ती है । लेकिन जब वह मूल्य परिदृश्य से सम्बद्ध है तो उसकी प्रत्येक घटना, उसकी प्रत्येक प्रतिक्रिया, मानसिक उलझन

---

1. अमृत और विष अमृतलाल नागर ; पृष्ठ 400

आदि सामाजिकता से सम्बन्धित होती हैं । आधुनिक उपन्यासों में रूढ़ियों के प्रति निर्भीकता के साथ विरोध प्रकट किया गया है । व्यक्ति ने सामाजिक रूढ़ियों की असार्थकता को नये दृष्टिकोण से परखा । परिणामस्वरूप जब उसने उन्हें खोखला पाया, तो अपने द्वारा निर्मित समाज व आदर्शों के प्रति विद्रोही हो उठा । "रूढ़िगत परम्पराओं या मान्यताओं का विरोध हम सिर्फ़ विरोध के ही उद्देश्य से नहीं करते, बल्कि इसलिए करते हैं कि मौजूदा व्यवस्था के चौखटे में हम उन्हें सही ढंग पर लगा हुआ नहीं पाते हैं ।"[1] अत: परिवार की कथा का कोई भी नया आयाम जिसमें कोई पात्र अपनी प्रतिक्रिया स्वत: करता हो, अपनी उलझन केलिए स्वयं रास्ता ढूँढ़ता हो, तो उसमें विरोध की एक दिशा स्पष्ट होती है । आधुनिक उपन्यास रूढ़ियों के पक्षधर नहीं हो सकते हैं । अन्तरंग और बहिरंग स्तर पर आधुनिक उपन्यास ने रूढ़ियों को तिरस्कृत किया है ।

"नदी के द्वीप" में अज्ञेय ने प्रेम की व्यक्तिगत मान्यता को प्रमुखता दी है । भुवन के जीवन में प्रेम की समस्या नहीं है और न विवाह की समस्या । गौरा और रेखा उसके जीवन में आ जाती हैं । रेखा का समर्पण भुवन में सामाजिक दायित्व की भावना जागृत करता है । परन्तु रेखा, भुवन को किसी भी कर्तव्य का उत्तरदायी नहीं मानती । रेखा अपने होनेवाले बालक केलिए भी भुवन को उत्तरदायी नहीं मानती । क्षण को ही जीवन यथार्थ मानते हुए रेखा का व्यक्ति-वादी जीवन-दर्शन सांस्कृतिक धरातल पर नया प्रतिमान उभारता है । "मैं तो समझती हूँ, हम अधिक से अधिक इस प्रवाह में छोटे-छोटे द्वीप हैं, उस प्रवाह से छिपे हुए भी, उससे कटे हुए भी, भूमि से बन्धे और स्थिर भी, पर प्रवाह में सर्वदा असहाय भी न जाने कब प्रवाह की स्वैरिणी लहर आकर मिटा दे, बहा ले जाए, फिर चाहे फूल पत्ते का आच्छादन कितना ही सुन्दर क्यों न रहा हो ।"[2] "लेकिन अचम्भे की कोई बात नहीं है । मैं क्षण से क्षण तक जाती हूँ न, इसीलिए

---

1. स्वातन्त्र्योत्तर कथा साहित्य :सीताराम शर्मा ; पृष्ठ 47
2. नदी के द्वीप अज्ञेय ; पृष्ठ 22

कुछ भी अपनी छाप मुझ पर नहीं छोड़ जाता । मैं जैसे हर क्षण अपने को पुन: खिला लेती हूँ ।"[1] "मैं ने भविष्य मानना ही छोड़ दिया है । भविष्य कुछ नहीं, एक निरन्तर विकासवान वर्तमान ही सबकुछ है ।"[2] वर्तमान में आस्था प्रकट करते हुए प्रत्येक क्षण को मूल्यवान एवं अपूर्ण मानते हुए व्यक्तिवादी प्रवृत्तियों से प्रेरित पात्रों ने सांस्कृतिक प्रतिमानों को उजागर किया है । ईश्वर, भाग्य, जीवन, ब्रह्मचर्य, नियति, प्रेम और विवाह सम्बन्धी परम्परागत धारणाओं में अनास्था व्यक्त कर अपने व्यक्तित्व की महिमा के बोध सांस्कृतिक धरातल पर नये मूल्यों को अभिव्यक्ति देते हैं ।

उपन्यास में प्रेम और यौन-तृप्ति का अंकन है जो समाज की वर्जनाओं से ऊपर स्वतन्त्र, सफल, अकुण्ठित है । भुवन रेखा के व्यक्तित्व के प्रति आकर्षित हो जाता है । रेखा अपने को भुवन के लिए अर्पित करती है । रेखा का समर्पण विवेकहीन नहीं है, उसके समर्पण में कुण्ठा नहीं है, बल्कि उसमें अनुभूति की गहराई और जीने की लालसा है । तुम्हारे साथ -जीवन का जो कुछ सुन्दर मैं ने जाना है तुम्हारे साथ, जो कुछ असुन्दर जाना है विवाह में ।"[3] रेखा लोकापवाद से डरती नहीं, भविष्य की आशंका से ग्रस्त भी नहीं होती । पर भुवन रेखा से विवाह प्रस्ताव रखता है, स्वयं को गर्भस्थ शिशु का उत्तरदायी समझता है । रेखा अपने और भुवन के हित में इसे अस्वीकार कर देती है । "कितना बड़ा है जीवन, कितना विस्तृत, कितना गहरा, कितना प्रवाहमान और उसमें व्यक्ति की ये छोटी इकाइयाँ - प्रवाह से अलग जो कोई अस्तित्व नहीं रखती, कोई अर्थ नहीं रखता - हम सब नदी के द्वीप हैं, द्वीप से द्वीप तक सेतु है । सेतु दोनों ओर से पैरों के नीचे रौंदा जाता है, फिर भी वह दोनों को मिलाता है, एक करता है - 1"[4]

---

1. नदी के द्वीप अज्ञेय ; पृष्ठ 42
2. वही ; पृष्ठ 42
3. वही ; पृष्ठ 218
4. वही ; पृष्ठ 335

रेखा का सम्पूर्ण जीवन रूढ़ियों का निषेध है । रेखा का यह निषेध स्त्रीसमाज के प्रति एक ललकार है । प्रेम, विवाह सम्बन्धी जो पुरानी रूढ़िगत मान्यताएँ हैं इनका विरोध करने की ललक आज की शिक्षित स्त्रियों में दिखाई पड़ती है । जो पुरानी रूढ़ियाँ थीं इनका शिकार बनकर समस्त स्त्री वर्ग जर्जरित था । स्त्री-जीवन सम्बन्धी जो परम्परागत धारणाएँ थीं रेखा की बातों में उनका खण्डन है । पुरुषोचित समाज की जीवन-व्यवस्था के प्रति रेखा में शान्त आक्रोश है । स्त्री समझती थी कि पुरुष की छत्रछाया में वह सुरक्षित है और इसीलिए पुरुष ज़ोर देता है । बिना पुरुषाश्रित स्त्री-जीवन कल्पना के परे माना जाता था । इन सभी रूढ़िगत मूल्यों का निषेध रेखा ने स्त्री-स्वतन्त्रता को, स्त्री की सत्ता को, समानाधिकार को रेखांकित किया है ।

रेखा समाजभीरु नहीं है । प्रेम तथा विवाह सम्बन्धी पुरानी धारणाओं से वह त्रस्त नहीं है । स्त्री-पुरुष के शारीरिक सम्बन्ध केलिए विवाह को वह स्वीकारती नहीं है । अविवाहित रेखाका भुवन से गर्भवती हो जाना असल में सामाजिक विधिनियमों का निषेध है । इस निषेध का हल उन दोनों के विवाह से सम्भव है । लेकिन समाजभीरु भुवन की इच्छा होने के बावजूद रेखा भुवन से शादी करना मंजूर नहीं करती । भुवन ने उसके जीवन में प्रवेश किया है, यह तो ठीक है । इस वास्ते भुवन के जीवन को बाँध रखना वह उचित नहीं समझती । उसके इस निर्णय का अर्थ यह निकलता है कि वह परम्परागत रूढ़ियों के तिरस्कार करने की शक्ति रखती है । वह पुरुष के समकक्ष है । पति के बिना भी वह समाज में माता बन कर जी सकती है ।

"डूबते मस्तूल" की रंजना पुरातन का विरोध करता है । अपने जीवन में रंजना अनेक पुरुषों के सम्पर्क में आती है । उनसे विवाह करती है । बार बार पत्नी बनती है । दो बार माँ बनती है । परन्तु पत्नीत्व और मातृत्व का गौरव उसके जीवन में कभी भी स्थायी नहीं रहा । इसलिए स्त्री के जीवन की आवश्यकताओं का जिस समाज ने निषेध किया, उस समाज की रंजना तीखी भर्त्सना

करती है । समाज की रूढ़िगत मान्यताओं का वह विरोध करती है । समाज न तो व्यक्ति-मूल्य को महत्व देता है और न ही व्यक्ति की स्वतन्त्र सत्ता को रहने देता है । "तुम्हारे इस समाज में व्यक्ति पैदा करने की क्षमता, शक्ति, अब शेष नहीं है । जिसे तुम व्यक्ति कहते हो वह एक पोस्ट ऑफिस का टिकट मात्र है, जिसके साँचे बने हुए हैं । अपनी रुचि के अनुसार तुम छोटे-छोटे साँचे में ढालते हो, व्यक्ति बनाया तभी जा सकता है, जब वह पैदा हो । जाने कितने संस्कार समाज रूप में उसके चारों ओर ऊँचे कर देते हो कि उसमें का वह व्यक्ति ही नष्ट हो जाता है । तुम्हारी शिक्षा-दीक्षा से विद्रोह कर यदि कोई व्यक्ति बनना चाहता है तो उसको तुम पथभ्रष्ट, अनागरिक चरित्रहीन कहकर बहिष्कृत कर देते हो ।"[1] अगर कोई सामाजिक रूढ़ियों के विरुद्ध उँगली उठाता तो उस पर दोषारोपण करके समाजभ्रष्ट करने की मानसिकता आधुनिक समाज में भी है ।

उपन्यासकार यह व्यक्त करना चाहते हैं कि स्त्री-पुरुष के सभी सामाजिक नाते असत्य हैं, यदि सत्य है तो केवल यौन सम्बन्ध । पत्नी के सम्बन्ध में नरेश मेहत्ता की धारणा बड़ी विचित्र एवं व्यंग्यमूलक है । वे कहते हैं -बीबी के नाम पर मुझे जाने क्यों गूँगे व्यक्तियों का स्मरण हो जाता है या फिर बड़े-बड़े अस्पतालों में अस्थिपंजर खड़े रहते हैं, उन्हें आप कपड़ा पहना दीजिए, जूड़ा बाँध दीजिए, पाउडर लगा दीजिए, और चाहे तो उसे पत्नी की संज्ञा दे दीजिए ।"[2] आधुनिक समाज में भी पत्नी के प्रति हीनतापूर्ण धारणा है । पुरुष मानता है कि पत्नी रूपी चीज़ अपनी ही है । मनचाहे रूप से वह उसका इस्तेमाल कर सकता है । इसीलिए वह पत्नी को बड़ी साज सज्जा के साथ सजाये रखता है । पुरुष भूल जाता है कि स्त्री चीज़ नहीं, व्यक्ति है । उसका अपना निजी व्यक्तित्व है, उसका अपना महत्व है ।

---

1. डूबते मस्तूल नरेश मेहत्ता ; पृष्ठ 63
2. वही ; पृष्ठ 29

रंजना के जीवन के साथ समाज ने बड़ी क्रूरता की है । कटु अनुभवों से ही उसने जीवन के सम्बन्ध में अपना व्यक्तिगत दृष्टिकोण निर्धारित किया । प्रत्येक परिस्थिति को भोगती गयी । मिलिटरी अस्पताल में भर्ती होकर नर्स बनी । आर्थिक स्थिति और सौन्दर्य ने उसमें जीवन की लालसा जागृत की । "जब व्यक्ति को अपने से मोह हो जाता है तो वह किसी भीमूल्य पर मृत्यु स्वीकार नहीं करता । जीवन के एक क्षण केलिए वह बड़ी-से-बड़ी चीज़ दे सकता है क्योंकि जीवन में व्यक्ति की सत्ता है और मृत्यु में सर्वज्ञता, सम्पूर्णता का अहंकार ।"[1] प्रत्येक व्यक्ति में जीने की अमित लालसा है । कोई भी मरना नहीं चाहता । रंजना भी अपने अभिशप्त जीवन से मुक्ति पाकर सुखपूर्वक जीवन बिताने की इच्छुक है । वह आशावादी है ।

रंजना के जीवन में जितने पुरुष आये थे सभी रंजना से अलग हो गये । इस कारण रंजना अपने जीवन को कटी पतंग की भाँति समझती है । "न तो अच्छे क्षणों को बाँध रखने की क्षमता एवं शक्ति मुझमें है और न बुरे क्षणों को दूर करने का साहस एवं बल । कटी हुई पतंग की भाँति, हवा की इच्छा पर निरन्तर पतनोन्मुख ।"[2] समाज मे सामन्तीय विचारों के कारण स्त्री का अपना कोई स्वत्व या स्थायित्व नहीं है । उसको जीवन बिताने में विविध प्रकार का वेश धारण करना पड़ता है जैसे - बेटी का, पत्नी का, प्रेमिका का, माता का, वेश्या का । स्त्री का स्थायित्व किसी पुरुष से सम्बद्ध है । स्त्री को अपने पैरों पर खड़े होने का अधिकार पुरुषप्रधान समाज में मिलता नहीं है ।

रंजना ऐसे समाज को बिलकुल गौण मानती है । जिस समाज ने उसे वेश्या का नाम दिया वह समाज उसकेलिए नगण्य है । "कुछ मानती भी है और इस मानने से बहुत कुछ अधिक है मेरा न मानना, मेरा बहुत बड़ा अस्वीकार स्वीकारी हुआ, या अन्य । मेरे पास तो है नरक की मशालों से आलोकित या जलता हुआ मेरा हाहाकारमय एक नकारात्मक अस्वीकार । समाज की तृष्णा मानती हूँ

---

1. डूबते मस्तूल नरेश मेहता ; पृष्ठ 110 2. वही ; पृष्ठ 119

सिर्फ दूसरों को हित-अहित तक । मेरे द्वारा दूसरा गिरा हुआ न माना जाए इसी अर्थ में - किन्तु मेरे व्यक्तित्व केलिए तुम्हारे इस समाज को संज्ञा, गौण, मिथ्या, प्रवंचना एवं चोंटो सा न कुछ ।"[1] रंजना जो अब वेश्या है उसमें समाज के प्रति प्रतिशोध की भावना है । प्रस्तुत उपन्यास में रूढ़ियों का निषेध अंतरंजित भावों के बल पर दर्शाया गया है ।

"डाक बंगला" उपन्यास को इरा को अपनी ज़िन्दगी को राह गुम होने पर, प्रयास करने के बाद भी, मिलती नहीं और मिलती भी है तो वक्त गुज़रने के बाद जबकि जीवन के पड़ाव में उसका कोई महत्व नहीं रहता । विमल से धोखा खाने के बाद इरा को वह ज़िन्दगी शुरू होती है । इरा के प्रेम विषयक जीवन में अनेक पुरुष आये थे । उनके प्रेम विषयक झूठे आदर्श और प्रेम को इरा मान्यता नहीं देती । "हर बात को आदर्श के पर्दे में रखकर मत देखो, तिलक । गन्दी चीज़ पर पर्दा डाल दो तो उसकी झिलमिलाहट खूबसूरत लगती है । इसलिए आदर्श का जामा ज़िन्दगी को मत पहनाओ ।"[2]

इरा का दुख यही है कि इस कमीनी दुनिया में औरत बिना पुरुष से रह नहीं सकती । उसे एक कवच चाहिए । "हर लड़की एक कवच ढूँढ़ती है । वह चाहे पति का हो, भाई या बाप किसी झूठे रिश्तेदार का । इस कवच के नीचे वह अच्छी तरह या बुरी हर तरह का जीवन बिता सकती है । उसे पहनने केलिए जैसे एक साड़ी चाहिए वैसे वह कवच भी चाहिए ।"[3] किसी एक पुरुष के आश्रय के बिना स्त्री का जीवन हमारे समाज में मुश्किल है । पुरुषप्रधान समाज ने ऐसे नियम बनाये रखे है जो पुरुष वर्ग के हितानुसार है, वे आज भी ज़ारी हैं । इसलिए व्यक्ति के नाते स्त्री को मुक्ति केलिए स्त्री को आत्मनिर्भरता की भावना को बढ़ा देना चाहिए । इरा इसी का समर्थन करती है ।

---

1. डूबते मस्तूल नरेश मेहत्ता ; पृष्ठ 93
2. डाक बंगला कमलेश्वर ; पृष्ठ 35
3. वही ; पृष्ठ 45

इरा ने जीवन भर जो भोगा उससे वह इतनी उलझ गयी कि अब आस्था, आदर्श और अच्छाइयों के प्रति उसका विश्वास हो नहीं रहा । आदमी के प्यार को प्यासी इरा को कभी भी आदमी मयस्सर नहीं हुआ । आदमी में एक भेड़िया उसे दिखाई देता है जो वक्त आने पर खूँखार बन जाता है । उसकी धारणा है कि "लोग आत्मा की बातें करते हैं, पर एकान्तिक अधिकार चाहते हैं । ऐसा अधिकार जो उनकी वासना की चाहों के मुताबिक चलता है । उनकेलिए बुरी से बुरी और एक क्षण में पूरी तरह अच्छी बन सकती है, अगर वह समर्पित हो जाए ।"[1] कुण्ठा निराशा, अमर्यादा, अनैतिकता आदि वृत्तियाँ आज के व्यक्ति मानस में घर कर गयी हैं, जिनका निष्कासन कठिन अवश्य है क्योंकि वर्तमान समाज व्यवस्था ऐसे साँचे में ढल चुकी है, जो दोषपूर्ण होने के नाते, व्यक्ति को उसकी योग्यतानुसार, समुचित सुअवसर देने में तो असमर्थ है, साथ ही अपनी पद्धतियों को उन्नत विकसित करने में भी असमर्थ है । इसलिए "कहीं किसी भी क्षेत्र में हमारा जीवन स्थिर, सुनिश्चित और सुरक्षित नहीं है, शिक्षा,धर्म, नैतिकता, राजनीति, हर क्षेत्र में हम चौराहे पर खड़े हैं और किसी भी रास्ते के प्रति ज़रा भी आश्वस्त नहीं । जीवन-दृष्टियों का यह उलझाव, यह द्वन्द्व ही क्या हम विरासत में अपने बच्चों को नहीं दे रहे ? यह मानसिकता एक विचित्र संभ्रमण के दौर से गुज़र रही है, जिसमें हर तरफ सवालों के जंगल और तर्कों के उलझाव है । नैतिकता कितनी खोखली, आदर्श कितने बड़े पाखण्ड और जीवन-मूल्य कितने तारहीन ?"[2]

स्त्री सम्बन्धी रूढ़िगत मान्यताओं का विरोध इरा के माध्यम से उपन्यासकार ने स्थापित किया है । समाज में स्त्री सम्बन्धी विचार पुरुषों पर केन्द्रित रहते हैं । स्त्री के व्यक्तित्व को मान्यता देने से पुरुष पीछे हट जाता है । पुरुषप्रधान समाज का स्त्रियों के प्रति अनाचार-अत्याचार का विरोध इरा के माध्यम से प्रकट किया गया है ।

---

1. डाक बंगला : कमलेश्वर ; पृष्ठ 47
2. धर्मयुग 16 से 22 मार्च, 1980.

"पचपन खम्भे लाल दीवारें" उपन्यास की सुषमा पारिवारिक सामाजिक बन्धनों से छटपटाती है । वह अपने जीवन में रूक्षता और उकताई का अनुभव करती है । उसका प्रेमी नील के परिवार की स्थिति भी वैसा है । कभी-कभी नील अपना परियादें सुषमा के सम्मुख प्रस्तुत करता है । अपने परिवार के कटु अनुभवों का असर सुषमा पर पड़ता है । इस पर वह छटपटाती रहती है । अपने पारिवारिक रूढ़िगत भावनाओं से सुषमा मुक्त नहीं होता । "मेरी ज़िन्दगी खत्म हो चुकी है । मैं केवल साधन हूँ । मेरी भावना का कोई स्थान नहीं । विवाह करके परिवार को निराधार छोड़ देना मेरेलिए सम्भव नहीं । प्रावीरों में बन्दी ज़िन्दगी केलिए उसने अपने को ढाल लिया है ।"[1] नील सुषमा को पारिवारिक स्थिति का जानकार है । वह सुषमा के परिवार के आर्थिक भार अपने कन्धों पर लेने को तैयार भी है । लेकिन सुषमा का आत्माभिमान इसको अनुमति नहीं दे पाती । वह सुषमा को समझाने की कोशिश करके झल्लाता है । रूढ़िगत विचारों से सुषमा को मुक्त कर आधुनिक बनाने तथा अपनी सहयोगी बनाने का यत्न तो नील करता है । "ठीक है, तुम वहीं रहो, इन पचपन खम्भों में बन्दी होकर । मै तुम्हारे बहकावे में आ गया था । मैं सोचने लगा था कि तुम्हारेलिए मैं ही सबकुछ बन गया हूँ । मैं ने अब जाना कि तुम्हारे पास खूबसूरत चेहरे के अलावा एक बहुत व्यावहारिक बुद्धि और अपनी भला समझनेवाला दिमाग भी है ।"[2] जो व्यक्ति परिवार में कमाता है उस पर सारा परिवार केन्द्रित रहने की रूढ़िगत व्यवस्था के असर से सुषमा अपने को बर्बाद कर लेती है । इस व्यक्तिप्रधान समाज में अपने परिवार केलिए अपने जीवन को गँवा देना स्वीकृत नहीं है । इन रूढ़िगत मान्यताओं से बाहर निकलने का आदेश नील से मिलने पर भी वह बाहर नहीं आती । समाज ने ऐसा नियम गठित किया है कि परिवार से सम्बद्ध व्यक्ति पारिवारिक झंझटों से बाहर नहीं आ जाता है ।

---

1. पचपन खम्भे लाल दीवारें उषा प्रियम्वदा ; पृष्ठ 68
2. वही ; पृष्ठ 115

परम्परा का पालन सुषमा अन्तर्मन से करती है । रूढ़िगत संस्कारों का इतना अधिक असर उस पर पड़ा है कि वह उनसे स्वतन्त्र होकर बाहर नहीं आ सकती । फिर भी वह भविष्य का सपना देखती है । उसके जीवन में नील का आगमन अचानक हुआ था । फिर वे बार-बार मिलने लगे । "जीवन में पहली बार उसे उन खोये हुए वर्षों का दुख था जीवन की भाग-दौड़ और आजीविका के प्रश्नों में चुपचाप विलीन हो गये वे वर्ष और अब तो उसके चारों ओर दीवारें खिन्चा गयी थीं, दायित्व की, कुण्ठाओं की, अपने पद की गरिमा और परिवार की ।"[1] सुषमा नील से बड़ी है । पर नील इस से लापरवाह है । उसका आश्वासन देने पर भी सुषमा कुण्ठाग्रस्त है । इस आयु के सम्बन्ध में नील को गलती में डालना नहीं चाहती । "कभी तुम भावावेश में किये गये इस निश्चय पर पछता उठो तो - तुम्हारी अभी आयु भी क्या है ? मैं तुम से इतनी बड़ी भी तो हूँ नील । हमारा विवाह कभी सफल न होगा । सदा यह विचार उठता रहेगा कि कहीं कोई बहुत छोटी, बहुत सुन्दर लड़की मुझसे तुम्हें न छीन ले ।"[2]

पारिवारिक मनमुटाव में सुषमा का जीवन बिताना दुष्कर हो जाता है । उसे फोलस जीवन अर्थहीन लगता है । सुषमा टूटन की सीमा पर आ जाती है । वह अपने भयानक भविष्य में डूबती है । अपनी सखी मीनाक्षी से वह कहती है - "पैंतालीस साल की आयु में मैं भी एक कुत्ता या बिल्ली पाल लूँगी - उसे सीने से लगा रखूँगी   आज सोलह साल बाद शायद तुम अपनी बेटी को लेकर इस कॉलेज में आओ, तब भी तुम मुझे यहीं आ पाओगी । कॉलेज के पचपन खम्भों की तरह, अचल   ।"[3] सुषमा की व्यथा में समझौता करने की स्थिति अधिक है । पर उसमें कचोट भी है जिससे विरोध प्रकट होता है । उसकी स्वीकृति में अस्वीकृति है । परन्तु व्यवहार में अस्वीकृति अस्पष्ट रह जाती है ।

---

1. पचपन खम्भे लाल दीवारें   उषा प्रियम्वदा ; पृष्ठ 28.
2. वही ; पृष्ठ 114
3. वही ; पृष्ठ 109-110

पारिवारिक जीवन की परम्परागत आधुनिक सामाजिक जीवन स्थिति का यथार्थ विवेचन "बूँद और समुद्र" उपन्यास में हुआ है । स्पष्ट है कि समाज की परम्परागत रूढ़िगत श्रृंखलाओं में जकड़ा हुआ व्यक्ति अब विद्रोह करने लगा है । "व्यक्ति और समाज दोनों ही दोषपूर्ण हैं । जब समाज नहीं बदलता व्यक्ति बेचारा क्या करेगा ।"[1] लेकिन व्यक्ति कभी हार माननेवाला नहीं । वह सामाजिक परिवर्तन के निमित्त निरन्तर प्रयत्न करता रहा है । "इस देश में, पृथ्वी पर केवल व्यक्ति रहता है समाज नहीं । व्यक्ति केवल अपनी दायरे में रहता, सोचता और कर्म करता है । ऐसा लगता है जैसे हर व्यक्ति एक-एक द्वीप में अलग-अलग है ।"[2] वैयक्तिक मान्यताओं के प्रति आकांक्षा अमृतलाल नागर में लक्षित है । व्यक्ति का सामाजिक प्राणी होने के बावजूद सामाजिक मर्यादाओं का उल्लंघन उस केलिए नामुमकिन है । चाहे ये मान्यताएँ ठीक नहीं हो । सामाजिक नियम ने व्यक्ति को इतना जकड़ा रखा है कि व्यक्ति स्वभावत: उससे मुक्त होकर बाहर नहीं जा सकता है तो व्यक्ति के तौर पर बदलाव आना है । व्यक्ति-व्यक्ति के बदलाव से क्रमश: समाज का भी परिवर्तन सम्भव होता है । रूढ़िगत मूल्यों का तिरस्कार करके व्यक्ति नये मूल्यों की स्थापना में उत्सुक है ।

परम्परागत विवाह की असफलता, टूटन, बोझ का यथार्थ रूप महिपाल के जीवन में देखा जा सकता है । जागरूक, सजग, बौद्धिक, मननशील लेखक महिपाल की पत्नी अनपढ़, और रूढ़ संस्कारों से आबद्ध है । इस कारण दाम्पत्य जीवन की घुटन, असन्तोष, अतृप्ति महिपाल को घर से बाहर जाने को विवश कर देते हैं । फिर भी वह पत्नी कल्याणी की एकनिष्ठता के प्रति नतमस्तक है, विवाह के अटूट बन्धन को भी स्वीकारता है । महिपाल का विद्रोही स्वर परम्परागत विवाह पद्धति को तोड़ने में समर्थ है । "...... पति-पत्नी का बन्धन अटूट है, अनन्त है । मैं इसको तोड़ूँगा । स्त्री-पुरुष का प्रेम महाबन्धन है, स्त्री-पुरुष

---

1. बूँद और समुद्र अमृतलाल नागर ; पृष्ठ 256
2. वही ; पृष्ठ 376

पति-पत्नी हो या न हो । कल्याणी सती है तो बनी रहे । हम पतित होकर भी महान हैं । शीला मुझे प्रेरणा देती है, मैं शीला के प्राणों में बसता हूँ । सामाजिक दृष्टि से भले ही अनैतिक हो ।"[1] महिपाल वैवाहिक जीवन में प्रेम को अवश्यक मानता है । वह इसका साक्षी है कि बिना प्रेम के वैवाहिक जीवन असफल होता है । माता-पिता द्वारा परम्परागत मान्यताओं के अनुरूप तय किया हुआ महिपाल का वैवाहिक जीवन सामाजिक धरातल पर दोषी सिद्ध किया गया है ।

महिपाल अपनी पत्नी को सती-साध्वी तो मानता है, लेकिन आधुनिक परिवेश में ऐसी पत्नियाँ व्यक्ति के मानसिक विकास में सहायक नहीं । महिपाल अत्यधिक उग्र, ईर्ष्यालु और विद्रोही हो उठता है । "पाप-पुण्य धर्म-अधर्म उसका कहीं भी गति नहीं । उसका मन अवरुद्ध है । वह दयालु है, विचार विवेकशील है, सिद्धान्तवादी है, वह क्रूर है, अविचारी-अविवेकी है, सिद्धान्तहीन है । वह सत्-असत् की दुहरी चौहद्दियों से घिरा हुआ "कुछ नहीं" शून्य है ।"[2] एक सामाजिक व्यवस्था के बावजूद विवाह बन्धन अटूट और पावन है, इस बन्धन के कारण पति-पत्नी के पारिवारिक सम्बन्ध भी एक बन्धन हो जाता है । ऐसे बन्धन में आत्मीयता का अभाव है, ऊष्मलता की कमी है, स्वाभाविकता का लोप है । महिपाल की पत्नी तो सती-साध्वी है, इस पर किसी को शक नहीं । तो यह स्पष्ट है कि वैवाहिक जीवन, मात्र पत्नी का सती-साध्वी होना या आर्थिक सुस्थिति होना नहीं, बल्कि कुछ दूसरे पक्ष भी है । महिपाल के जीवन में इसकी कमी आयी है ।

महिपाल की प्रेमिका थी, शीला । उससे हमेशा महिपाल को प्रेरणा मिलती थी, शीला के हृदय में महिपाल बसता था, महिपाल के हृदय में शीला भी । विवाहित महिपाल का प्रेमिका शीला के प्रति सम्बन्ध बनाये रखना सामाजिक दृष्टि

---

1. बूँद और समुद्र अमृतलाल नागर ; पृष्ठ 180
2. वही ; पृष्ठ 85

से तो अनैतिक हो है, फिर भो महिपाल समाज को इस अनैतिकता के प्रति असन्तोष प्रकट करता है । फिर भो वह अपने बेटे-बेटियों के प्रति, समाजगत मान्यताओं को महत्व देकर शीला को त्यागने का निर्णय लेता है । समाजगत पाप-पुण्य पर महिपाल विचलित नहीं । वह अपने अन्तकरण के अनुरूप निर्णय लेता है जो दूसरों को भलाई को लक्ष्य करके हो है । यों महिपाल का रूढ़ियों के प्रति जो निषेध भावना है वह उसकेलिए मात्र नहीं, बल्कि सामाजिक भलाई को भो लक्ष्य करके लिए हुए है ।

"रुकोगी नहीं राधिका" उपन्यास को राधिका अपने जोवन में और किसी का हस्तक्षेप नहीं चाहती । विवाह और परिवार सम्बन्धो रूढ़िगत मान्यताओं का विरोध और नयो मान्यताओं को स्वीकृति उसमें है । "मैं ऐसा संगी चाहती हूँ जिस में स्थिरता हो, औदार्य हो जो मुझे मेरे सारे अवगुणों सहित स्वीकार कर ले, मेरे अतीत को झेल ले ।"[1] अक्षय और मनीश के साथ राधिका का परिचय बढ़ता है । मनीश के चाहने पर भो राधिका उसके विवाह प्रस्ताव को छोड़ देती है । अक्षय भो उससे विवाह प्रस्ताव करता है । लेकिन इस पर राधिका का विचार है - "मैं नहीं चाहती कि जल्दबाज़ो में तुम अपने को कमिट करो अक्षय"[2] राधिका, डैन के साथ सम्बन्धों में तनाव आने पर वह अलग से अपनो कला को विकसित करने का यत्न करती है । डैन उसे भावविहोन हिमकन्या-सो जमो और संगमरमर को प्रतिमा सो जड़ कहते हुए मुक्त कर देता है । "मैं तुममे अपना खोया हुआ यौवन ढूँढ़ रहा था । अपनो पत्नो को छोड़कर चली जाने को बड़बाहट धोना चाहता था, पर शायद हम दोनों सफल नहीं हुए ।"[3]

अक्षय, राधिका से छोटो और पढ़ो-लिखो लड़को को चाह में था । अत: जान-बूझ कर राधिका मनीश जैसे व्यक्ति के संपर्क में आने को बाध्य होती है ।

---

1. रुकोगो नहीं राधिका उषा प्रियम्वदा ; पृष्ठ 61
2. वही ; पृष्ठ 119
3. वही ; पृष्ठ 38

मनोश राधिका का दर्द समझता है और राधिका भी अपनी पीड़ा उसके आगे प्रस्तुत करती है । राधिका न तो विदेश में रह सकी न भारत में । उसे चैन नहीं मिलता । जब राधिका मनोश के सम्पर्क में आती है तो मनोश निश्चय कर लेता है कि वह भारत में ही रहे । अपनी और राधिका की सामाजिक दूरी से और कठिनाइयों से टकराने का विश्वास उसमें पैदा होता है । "तुम वहाँ नहीं रह सकी, न तुम्हें यहाँ ही स्वीकारा गया । मैं भी अपने को पृथक, अलग, कटा हुआ पाता हूँ । सोचा कि हम दोनों इकट्ठे रह सकेंगे - क्योंकि हम एक दूसरे को बहुत समय से जानते हैं, बहुत सारे सन्दर्भों में पर यदि तुम ।"[1]

राधिका विदेश में पढ़ी-लिखी लड़की है और स्वतन्त्र वृत्तिवाली है । किसी के जीवन मे दखल देना और अपने जीवन के किसी दूसरे का हस्तक्षेप भी उस केलिए नमंजूर है । उसके जीवन में अनेक युवक आ जाते हैं जो उससे विवाह करने के इच्छुक हैं । लेकिन भावावेश में पड़कर किसी से शादी करके भुलावे में पड़ने को वह इच्छुक नहीं है । विवाह को जीवन का एक अवश्यक अंग वह नहीं मानती । फिर भी वह अपने मन के इच्छुक व्यक्ति से शादी करने के पक्ष में है । वह यह भी मानती है कि सहजीवन में आत्मीयता बड़ी वस्तु है । इसके अभाव में वैवाहिक जीवन नरक बन जाता है । शिक्षित और प्रगतिशील स्त्री के बावजूद राधिका रूढ़िगत परम्परागत मान्यताओं का तिरस्कार करके नये मूल्यों को अपने जीवन में समा लेती है ।

विभिन्न उपन्यासों में कथा प्रसंग अलग-अलग ही रहते हैं । परिवार प्रसंग भी अलग होते हैं । लेकिन इन सब में समानता के तत्व मिल जाते हैं । और वह है अस्वीकृति । इस हद तक आने केलिए समाज को कई प्रकार के संघर्षों से गुज़रना पड़ा । उन संघर्षों ने समाज को बल दिया और स्वीकृत तथा अस्वीकृत होने लगे । अतः अस्वीकृति परिवार की नहीं बल्कि उस पारिवारिक बिम्ब की है जिस ने व्यक्ति के अस्तित्व को नकारा था । उस बिम्ब को टूटना ही पड़ता है । हिन्दी उपन्यासों ने अवांछित बिम्बों को प्रायः अस्वीकारा है ।

---

1. रुकोगी नहीं राधिका उषा प्रियम्वदा ; पृष्ठ 145

अध्याय तीन

आधुनिक हिन्दी उपन्यास में

पति-पत्नी-सम्बन्ध का चित्रण और पारिवारिक स्थितियाँ

नये समाज का नया परिवार

मानव के संगठन से ही क्रमश: परिवार, समाज और राष्ट्र का निर्माण होता है । परिवार समाज का महत्वपूर्ण अंग है । सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक स्थितियों और घटनाओं का प्रभाव परिवार पर पड़ता है । अत: यह स्पष्ट है परिवार यों बदलता नहीं है । परिवार को समाज की लघुतम इकाई मान लें तो सामाजिक स्थितियों का प्रभाव परिवार रूपी लघुतम इकाई पर पड़े बगैर नहीं रह सकता ।

नये समाज का केन्द्रबिन्दु मनुष्य ही है । इस तत्व से सभी परिचित हैं कि व्यक्ति और समाज का घनिष्ठ सम्बन्ध है । व्यक्ति के विकास क्रम की प्रथम पाठशाला परिवार ही है । परिवार के माध्यम से ही व्यक्ति का समाज में अपनी निष्ठा, स्वत्व, मर्यादा, पद, स्थिति का निर्धारण होता है क्योंकि पारिवारिक संस्कार, आचार-विचार, शिक्षा, रहन-सहन, मान्यताएँ, व्यवहार, खान-पान का उसके व्यक्तित्व पर गहरी छाप होती है । मनुष्य में पारिवारिक वृत्ति जन्मजात होती है जो शनै-शनै उस पर प्रभाव डालती है। आज के समाज में शहरी-ग्रामीण परिवार, शिक्षित-अशिक्षित परिवार, शोषित-शोषक परिवार, निम्न-मध्य-उच्च स्तरीय परिवार, संयुक्त विस्तृत परिवार से अणु परिवार तक के नमूने प्राप्त हैं ।

सामाजिक परिवर्तन के कारण

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भारतीय समाज में प्राचीन व्यवस्थाएँ टूटी और नयी व्यवस्थाएँ अग्रसर होने लगीं । द्रुतगति से हुए सामाजिक परिवर्तनों ने रूढ़ियों और परम्पराओं को विशृंखलित कर दिया । विशृंखलता को इस नौबत ने अर्थ-व्यवस्था, व्यक्ति, परिवार, समाज, धार्मिक भावना, नैतिकता सभी को प्रभावित कर दिया है । "परम्परित सामाजिक मूल्य, पारिवारिक दायित्व और प्रतिबद्धता आदि जैसी सामाजिक संरचना की आधार-भूमियों के खिसकने में जनसंख्या वृद्धि, सेवावृत्तियों की जटिलताएँ, मनुष्य की आधुनिक पर्यावरणीय या नूतन परिव्रजनशील नियति तो कारणभूत है ही, विशेष रूप से इसके मूल में विज्ञान और प्रविधि की वे सार्वभौम उपलब्धियाँ हैं, जिन्होंने मनुष्य को अकेला कर दिया तथा समाज के प्रति कोई रागात्मक संयुक्ति न होने के कारण वह उसकेलिए मात्र "भीड़" की सत्ता बन कर अवशिष्ट रह गया ।"[1]

भारत को आज़ादी के साथ ही भारतीय सामाजिक परिवेश में परिवर्तन आने लगा । भारत की स्वतन्त्र सरकार ने जो जान से आर्थिक, शैक्षिक, सामाजिक क्षेत्र में सुधार लाने की निरन्तर कोशिश करती रही । राष्ट्रीय अधिकारियों तथा समाज सुधारकों ने समझ लिया कि देश की प्रगति शिक्षा की प्राप्ति से जुड़ी हुई है । इसलिए तत्कालीन भारतीय परिवेश में जनता को बोधगम्य बनाने में सरकार प्रयत्नशील रहने लगी । ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में पाश्चात्य समाज आगे बढ़ते रहे । उसके अनुरूप हमारा सामाजिक स्थिति को सुधारना था । फलस्वरूप सबों को शिक्षा के क्षेत्र में लाने का लगातार प्रयत्न होता रहा । यह तो सत्य है कि पुराने ज़माने में ज्ञान की प्राप्ति आरक्षित थी ।

---

1. स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कथा-साहित्य और ग्राम्य जीवन:डॉ.विवेकी राय,पृष्ठ 316

लेकिन आधुनिक समाज में उसका रूप बदल गया । यही नहीं, शिक्षा को प्राप्त से समाज की मानसिकता बदलने लगी । सारा समाज इसकेलिए तत्पर होने लगा ।

जो जातीय प्रथा समाज में थी, उसका अन्त होने लगा । जातीय उद्योग भी अप्रत्यक्ष होने लगे । व्यक्ति का प्राधान्य बढ़ा । जातिगत विचार-धारा के खिलाफ़ व्यक्तिगत भावना का आधिपत्य बढ़ा । जो परम्परागत औद्योगिक भावना थी, उससे जीवन-यापन दुष्कर प्रतीत होने लगा । प्रत्येक व्यक्ति समझने लगा कि अर्थ के बिना जीवन दुष्कर है । इस कारण परम्परागत मूल्यों के खिलाफ़ अर्थ को प्राप्त केलिए, जीवन जीने केलिए, परम्परा को भूल कर ही वे पेशेवर होने लगे । परिणाम यह हुआ कि पारम्परिक जातिगत आधिपत्य का अन्त हो गया ।

संयुक्त परिवार प्रणाली में भूमिगत समस्या महत्वपूर्ण स्थान रखती थी । जब भूमि की सीमा घटी, यह कहना उचित होगा कि जब आबादी बढ़ी तो सभी को कृषि क्षेत्र में दाखिल होने का अवसर नष्ट हो गया । तब व्यक्ति को नये जीवन-मार्ग की तलाश करनी पड़ी । परिणाम यह निकला कि व्यक्ति का ग्रामीण वातावरण में टिकना नामुमकिन हो गया और वह मजबूरन शहरों की ओर प्रयाण लगा । शहरों में व्यक्ति अपने कारोबार में इतना व्यस्त हो गया कि उसे दूसरों की परवाह करने का अवसर नहीं मिलता । क्योंकि व्यक्ति को ज्ञात हो गया कि इस बढ़ती वैज्ञानिक युग की दौड़ के अनुरूप भागने केलिए उसे अधिक कठिन यत्न करना पड़ता है । यही नहीं वह इसमें यदि पीछे पड़ जाय तो जीवन में वह कभी भी बराबर भी नहीं कर सकता है । इस कारण से ग्रामीण परिवेश में व्यक्ति का जो मानवीय सम्बन्ध था, जो स्वस्थ समाज केलिए स्पृहणीय है, वह शहरी वातावरण में अनजाने ही गायब हो गया । तात्पर्य यह है कि सामाजिक जीवन की धुरी सम्पत्ति बन गयी । इसको प्राप्त केलिए व्यक्ति को अन्य सभी प्रकार के सम्बन्धों को नगण्य मानना पड़ा ।

स्वातन्त्र्योत्तर समाज में सामाजिक समानता का भाव बढ़ा । व्यक्ति को स्वातन्त्र्येच्छा की भावना बढ़ी । कोई किसी का मालिक, या गुलाम नहीं रहा । सभी क्षेत्रों में - आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, शैक्षिक आदि - व्यक्ति स्वतन्त्रता का अनुभव करने लगा । स्वातन्त्र्योत्तर समाज में वही व्यक्ति धर्म के जाल से भी स्वतन्त्र होकर बाहर आ गया है । जातिगत तथा धर्मगत वातावरण से स्वतन्त्र होकर आज वह मनुष्य बन गया है । और उस मनुष्य ने अपने को दो विभागों में विभक्त भी किया है - पुरुष जाति और स्त्री जाति ।

प्रेम और विवाह के सम्बन्ध में व्यक्ति में नया दृष्टिकोण विकसित हुआ है । विवाह से अधिक प्रेम को महत्व दिया गया है । सामन्तीय वातावरण में विवाह जातिगत भावना के अन्तर्गत सीमित था । एक व्यक्ति का बाहर की जाति से विवाह निषिद्ध तथा अनैतिक और अधार्मिक भी था । जब व्यक्ति जातिगत तथा धर्मगत वातावरण से बाहर आया, व्यक्ति आर्थिक तथा शैक्षिक क्षेत्र में आत्मनिर्भर बन गया, तो वह स्वतन्त्र विचारधारा को बनाये रखने में समर्थ हुआ । इन सबों ने उसके वैयक्तिक जीवन को प्रभावित किया । प्रेम और विवाह उसके वैयक्तिक जीवन का भाग बन गया । परम्परागत विवाह पद्धति को मूल्य-हीन साबित किया गया । यही नहीं विवाह में शारीरिक पक्ष की अपेक्षा आत्मीय पक्ष को महत्व देने लगा और यह मानने में देर नहीं हुई कि आत्मीयता ही पति-पत्नी सम्बन्ध तथा पारिवारिक सम्बन्ध की धुरी है ।

स्वतन्त्रता सम्बन्धी धारणाएँ

नये समाज में स्त्री अज्ञान के पिछड़ेपन से मुक्ति पा रही है और उसे लगभग सभी क्षेत्रों में समान अवसर उपलब्ध है । सामाजिक अवधारणा में हो रहा यह विकास कोई आकस्मिक घटना या प्रतिक्रिया मात्र नहीं है । इसे क्रमिक

विकास के रूप में हो लेना चाहिए । साथ ही यह जानने के बाद कि विकास-प्रक्रिया केवल अन्य जातियों द्वारा थोपी न नहीं है, बल्कि उसके पीछे एक व्यवस्थित विवेक और श्रेष्ठ बुद्धि भी है । हमें यह जानकर चलना होगा कि वर्तमान संघर्ष कितना ही लम्बा हो, स्थितियाँ कितना ही उलझनपूर्ण और जटिल हो, पर विकास हमें एक बेहतर दुनिया की ओर ले जा रहा है, जिसमें अपने ही प्रियजनों, पिता-भाई, पति द्वारा स्त्री के शोषण की कोई सम्भावना नहीं रह जाएगी और शोषण नहीं होगा तो प्यार पनपेगा, ईर्ष्या या प्रतिस्पर्धा नहीं पनपेगी ।

आज के समाज में जब स्त्री को मानवता के और उसकी सभी इकाइयों या संस्थाओं के विकास में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका अदा करनी है तो सबसे पहले सोद्देश्य शिक्षा द्वारा उसे अपने स्वतन्त्र व्यक्तित्व या व्यक्तित्व गुणों को अर्जन और विकास में योग्य भागीदारी के लिए स्वयं को समर्थ करना है । इसके बाद हर स्त्री के लिए ज़रूरी है, अपने अधिकारों को जानना-समझना और अधिकारों व उत्तरदायित्वों में संतुलन साधकर अधिकारों का सदुपयोग करना । यदि ऐसा हो सके तो विकास की इस प्रक्रिया में बाधाएँ टिक नहीं सकती । जो समय की इस माँग को स्वीकार करती हैं वे ही आनेवाले समाज में सम्मानित होंगी । समाज के स्त्री और पुरुष वैयक्तिक रूप में नितान्त निजी होते हुए भी स्वयं को अनेक सामाजिक नियमों में बन्धा हुआ पाता है । अतत: में समाज की सामूहिक व्यवस्था में स्त्री-पुरुष के व्यक्तित्व के विकास को स्वीकारा गया है । व्यक्ति और समाज दोनों एक दूसरे के पूरक हैं । व्यक्ति के बिना समाज का अस्तित्व नहीं और सामाजिक व्यवस्था के अभाव में व्यक्ति का महत्व नहीं । "व्यक्ति अपनी अन्तर्गूहा में बन्दी सामाजिक सत्यों से अप्रभावित कोई स्वतन्त्र सत्ता नहीं है और न अकेले उसकी कोई सार्थकता ही है । वह सामाजिक जीवन के प्रवाह में बहता हुआ, उसकी समूची चेतना को झेलता हुआ गतिशील सत्ता है, अपनी जगह स्थित नदी का द्वीप नहीं है ।"[1]

---

1. हिन्दी उपन्यास - एक अन्तर्यात्रा ; डॉ. रामदरश मिश्र ; पृष्ठ 112

अधिकार सम्बन्धी धारणाएँ

संविधान द्वारा हमें कानूनी अधिकार तो मिल चुके हैं। परन्तु समाज के विकास में भागीदारी केलिए वास्तविक अधिकार की प्राप्ति की क्षमता भी चाहिए। अधिकार कानून से भी मिलते हैं, छीन-झपटकर भी प्राप्त किये जा सकते हैं। लेकिन कानूनी अधिकार केवल कागज़ी अधिकार होते हैं, उन्हें व्यावहारिक भूमि पर उतारकर सामाजिक मान्यता दिलाने केलिए कभी-कभी एक पूरी ज़िन्दगी की अवधि भी कम पड़ जाती है और इस बीच अनेक ज़िन्दगियाँ कुर्बान हो जाती हैं। इसका यह मतलब नहीं कि अधिकार अधिक लड़-झगड़ कर एक झटके से प्राप्त कर लिए जाए। इस तरह ये अधिकार वास्तविक सामाजिक अन्याय का प्रतिकार करने के बजाय अक्सर कलह, हिंसा और शोषण की स्थितियों को ही बढ़ावा देते हैं। तब अधिकारों केलिए कुर्बानियाँ देने वाली संख्या भी तेज़ी से बढ़ जाया करती है, जैसे कि आज स्त्री-पुरुष टकराव की स्थितियों में स्त्री-आत्महत्याओं और हत्याओं की संख्या एकाएक बढ़ गयी है। अधिकारों केलिए संघर्ष कम करने का उपाय यह है कि स्त्री-पुरुष का सहकार अथवा इस अभियान में पुरुषों को साथ लेकर चलना। "पुरुष पितृ समाज में नारी के स्वाभिमान का कोई मूल्य नहीं समझा जाता। अतः स्त्री का जीवन बड़ा दयनीय हो जाता है। उसके दाम्पत्य-जीवन की कल्पना चूर-चूर हो जाती है। पुरुष-पितृ समाज का आधार आर्थिक है। स्त्री का वह ऐसी सारी शक्तियाँ नष्ट कर देता है, जिससे वह आर्थिक स्वतन्त्रता प्राप्त करने में समर्थ हो सके। निदान उसे पुरुष की चाकरी करना पड़ती है। पातिव्रत के उच्च आदर्शों के नाम पर इस प्रकार दाम्पत्य जीवन की सारी सरसता कटुता में बदल जाती है।"[1]

नये समाज और नये परिवार के निर्माण और विकास की दूसरी शर्त है, स्त्रियों के सक्षम हाथों में अधिकार पहुँचा देना। नवनिर्माण केलिए अधिकारों की

---

1. समस्यामूलक उपन्यासकार डॉ. महेन्द्र भटनागर; पृष्ठ 133

माँग नहीं, उनका अर्जन करना है । समाज विकास की राह व्यक्तित्व विकास की राह से होकर निकलती है । सामाजिक तथ्य के इस पहलु को समझ लेने पर न तो कल्याणकारी विकास की प्रक्रिया में कोई रुकावट आती है, न विकास में महिलाओं की भागीदारी रुक जाती है । व्यक्तित्व गुणों से सम्पन्न स्त्री के नियन्ता होने पर समाज की नीतियाँ उससे प्रभावित होती हैं । जननी और प्रमुख प्रेरक शक्ति होने के नाते सारा पुरुष समाज उससे प्रभावित हो सकता है । ऐसे समाज की कल्पना ही बेहतर दुनिया की कल्पना है ।

समानता का संकल्प

स्त्रियों और पुरुषों की सामाजिक और कानूनी स्थिति में काफ़ी अन्तर था । जहाँ पुरुष अपनी पत्नी के जीवित रहते हुए कई विवाह कर सकता था, वहाँ स्त्री केलिए चाहे वह बाल-विधवा होकियों न हो, पुनर्विवाह पाप था । हिन्दु समाज का पुरुष के प्रति यह बहुत बड़ा पक्षपात था । एक ओर वह वृद्धा को, जो तीन चौथाई मृत हो चुका है, एक बच्चे से भी विवाह करने की आज्ञा देता था । किन्तु दूसरी ओर ऐसे पति की मृत्यु पर भी उस लड़की को जिसने अभी अपनी किशोरावस्था पार ही की हो, पुनर्विवाह की आज्ञा नहीं देता था । विधुर बार-बार विवाह कर अपना जीवन सुखमय बना सकता था । आज भी विधवा सौभाग्य चिह्नों को हटाती है, सादे वस्त्र धारण करती है और रूखा-सूखा खाकर त्यागमय जीवन व्यतीत करती है । विधुर तो दूसरा विवाह करके नयी स्त्री के साथ सुखमय दाम्पत्य जीवन व्यतीत करता है ।

इसी प्रकार की नैतिक भूल पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियाँ कम ही करती थीं । किन्तु समाज की दृष्टि से पुरुष का जो कार्य क्षम्य था, या कम से कम सह्य तो था ही, वही स्त्री केलिए बिलकुल निषिद्ध था और उस केलिए कानूनी

और सामाजिक दण्ड का विधान था । सबसे क्रूर दण्ड तो यह था कि वह स्त्री फिर समाज में किसी प्रकार स्वीकृत नहीं होती थी, सभी उसे घृणा की दृष्टि से देखते थे ।

पति पागल, कोढ़ी, क्रोधी, लूला, लंगड़ा, कुरूप जैसा भी हो, स्त्री का प्रथम कर्तव्य था कि वह पति की इच्छाओं और आशाओं के आगे सिर झुकाये उसके संरक्षण में रहे । पुरुष सुन्दर, सुशीला स्त्री को भी अकारण ही छोड़कर दूसरी स्त्री से विवाह करता था या उसे घर में रख लेता था । नये समाज में स्त्री की उपर्युक्त स्थिति में परिवर्तन आने लगे है । स्त्री-पुरुष समानाधिकार भावना की तरह परिवार में भी पुत्र-पुत्रियों के साथ समानाधिकार का व्यवहार किया जाने लगा है ।

पुरुषप्रधान समाज ने स्त्री को धीरे-धीरे व्यक्तित्वहीन बना दिया था । स्त्री ने आज कितना भी विकास क्यों न किया हो पुरुष का अहं उसे अब भी दबा कर रखना चाहता है । स्त्री एक प्रकार के अपने शोषण से मुक्त होने को अभी लड़ ही रही है कि उसका शोषण नये रूप में प्राप्त हो गया है । अन्तर केवल इतना ही आया है कि पहले उसका शोषण घर की दीवारों के भीतर होता था और अब वह खुले आम सड़कों, कार्यालयों में होने लगा है । पुरुष तो स्त्री का शोषण करता ही है, कभी-कभी स्त्री ही ईर्ष्यावश या कुण्ठित होकर उसकी सबसे बड़ी शत्रु बन जाती है ।

शिक्षा का विकास

भारतीय समाज में स्त्रियाँ ही शिक्षा के क्षेत्र में पिछड़ी हुई थीं । शिक्षा के सम्बन्ध में ऐसे सामाजिक नियम थे जो स्त्रियों की शिक्षा के प्रति अनुकूल नहीं थे । उनकेलिए शिक्षा के दरवाज़े बन्द थे । लेकिन समाज सुधारकों ने समझ लिया कि भारतीय समाज में स्त्री-शिक्षा की प्रगति के बिना भारतीय

परिवार और समाज का सुधार नहीं होगा । इसलिए इन समाज सुधारकों ने तत्कालीन परम्परागत रूढ़ियों के खिलाफ़ लड़ाई लड़ी, परम्परागत मान्यताओं को गलत साबित किया, स्त्री को समाज का महत्वपूर्ण सदस्य प्रतिष्ठित किया । परिवार में पुरुष की जो प्रधानता था वह आज के नये परिवार में स्त्री और पुरुष दोनों में समान रूप में विद्यमान है ।

नये समाज में स्त्री और पुरुष दोनों का समान रूप से शिक्षित होने का मौका और अधिकार है । स्त्री-शिक्षा के प्रति जो परम्परागत धारणाएँ थीं वे बिलकुल बदल गयी हैं, गलत और निरर्थक साबित की गयी है । आज यह धारणा बल पकड़ गयी है कि समाज का पहला शिक्षा केन्द्र परिवार ही है, और पहली अध्यापिका माँ ही है । स्त्री केलिए उचित शिक्षा की सुविधा देना परिवार, समाज और राष्ट्र हित केलिए आवश्यक है

स्त्री और पुरुष समाज की दो महत्वपूर्ण इकाइयाँ हैं । दोनों का अपना-अपना महत्व है जो परिवार को, समाज को, राष्ट्र को बनाये रखने में सहायक है । हर क्षेत्र में स्त्री और पुरुष दोनों का समान सर्वांगीण विकास होना है, उसकेलिए सुविधाएँ होनी हैं ।

नये समाज का नया परिवार अणु परिवार ही है और सभी सदस्य अपने नये परिवार के संचालन का भार अपने कन्धों पर उठा लेते हैं । नये समाज में स्त्री अपने कर्तव्य-भार से, पारिवारिक आर्थिक ज़िम्मेदारियों से दूर नहीं रहती । पुराने समाज में मध्यवर्गीय स्त्री का कार्य-व्यापार केवल परिवार तक सीमित था तो नये समाज में स्त्री का कार्य-क्षेत्र घर और बाहर दोनों क्षेत्र रह गये हैं । मतलब यह है कि स्त्री-सहज प्राकृतिक नियमों के - गर्भ-धारण, शिशुसंरक्षण सम्बन्धी कार्य - साथ ही पति के समान आर्थिक कार्यों में भी संलग्न है । यह तो विदित है कि स्त्री कोमल भावनाओं का केदार है । इन भावनाओं के बल पर पुरुष वर्ग ने स्त्रियों

को बहकावे में डालकर लाभ उठाया था । पुरुषोचित कार्यों से स्त्रियों को दूर रख दिया था । क्योंकि पुरुषों ने ऐसा नियम बनाया था कि अमुक काम पुरुषों केलिए हैं जो कठिन हैं, ज़्यादा शारीरिक श्रम का आकांक्षी हैं और अमुक काम पुरुषों के योग्य नहीं स्त्रियों के लायक हैं, जिसमें कम शारीरिक श्रम की आवश्यकता है । तात्पर्य यह है कि स्त्री अबला है, जो पुरानी मान्यता थी, उसे पुष्ट किया है । समाज में पुरुष वर्ग ने ही ऐसा नियम बनाया जो अपनी सुख-सुविधा मात्र केलिए था । आज स्त्री ने शिक्षा पा ली है, उसमें सोचने-समझने की क्षमता आ गयी है । स्त्रियों ने साबित किया कि वे अबला नहीं हैं, वे भी व्यक्ति हैं, वे पुरुषों के समकक्ष प्रत्येक क्षेत्र में कार्य कर सकती हैं ।

यौन सम्बन्धी धारणाएँ

वैज्ञानिक उन्नति और शैक्षिक उन्नति ने मानव-जीवन की अनिवार्य सहजता सेक्स को भी समाज के परम्परागत रूप से विच्छिन्न कर दिया है । पुरानी मान्यता के आधार पर सेक्स और प्रेम-भाव को गोपनीय रखा जाता था । इसका मान्य व आदर्श रूप विवाह में स्वीकारा जाता था । काम-सम्बन्धी बातचीत को अश्लीलता का नाम दिया जाता रहा । इसलिए सेक्स के साथ पाप, भय और गन्दगी को सम्बन्धित कर दिया । गुप्तता, भय, गन्दगी जब सेक्स के साथ सम्बद्ध हो गया तो समाज आत्मतुष्टि के व्यसन के शिकंजे में जकड़ा जाए तो कोई आश्चर्य नहीं । सेक्स को स्वस्थ रूप में प्रकट करने की अपेक्षा उसे लज्जा और निकृष्टतम रूप में प्रकट किया जाता रहा । आधुनिक समाज में यौन सम्बन्धों और काम-भाव के प्रति दृष्टिकोण बदल गये हैं । और यह बदलाव मात्र पुरुषों तक ही सीमित नहीं रहा है । शिक्षित महिलाओं में भी यह परिवर्तन स्पष्ट रूप से परिलक्षित है । नवीनतम सामाजिक अध्ययन के अनुसार "नौकरीपेशा शिक्षित हिन्दु महिलाएँ यौन-सम्बन्धों के प्रति घृणा या निषिद्धता के परम्परित दृष्टिकोण को

नितान्त अधिक साहसिक, सहिष्णुतापूर्ण और यथार्थवादी दृष्टिकोण रखते हैं ।"[1] वास्तव में यौन-सम्बन्धों की उन्मुक्तता की ओर यात्रा भी स्वातन्त्र्योत्तर साहित्य की एक विशेषता है । सेक्स को गोपनीयता/हीन समाज में नैतिकता का आदर्श प्रस्तुत करती थी, परन्तु यह नैतिक मूल्य सदैव एक जैसा रहे, यह सम्भव नहीं । आज का बुद्धिजीवी मनुष्य इस प्रकार की गोपनीयता को आत्मतुष्टि केलिए संगत नहीं समझता, वह प्रेम और यौन भाव में स्वतन्त्रता का आकांक्षी है और जब वह नये नैतिक मूल्यों का अन्वेषण करता है, तो कानून अर्थात् समाज की मर्यादा उनका साथ नहीं दे पाती । आज का व्यक्ति पुराने नैतिक मूल्यों को तेज़ी से विघटित कर रहा है । हमारे समाज में जिन नैतिक मूल्यों को आदर्श समझा गया, वे दकियानूसी रूढ़ियों के संग्रह के अतिरिक्त कुछ नहीं है । जब-जब इन रूढ़ियों और समाज द्वारा थोपे गये आदर्शों व मर्यादाओं को व्यक्ति नकारता है और नयी वस्तुस्थिति की स्थापना करता है तो उसे युगों से संचित शक्ति के साथ संघर्ष करना पड़ता है । सेक्स सम्बन्धी स्वतन्त्रता की आकांक्षा ने व्यक्ति को अधिक खुलापन दिया है ।

औद्योगीकरण

औद्योगीकरण की क्रान्ति ने परम्परागत कृषिप्रधान अर्थ व्यवस्था को आमूल परिवर्तित किया । वैज्ञानिक आविष्कारों के फलस्वरूप औद्योगिक क्षेत्र में तीव्रगति से मशीनीकरण हुआ । आधुनिक शहरीकरण की पृष्ठभूमि में यही औद्योगीकरण है । जहाँ विस्तृत कल-कारखानों की स्थापना हुई वहाँ उनमें काम करनेवालों के लिए आवास का प्रबन्ध भी अनिवार्य हो गया । अत: विशाल बस्तियों का निर्माण किया गया जो बाद में विभिन्न नगरों के रूप में परिणत हुई ।

---

1. लव, मैरेज एण्ड सेक्स डॉ प्रमिला कपूर ; पृष्ठ 266-67

आज़ादी के बाद ग्रामीण क्षेत्र में परम्परागत ज़मींदारी एवं महाजनी वृत्ति के संशोधित रूप के विद्यमान रहने के कारण सामान्य कृषक के हाथों से भूमि निकल गयी । परिणामस्वरूप किसान, मज़दूर बनता गया । ऐसे मज़दूर मज़दूरी की खोज में शहरों की ओर आकर्षित हुए । तब परम्परागत गाँव टूटने लगे और शहरों का विस्तार होने लगा ।

शैक्षिक प्रगति के कारण गाँवों में भी शिक्षितों की संख्या बढ़ी जो परम्परागत व्यवसाय अथवा कृषि को छोड़कर नौकरी करने का स्वप्न देखने लगी । शहरी वातावरण ने इस नयी पीढ़ी को आकर्षित कर लिया जो स्वाभाविक है । शिक्षितों के साथ अशिक्षित और अल्प शिक्षित व्यक्ति भी शहरों की ओर बढ़े ।

औद्योगीकरण की प्रक्रिया से पूँजीपतियों की संख्या बढ़ने के साथ ही मज़दूरों की संख्या में विस्तार हुआ । अमीरों और गरीबों का अन्तर अधिकाधिक बढ़ता गया । औद्योगीकरण ने पूँजी को केन्द्रित कर दिया ।

सामाजिक, पारिवारिक, आर्थिक, राजनीतिक सभी क्षेत्र औद्योगिक प्रगति से प्रभावित हुए । पुराने अर्थ-नैतिक, समाज-नैतिक मूल्य टूटने लगे । पारम्परिक मान्यताएँ बदलने लगीं । परिवार और समाज में स्त्रियों की स्थिति में भी बुनियादी परिवर्तनों को राह मिली । शिक्षण-प्रशिक्षण, वैधानिक समानता और औद्योगिक विस्तार में रोज़गार के नये अवसरों के साथ मध्यवर्गीय स्त्रियों का स्थान भी घरों तक सीमित नहीं रह गया ।

औद्योगीकरण का पहला प्रत्यक्ष परिणाम होता है, अधिकाधिक संख्या में नगरों की उत्पत्ति और विकास, गाँवों से शहरों की ओर निष्क्रमण, बड़े नगरों में कल-कारखानों के अलावा सरकारी कार्यालयों, रोज़गार के अन्य

क्षेत्रों को बढ़त, शिक्षण संस्थाओं और सिनेमा, दूरदर्शन आदि मनोरंजन के साधनों की उपलब्धि से नौकरी, व्यापार, शिक्षा, आमोद-प्रमोद की सुविधाएँ आदि औद्योगीकरण ने नये समाज के नये परिवार को प्रभावित किया है । औद्योगीकरण की चंगुल से नया परिवार मुक्त नहीं हो सकता । इससे अलग भी नहीं हो सकता है ।

विज्ञान का विकास

विज्ञान निर्मित वित्त-व्यवस्था ने सामान्य जन-जीवन की भौतिक सुख साधनों के जाल में इस तरह जकड़ रखा है कि वह मन की स्वच्छता से दूर जा पड़ा है । व्यक्ति यह सोचने केलिए मजबूर हो गया कि उसकी इच्छाएँ पैसे से पूरी हो सकती हैं । पद-प्रतिष्ठा, भौतिक सुख, स्वार्थ, धन, ऐश्वर्य सबकुछ अर्थ-व्यवस्था से ही संचित है । अधिक से अधिक अर्थोपार्जन केलिए व्यक्ति संघर्ष करता है । कभी अनैतिकता का सहारा लेकर उसे भ्रष्टाचार का मार्ग अपनाना पड़ता है । अर्थ-व्यवस्था की उन्नति के इस परिवर्तित रूप ने समाज और व्यक्ति को सहजता प्रदान करने की अपेक्षा और अधिक संघर्षशील बना दिया है, क्योंकि समाज एक सामूहिक संगठन है, जब व्यक्ति का समूह ही अर्थतन्त्र को आमूल परिवर्तित करने में प्रयत्नशील हो तो समाज में सहजता नहीं रह सकती है ।

वैज्ञानिक जीवन-दृष्टि वर्तमान वैज्ञानिक की महत्वपूर्ण देन है । सोचने-विचारने का आज का दृष्टिकोण बदल गया है । पूर्व की परम्परागत आध्यात्मिक और पश्चिम की भौतिकवादी की धारणाएँ टूटने लगी हैं । वैज्ञानिक दृष्टि के परिणामस्वरूप ही भारत में परम्परा भंजन एवं तदनुकूल परिवर्तनों को अपनाया जाने लगा है । वैज्ञानिकता के प्रभाव में, स्वाधीन भारत में भी परम्परा प्रियता क्षीण हो गयी और प्रत्येक परिवर्तन को आत्मसात करने की भावना बढ़ी ।

वैज्ञानिक जीवन-दृष्टि के फलस्वरूप सदियों की भावुकता पूर्ण दृष्टि के स्थान पर तर्क संगतता का प्रकाश हुआ । बौद्धिकता का विस्तार हुआ ।

नये समाज में विज्ञान के प्रभाव से मानव की जीवन पद्धति में द्रुतगति से परिवर्तन आया । पर मानसिक स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं पड़ा । आज नया समाज आधुनिक तो शीघ्र ही बन जाता है, पर आधुनिकतावादी नहीं बन पाता है । यह जीवन-दृष्टि और जीवन-पद्धति में अन्तर्विरोध की स्थिति है । इस कारण से मूल्यों में तनाव की स्थिति उत्पन्न हो रही है । संघर्ष उभर रहा है ।

नयी आर्थिक स्थिति

प्राचीन युग में पारिवारिक सम्बन्धों को सौहार्दपूर्ण बनाये रखने में नैतिक एवं धार्मिक मूल्यों का महत्वपूर्ण हाथ था । आधुनिक युग की वैज्ञानिकता एवं बौद्धिकता के परिणामस्वरूप परम्परा बद्ध पाप-पुण्य मूलक धार्मिक धारणाओं का भय रहा नहीं । इसलिए पारिवारिक सम्बन्धों को जोड़े रखने का एकमात्र आधार अर्थ ही शेष रह गया है । अब अर्थ के कारण जहाँ भी स्थितियों में तनाव उत्पन्न होने लगता है वहाँ पारिवारिक सम्बन्धों की बखिया उधड़ने लग जाती है । नये समाज में बढ़ते औद्योगीकरण,, शहरीकरण तथा अर्थाभाव एवं अर्थचेतना के परिणामस्वरूप पूर्वस्थापित पारिवारिक मूल्य और पति-पत्नी सम्बन्धी मूल्य उखड़ने लगे हैं । परिवार का मुखिया अब पिता अथवा परिवार का बड़ा पुरुष नहीं रहा, बल्कि परिवार का भरण-पोषण करने वाला हो गया है, चाहे स्त्री हो या पुरुष ।

नये परिवार में पति-पत्नी की भूमिका

समाज में हुए विभिन्न परिवर्तनों के कारण सामाजिक संरचना में महान परिवर्तन आया है । औद्योगीकरण, यान्त्रिकीकरण, नगरीकरण जैसे अनेक परिवर्तनों ने समाज के परम्परागत रूप में क्रान्ति मचा दी जिससे सामाजिक संरचना ने तेज़ी से अपना स्वरूप बदला जिसका प्रभाव परिवार पर भी पड़ा । एक ओर समाज में आधुनिकता अपने पैर जमाती जा रही है तो दूसरी ओर पति-पत्नी की भूमिका से अभी भी लोग परम्परागत व्यवहार की अपेक्षा करते हैं । किन्तु आज सामाजिक परिस्थितियों में तीव्र गति से होनेवाले परिवर्तनों के कारण पति-पत्नी केलिए यह अनुमान करना भी कठिन होता जा रहा है कि उनसे किस भूमिका की अपेक्षा की जा रही है ।

वर्तमान समाज में पति की भूमिका में कोई खास परिवर्तन नहीं आया है । पति अभी भी अपने मुखिया की भूमिका निभा रहा है । आज के नये परिवार में पत्नी की भूमिका में अतुलनीय परिवर्तन आया है । पत्नी से माता तथा परिवार की देखभाल करनेवाली स्त्री की भूमिका के अतिरिक्त और कुछ अपेक्षा की जा रही है । फलस्वरूप उससे अपेक्षित व्यवहार व उसके द्वारा किये जानेवाले व्यवहार में अन्तर बढ़ता जा रहा है ।

आधुनिक पत्नियों के सम्मुख अनेक कठिन परिस्थितियाँ उपस्थित हैं । भूमिकाओं में विविधता, भूमिकाओं के द्वारा उत्पन्न असन्तोष और भूमिकाओं का संघर्ष । भूमिकाओं की विविधता के कारण नये परिवार की पत्नी अपने कर्तव्यों व कार्यों का किसी भी क्षेत्र में औचित्यपूर्ण ढंग से पालन नहीं कर पा रही है । नये परिवार की पत्नी साधारणतया शिक्षित है । इसी कारण आज की पत्नियों में अपनी परम्परागत भूमिका के कारण असन्तोष पाया जाता है । आज

उनकेलिए व्यक्तित्व विकास केलिए इतने अधिक अवसर प्राप्त हैं कि वे केवल माँ या गृह संचालिका के रूप में रहना उचित नहीं समझती ।

नये परिवार में जहाँ पत्नी नौकरी करने के साथ-साथ अपनी परम्परागत भूमिका निभाने की कोशिश करती है वहाँ वह अपनी हर भूमिका के साथ पहले जैसा न्याय नहीं कर पाती । परिवार के अन्य सदस्य - पति, बच्चे, सास, ससुर - उससे पहले जैसे व्यवहार की आशा करते हैं जो प्राय: असम्भव है । अत: भूमिकाओं में संघर्ष की स्थिति उत्पन्न होती है । आज पारिवारिक संरचना के परम्परागत स्वरूप में जो परिवर्तन हो रहे हैं वे वस्तुत: परिवार के पतन के नहीं वरन् परिवर्तन के द्योतक हैं ।

पति-पत्नी का समान अधिकार

यह विदित बात है कि किसी भी परिवार में शान्तिपूर्ण जीवन को सुरक्षित रखने केलिए पति और पत्नी के समान दायित्व का महत्व है । इसमें अपने को अधिक महत्वपूर्ण साबित करने या सिद्ध करने की आवश्यकता नहीं है । वस्तुत: यह बोध एक ऐसा मूल्य है जिसके बल पर एक सशक्त परिवार टिका रहता है । लेकिन जब-जब इन मूल्यों में गिरावट आती है तो परिवार का ढाँचा हिलने लगता है । इसे मूल्य के रूप में स्वीकारने के बावजूद कहीं कहीं इसकी गिरावट हुई है । जहाँ मूल्य ढह गया है वहाँ संघर्ष भी दिखाई पड़ता है । लेकिन आधुनिक समाज में कम से कम इतनी सुविधा है कि हम अपने हृदय की रूढ़ मान्यताओं को अलग कर सकते हैं । शिक्षा ने हमें अभूतपूर्व प्रगति का पथ दर्शाया है या अन्य प्रकार से हम अपने को रूढ़-मुक्त भी रख सकते हैं । पुराने समाज की तुलना में नये युग के परिवार की यही विशेषता है । पति और पत्नी के समान दायित्व में दोनों की सहभागिता ही नहीं बल्कि नयी मानवीय दृष्टि भी है । अर्थात् परिवार में पति, पत्नी को पूरी तरह आस्था के साथ

अपनाता है तो उसी आत्मा के साथ पत्नी भी पति को अपनाती है । इसे ही वस्तुत: मानवीय दृष्टि बताया गया है । यों परिवार की उन्नति या अवनति, श्रेष्ठता या नीचता, सुख या दुख सभी अवस्थाओं में वे सहभागी बन जाते हैं और वे दोनों मिल जुलकर परिवार की उन्नति केलिए प्रयत्न करते हैं । अनेक पारिवारिक समस्याओं में आर्थिक समस्या ही महत्वपूर्ण है । इसको सुलझाने में पति-पत्नी दोनों निरत रहते हैं ।

आर्थिक स्थिति सुधारने में पति और पत्नी का महत्व

सामाजिक जीवन की जितनी समस्याएँ हैं उनमें आर्थिक समस्या ही महत्वपूर्ण है । पारिवारिक जीवन में भी वैसी स्थिति है । पारिवारिक धरातल पर आर्थिक समस्या का हल करने में पति और पत्नी दोनों को एक साथ काम करना है । नये परिवार में स्त्री का नौकरी करना हेय नहीं समझा जाता । क्योंकि पुरानी जो स्त्री-सम्बन्धी रूढ़िगत मान्यताएँ थीं वे खोखली सिद्ध हो चुकी हैं । आज सब को मालूम है कि जीवन संग्राम में अर्थ को प्रमुख स्थान है । स्त्री को घर की रानी समझने वाली रूढ़िवादी विचारधारा आज निराधार बन गयी है ।

बताया जा चुका है कि आर्थिक सुस्थिरता केलिए पति-पत्नी दोनों को मेहनत करनी है । पहले पुरुष केवल घर के बाहर ही काम करता था तो आज वह घर में भी पत्नी को सहायता करने में हिचकता नहीं । क्योंकि वह अपनी पत्नी को अपने से अलग नहीं मानता, अपने बराबर ही मानता है । घर के काम-काज में पत्नी को सहायता करने में वह गर्व करता है कि पारिवारिक जीवन में उसका भी महत्वपूर्ण हाथ है । घरेलू काम-काज मात्र पत्नी का नहीं रह गया । घरेलू काम-काज में पत्नी को सहायता करने से पति-पत्नी सम्बन्ध की आधारभूत स्थिति, मानसिक मेल और ऐक्य की भावना बढ़ती है । पुरुष ने अपने अधिकार को गढ़ी

से नीचे उतरने का इरादा लिया है । अत: घर और बाहर स्त्री और पुरुष को मिलकर काम करने से ही आर्थिक सुस्थिरता आती है ।

पति-पत्नी सम्बन्ध के नये आयाम : औपन्यासिक सन्दर्भ

जब सामाजिक आस्थाएँ बदलती हैं तो व्यक्ति-सम्बन्ध में परिवर्तन के चिह्न नज़र आते हैं । यह हमारे नैतिक विचारों के बदलाव के कारण है । पति-पत्नी सम्बन्ध के जितने परिवर्तित मसले हैं उनमें नैतिक आधारों के बदलते सन्दर्भ महसूस किये जा सकते हैं । हिन्दी के उपन्यासों में, जिनमें प्रमुखत: आधुनिक परिवारों मे पति-पत्नी सम्बन्ध अंकित है, इसके विभिन्न रूप प्राप्त होते हैं ।

न आने वाला कल" उपन्यास के नायक मनोज का पारिवारिक जीवन तनावों से भरा है । इस तनाव से मुक्ति हेतु वह अपनी पत्नी से अलग होना चाहता है और नौकरी को भी बदलना या त्यागना चाहता है । वह नौकरी और पत्नी दोनों के बन्धनों से मुक्ति का इच्छुक है । मुक्ति की आकांक्षा के होते हुए भी, निर्मिति दोनों की निरर्थकता को साबित करती है, और उसे एक अनिश्चित ज़िन्दगी ढोने केलिए मज़बूर करती है । पत्नी से अलग होने की बात अपूर्ण रह जाती है, और नौकरी बदली नहीं जाती, छोड़ दी जाती है । पत्नी से छुटकारा पाने के इरादे से वह नौकरी छोड़ने केलिए प्रेरित हो जाता है ।

मनोज ने जीवन की रिक्तता से मुक्ति प्राप्त करने केलिए शोभा से शादी की थी । लेकिन रिक्तता दूर नहीं हुई । "दोनों चीज़ें सामने थीं । स्कूल के जूनियर हिन्दी मास्टर के रूप में ज़िन्दगी मेरी अपनी ज़िन्दगी नहीं थी । मुझे इसे लेकर कुछ करना था । लेकिन क्या स्कूल से त्यागपत्र देने से शोभा के साथ अपने सम्बन्ध की स्थिति हिल नहीं हो सकती थी । शोभा अपने से काट लेने से स्कूल

की यन्त्रणा से नहीं बचा जा सकता था तो क्या आवश्यक नहीं कि दोनों कदम साथ-साथ उठाये जाएं ? लेकिन क्या वह सम्भव था ? और क्या सचमुच इसके कुछ हासिल हो सकता था ।"[1]

मनोज और शोभा दोनों की परिस्थितियाँ समान नहीं थीं । वे "बातचीत करते हुए भी एक दूसरे से अलग होते जा रहे थे ।"[2] मनोज को लगता है कि स्कूल का जीवन अपना जीवन नहीं है । उससे छुटकारा पाना है । शोभा का पत्र उसके जीवन में छायी व्यथा और उससे सम्बन्धित निरर्थकता बोध को व्यक्त करता है । "पर अब तो जीने केलिए मेरे पास कुछ भी नहीं है - न साधन, न सम्बन्ध, न मान । तुम्हारे साथ अपने को जोड़ कर मैं ने हर चीज़ से अपने को वंचित कर लिया है ।"[3] वह स्वयं को आश्वस्त करता है - "सुबह के बाद सब ठीक हो जाएगा । और वह इस घर को छोड़कर घुटन से मुक्त हो जाएगा । इसके बाद एक नयी और अनजानी ज़िन्दगी को खोज अपने आप हर चीज़ में एक गति से आएगी ।"[4] एक ओर शोभा को अपनी पारिवारिक संस्कृति का प्रभाव है तो दूसरी ओर नीरसता और अजनबीपन का भाव है । दोनों अन्दर ही अन्दर एक दूसरे से चिढ़ते हुए भी उसे दबा कर कोमलता से बातें करते थे । फिर भी छोटी सी बात पर शोभा कुपित हो जाती है । यदि वे दोनों लेटे हुए परस्पर छू जाते तो तुरन्त "सॉरी" शब्द निकल पड़ता था । इस पर मनोज को ऐसा लगता था - "मेरे लिए वह किसी दूसरे की पत्नी थी, जिसके घर में मैं एक बेतुके मेहमान की तरह टिका था ।"[5] पारिवारिक जीवन में पति-पत्नी सम्बन्ध का अपना महत्वपूर्ण स्थान है । पति-पत्नी सम्बन्ध में जो विषमताएँ आती हैं उन

---

1. न आने वाला कल मोहन राकेश; पृष्ठ 25
2. वही; पृष्ठ 24
3. वही; पृष्ठ 107
4. वही; पृष्ठ 161
5. वही; पृष्ठ 16

विषमताओं के कारण पारिवारिक जीवन टूटन की अवस्था पर आ जाता है ।

यह सही है कि मनोज-शोभा दोनों एक दूसरे के आकांक्षी हैं । उनके अन्तर्मन में आपस में पाने की चाह है । "न आने वाला कल" में टूट कर भी न टूट पाने वाले व्यक्तियों और छूट कर भी न छूट पाने वाले मनुष्यों की कथा है । दोनों साथ रहकर भी अकेले हैं । अकेले रहकर भी अपने वृत्तों में सिमट कर भी एक की गति दूसरे को प्रभावित करती है ।"[1] लेकिन उन दोनों का अहं इसको अनुमति नहीं देता । एक दूसरे के सामने छोटा समझने को भी तैयार नहीं । भीतरी तौर पर समझौता करने के पक्ष में दोनों तैयार होते हैं । पर बाहरी तौर पर यह समझौता अपने-अपने अहं के कारण सम्भव नहीं हो जाता । उन्हें इस कुण्ठित अवस्था से मुक्त करने केलिए और किसी व्यक्ति की सहायता भी मिलती नहीं । उपन्यास के पति-पत्नी सम्बन्धी विषय पर मोहन राकेश का यह मन्तव्य बहुत समीचीन है । "मेरे लिए अनुभूति का सीधा सम्बन्ध मेरे यथार्थ से है और यथार्थ है मेरा समय और परिवेश व्यक्ति से परिवार, परिवार से राष्ट्र और राष्ट्र से मानव समाज का पूरा परिवेश । मैं इनमें से किसी एक से कटकर शेष से जुड़ा नहीं रह सकता अपने पास के सन्दर्भों से आँख हटाकर दूर के सन्दर्भों में जी नहीं सकता ।"[2] यद्यपि इस उपन्यास का एक दार्शनिक आयाम ढूँढ़ा जा सकता है फिर भी परिवार के नैतिक प्रतिमानों के बदलते लक्षण अवश्य दिखाई देते हैं ।

नये परिवार के पति-पत्नी सम्बन्ध की निरर्थकता का स्पष्ट आभास "एक पति के नोट्स" उपन्यास में मिलता है । यह महेन्द्र भल्ला का उपन्यास है । इस उपन्यास में पारिवारिक जीवन सम्बन्धी मूल्यगत भावनाओं को हेय और अर्थशून्य स्थापित किया गया है । इस उपन्यास का नायक आधुनिक विचारधारा

---

1. परिशोध 28 जनवर , 1974 आधुनिक संवेदना और हिन्दी उपन्यास
डा. बच्चनसिंह

2. धर्मयुग - 6 दिसम्बर, 1964 ; पृष्ट 19

से प्रभावित है जो अपनी प्रेमिका सीता के पीछे कुत्ते की तरह दुम हिलाकर चलता है । दोनों का विवाह हो जाता है । लेकिन उनका विवाहित जीवन आनन्द-पूर्ण नहीं है । विवाह के पूर्व सीता में जो शालीनता थी, जो सौन्दर्य था, जो आकर्षण था, उनमें आज भी कोई फर्क नहीं आया है । यद्यपि विवाह-पूर्व सीता की जो शारीरिक अवस्था थी वही अवस्था आज भी है फिर भी नायक का सीता के प्रति आकर्षण नष्ट हो गया है । नायक के मन में अपनी पत्नी सीता के प्रति अनाकर्षण इन बातों में स्पष्ट है - "रात की बासी गन्ध मेरे नथुने में घुस गयी, उसके होंठ नंगे लग रहे थे । लिपस्टिक के नये रंग के चार-पाँच धब्बे, जख्म पर क्रुरंट से, ध्यान से देखने से अनाकर्षक । थोड़े बदसूरत । मैंने मुँह फेर लिया ।"[1] उसके विचार में - "आदमी और औरत को शादी नहीं करनी चाहिए । दोनों को ऐसे ही आज़ाद घूमना चाहिए । जब जिसके साथ कोई रहना चाहे रहे, उकता जाए चला जाए ।"[2] इस अनाकर्षण की कोई खास बात नहीं दीखती । वह पत्नी में भी परिवर्तन चाहता है । वह मात्र अपनी पत्नी के शारीरिक सम्बन्ध से ऊब गया है । वह नवीनता चाहता है । इस नवीनता की प्राप्ति केलिए वह कोशिश करता है । इस प्रयत्न में वह पड़ोस वाली सन्ध्या के परिचय में आता है जो दूसरे की पत्नी है । पड़ोस वाली सन्ध्या भी वह नवीनता चाहती है । यों वे दोनों प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से शारीरिक सम्बन्ध की स्थापना करते हैं । फिर नायक सोचता है कि सन्ध्या से शारीरिक सम्बन्ध में कोई नवीनता नहीं है । इस कारण वह नवीनता के अभाव से ऊब जाता है । "कड़ी निरर्थकता ने मन को मज़बूती से जकड़ा लिया । मैं ने तब महसूस किया कि असल में जिस चीज़ को फोड़ना चाहता था, इसी निरर्थकता को, इसी को । और वह ज्यों-की-त्यों बनी हुई है ।"[3] पति की निरंकुश भावनाओं का अंकन करके दाम्पत्य मूल्यों पर आये परिवर्तन को लक्षित करना उपन्यासकार का उद्देश्य

---

1. एक पति के नोट्स महेन्द्र भल्ला ; पृष्ठ 71
2. वही ; पृष्ठ 44
3. वही ; पृष्ठ 77

है । वास्तव में यह उपन्यास यौन कुण्ठाओं का वर्णन भर नहीं है । यौन कुण्ठा की पृष्ठभूमि में मूल्यों का बिखराव ही दिखाया गया है ।

रमेश बक्षी कृत "बैसाखियों वाली इमारत" में उपन्यासकार ने आधुनिक मनुष्य-जीवन को, खास कर पारिवारिक जीवन को, मूल्य-हीनता तथा पति-पत्नी सम्बन्ध की निरर्थकता को विषय बनाया है । नायक कलकत्ता के अंग्रेज़ी पत्र का संवाददाता है । उसकी दृष्टि में प्रेम महज दिमागी विलास मात्र है । यही नहीं वह जूते और चप्पल को भी प्रेम से ज़्यादा महत्त्व देता है । कॉलज की प्रदर्शिनी में परिचित वसुधा पर वह आकर्षित होता है । वह अखबारों में उसकी चित्रकारी और शैली की तारीफ़ के पुल बाँधता है । पत्रकार उसका एक-एक चित्र पाँच-पाँच सौ रुपये में बिकवाता है । एक ओर पत्रकार प्रेम को सड़ी-गली चीज़ मानता है और दूसरी ओर वसुधा से प्रेम करता है । टेलिफोन पर उससे घण्टों बातें करता है । उसकेलिए दिन बर्बाद करने को भी तैयार है । लेकिन उसके नाम पर रोने वाली पत्नी की परवाह नहीं । वसुधा भी उसे चाहती है । वसुधा विवाह प्रस्ताव रखती है । लेकिन पत्रकार की दृष्टि में वह - "किसी बेवकूफ़तावश बनाये गये संविधान पर स्वीकृति के हस्ताक्षर करने सा लगता है ।"[1] वसुधा विवाहेतर शारीरिक सम्बन्ध केलिए तत्पर नहीं ।

पत्रकार की दूसरी मित्र जायस का, प्रेम और विवाह के सम्बन्ध में, विचार अलग है । प्रेम को वह एक बीमारी समझती है । वह स्वाभाविकता के नाम पर सपाट सम्बन्धों का समर्थन करती है । वह कहती है - "अब जो तुम्हारे मेरे साफ़-साफ़ और डायरेक्ट सम्बन्ध है, अगर मैं मूर्ख होती तो इस सबको प्यार समझ बैठती । पोंगापंथी होती तो स्कैंडल समझती और अपने इस दिमाग से सोचती हूँ तो यह सब सहज, स्वाभाविक और आवश्यक है ।"[2] वह विवाह का

1• बैसाखियों वाली इमारत रमेश बक्षी ; पृष्ठ 65
2• वही ; पृष्ठ 75

तिरस्कार करती है । अपनी शारीरिक भूख मिटाने को किसी भी विवाहित पुरुष से शारीरिक सम्बन्ध स्थापित करना चाहती है । इसमें व्यक्ति के टूटे और बिखरे हुए सम्बन्धों को, व्यक्ति-व्यक्ति के बीच सम्बन्धों को विद्रूप का चित्रण है ।

कलासमीक्षक नायक प्रेम को आउट ऑफ डेट और प्राचीन संस्कृति, परम्परायुक्त मूर्खता मानता है । इसी सिद्धान्त के आधार पर वह अपने प्रेम साम्राज्य को विस्तृत करता है । पत्रकार का अपनी पत्नी के साथ एरेंज्ड विवाह हुआ था । वह अपनी पत्नी से प्रेम नहीं कर पाता । यही नहीं, उसके साथ प्रत्यक्ष स्नेहहीन व्यवहार भी करता है । पत्नी भी समझ लेती है कि पत्रकार उससे प्रेम नहीं करता है । वह कहता है - "मैं ने तुमसे शादी की है । पति-पत्नी का रिश्ता है । प्रेम नाम की कोई मूर्खता हमारे बीच नहीं है । मैं ने एरेंज्ड मैरिज केवल इसलिए की है कि प्रेम का गोरखधन्धा मुझे बेवकूफी लगता है ।"[1]

भारत में वर्षों से पति द्वारा पत्नी को सुरक्षा और उसका भरण-पोषण होता आ रहा है । पुरुष का अपनी पत्नी से यौन सम्बन्ध के अधिकार को पत्नी भी मानती है । आधुनिक जीवन-परिस्थितियों में यह विचार बदलता जा रहा है । चाहे जो पति-पत्नी के सम्बन्ध में इससे बिखराव आ जाता है यही नहीं दूसरे रिश्तों से इसमें अलगाव उपस्थित होता है । "हम पति-पत्नी एक दूसरे से कुत्ते-बिल्ली की तरह लड़ रहे हैं । माँ-बाप-भाई, परिवार सारे-सारे रिश्तों से परिचित होने पर भी दूसरे से हम ऐसे कट गये हैं कि कोई पतंग भी वैसी हृदयहीनता से न कटे ।"[2] यह हृदयहीनता अहम् की भावना से उत्पन्न है ।

अपनी पत्नी को मात्र स्त्री समझने वाला पत्रकार वसुधा के साथ यौन-सम्बन्ध स्थापित करने में पराजित होता है । यह पराजय पत्रकार के अहं पर

---

1. बैसाखियों वाली इमारत रमेश बक्षी ; पृष्ठ 28
2. वही ; पृष्ठ 76

कुठाराघात करती है । फलस्वरूप आधुनिक समाज में पुरुषप्रधान अधिकार का, सामन्तीय विचार का समर्थक पत्रकार अपनी पत्नी से शारीरिक सम्बन्ध की स्थापना केलिए उद्यत होता है । इस प्रयत्न में कोई नवीनता का विषय नहीं है । किन्तु पति और पत्नी की मानसिक विकलता के कारण पत्नी इसका विरोध करती है । तो पत्रकार अपना अधिकार – स्त्री पर पुरुष का अधिकार – जताकर बलात्कार कर लेता है । इस पाशविक वृत्ति के पीछे अपने पुरुषत्व पर हुए आघात का प्रभाव ही है । उस आघात को वह सामन्तीय दृष्टि से देखता है और उसका नतीजा है बलात्कार । बलात्कार सामन्तीय बल का परिणाम मात्र है ।

पत्नी के घर छोड़ जाने के निर्णय में नवीनता है । यह निर्णय पुरुष-प्रधान समाज केलिए एक ललकार है । पत्रकार की पत्नी का यह निर्णय बड़ी आर्थिक समस्या पैदा करती है । चार साल के तनावपूर्ण जीवन के बाद पत्नी साफ-साफ कह देती है कि "यह मत सोचिए कि मैं आपकी आश्रिता हूँ, आप टुकड़े नहीं फेंकेंगे तो मैं क्या खाऊँगी । मैं अपने पैरों पर खड़ी हो सकती हूँ ।"[1] आज नयी पीढ़ी के समाज में स्त्री की विचारधारा में परिवर्तन आने लगे हैं । आधुनिक युग में स्त्री स्वयं अपने जीवन की दिशा निर्णीत करती है । "सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक एवं राजनैतिक पुनर्जागरण के इस काल में नारियाँ कोने में पड़ी रहने वाली मैले कपड़ों की गठरी नहीं सिद्ध हुई और प्रत्येक क्षेत्र में उनका स्पष्ट योगदान सामने आया । इससे मानव मूल्यों को नयी अर्थवत्ता प्राप्त हुई और दोनों वर्गों के बीच समानता की भावना सर्वथा नये परिवेश में उपस्थित हुई ।"[2] आधुनिक युग में पति-पत्नी सम्बन्ध आर्थिक धरातल पर निर्भर है । आधुनिक समाज में भी पुरुष यों अनुमान करता है कि पत्नी आर्थिक तंगी का शिकार है, इस कारण वह किसी हालत में पति को छोड़ नहीं जाएगी, क्योंकि अर्थाभाव में जीवन दुष्कर है । इस उपन्यास में पति-पत्नी के पारिवारिक जीवन में पत्रकार की पत्नी,

---

1. बैसाखियों वाली इमारत रमेश बक्षी ; पृष्ठ 102
2. हिन्दी उपन्यास – उपलब्धियाँ लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय ; पृष्ठ 125

जो बेरोज़गार है, पत्रकार को गुलाम बनकर, आश्रिता बनकर जीवन बिताना नहीं चाहती । परम्परागत पति-पत्नी सम्बन्ध के दायरे से बाहर आने की कोशिश पत्रकार की पत्नी करती है ।

पत्रकार की अहंवादिता के द्वारा व्यक्ति-व्यक्ति के संघर्ष और उनके टूटते हुए सम्बन्धों को उपन्यास में रूपायित किया गया है । उपन्यास में "व्यक्ति-व्यक्ति के बीच के सम्बन्धों की विद्रूप स्थितियों की तस्वीर है ।"[1] विवाह और प्रेम, घर, परिवार जीवन के शाश्वत मूल्य हैं । इनके तिरस्कार में व्यक्ति अशान्त, अस्थिर, कलहपूर्ण, संत्रस्त बन जाता है ।

श्रीकान्त वर्मा कृत "दूसरी बार" उपन्यास में आज के उच्च-मध्य-वर्गीय पारिवारिक जीवन को आंका है । इसका नायक पराजित, यौन प्रति-शोध में जलता हुआ युवक है । शहरी जीवन की व्यस्तताओं के परे ऊब और घुटन की दुनिया उसकी है । उसके जीवन में पूर्व परिचित प्रेयसी बिन्दी आती है । वह महानगरीय जीवन के प्रेम व्यापार में अत्यन्त सजग और चालाक है । नायक बार-बार उससे बचने का यत्न करता है पर वह बिन्दी के हाथों से बच नहीं पाता । दोनों का शारीरिक सम्बन्ध भी हो जाता है । बीच में उनका सम्बन्ध टूट जाता है । बिन्दी शहर से बाहर चली जाती है और वह भटकता हुआ पिल्लों में ही रहती है । उसके जितने अपने लोग हैं सब को अपने-अपने कामों में तल्लीन देखकर नायक सोचता है कि इस समूचे नगर में वह अकेला आदमी है जो बेमतलब और बेबुनियाद समय बिता रहा है । इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि वह अपने अन्दर एकदम अनिश्चित है । सुबह आँख खुलने पर वह अपने को एक अजनबी दुनिया में पाता है । उपन्यास का पात्र "मैं" अतिरंजित भावनाओं का शिकार है । वह अपनी कुण्ठाजनित निरर्थकता को लगातार अपने प्रेम और प्रेमिका पर

---

1. आधुनिकता के सन्दर्भ में आज का हिन्दी उपन्यास डॉ. अतुलवीर अरोड़ा ; पृष्ठ 218

प्रदीपित करता है । वह बिन्दो से घृणा करने लगता है । बड़े लम्बे अन्तराल के बाद बिन्दो दूसरी बार "मैं" से मिलती है । इस मुलाकात में दोनों बड़ी देर तक सन्नाटे में रहते हैं । टूटे हुए सम्बन्धों को जोड़ने की कोशिश बिन्दो करती है । लेकिन नायक यह प्रस्ताव स्वीकार नहीं करता । दूसरी बार मिलने पर सारे दिन वह उसके साथ टहलता रहता है । बिन्दो में कहीं न कहीं प्रेम की गहरी आसक्ति है । इसीलिए वह उसे छोड़ना नहीं चाहती । प्रेमिका बिन्दो के स्वाभाविक समर्पण और आत्मीयता में वह षड़यन्त्र का भाव देखता है । "जिस स्त्री से मैं ने घृणा की, जिसे मैं ने कुचलना चाहा, जो मेरी निगाह में तुच्छ थी, मैं ने उसी के चरण पकड़े, उसी से प्रेम की भीख माँगी ।"[1] अपनी प्रेमिका से शारीरिक सम्बन्ध के पश्चात् पुन: वह निरर्थक अनुभव करता है । बिन्दो नायक के लिए एक समस्या बन जाती है । बिन्दो को अपने जीवन से अलग करने या स्वीकार करने में वह असमर्थ है । नायक हमेशा संकल्प करता है कि बिन्दो से बदला लेकर अपने अधूरेपन का अन्त कर ले । लेकिन हर बार उसका अधूरापन बढ़ जाता है । नायक की समझ में नहीं आ रहा है कि वह क्या करे ? संसार के किस कोने में चला जाए ? बिन्दो, बिन्दो नहीं एक अभिशाप है । उससे वह कैसे मुक्त हो जाए ? भागकर अपरिचित लोगों से घिर कर वह थोड़ा तसल्ली पाता है क्योंकि यहाँ कोई उसे पहचान नहीं सकता । कोई नाम लेकर नहीं पुकार सकता । वह गुमनाम पड़े रहना चाहता है । वह सोचता है यहाँ जगह मेरी है, घर झूठ है, बिन्दो झूठ है । जो भी जाना है, पहचाना है, झूठ है । बिन्दो उसे ढूँढ़ निकालती है । लेकिन बिन्दो की तरफ़ देखने का साहस वह खो चुका है । वह टहलता और बिन्दो को ढोता हुआ, पंख की तरह उसके साथ चलता रहा । इस विवशता से उसे छुटकारा नहीं । इसीलिए वह अपनी पत्नी को पत्नी के रूप में स्वीकार नहीं कर सकता, मात्र स्त्री ही मान सकता है । पत्नी का आत्मसमर्पण नायक नहीं चाहता । उसकी दृष्टि में पति के प्रति पत्नी का यह आत्मसमर्पण पुरानी रीति-नीतियों

---

1. दूसरी बार श्रीकान्त वर्मा ; पृष्ठ 115

का परिचायक है । इसलिए लगातार उपन्यास में अधूरेपन का अहसास मिलता है । इसमें सामाजिक सन्दर्भ से महत्व नहीं दिया गया है । इस उपन्यास के नायक के बारे में कहा गया है – मैं बार-बार अपनी कल्पनाओं और विश्लेषण मुद्राओं में फँसा हुआ एक छल मात्र बन गया है, उसका छल इतना क्रूर है कि वह उसे स्वयं को भी छलता है, जबकि हर बार उसकी कोशिश बिन्दो को छलने की रही है ।"[1]

"दो एकान्त" उपन्यास की वानीरा का पति विवेक डाक्टर है जो हमेशा अपने पेशे में व्यस्त है । वह अपनी डिस्पेन्सरी में इतना व्यस्त है कि पत्नी वानीरा के लिए डाक्टर अप्राप्य है । इस अप्राप्ति से वह हमेशा कुण्ठित रहती है । कुण्ठा से मुक्ति हेतु वह अपने पुरुष मित्रों के साथ बाहर घूमती है । मेजर आनन्द से उसका शारीरिक सम्बन्ध भी होता है । एक तरफ़ विवेक वानीरा के प्रति बहुत ईमानदार है, वह उसकी हर बात मानता है तो दूसरी ओर वानीरा उसके विश्वास को तोड़ती है । इलाहाबाद में जब वह मेजर से बच्चों की माँ बनने वाली थी तो उसे उस स्थिति में अकेला छोड़ कर मेजर चला जाता है । इस अवस्था पर विवेक को दुख है । उदारतावश वानीरा को विवेक ने न छोड़ने का निश्चय किया । लेकिन वानीरा ऐसी दया-कृपा की चाह कभी नहीं रखती है । वह कहती है – "मैं ने कभी नहीं चाहा कि बहुमूल्य शीशा जो टूट गया है परन्तु फ्रेम में पड़े होने के कारण बिखर नहीं जाता, जब तक उसे फेंका न जाए ।"[2] वानीरा की राय में मध्यवर्गीय परिवारों में स्त्री केवल भोग की वस्तु है । "नारी का अपना कोई स्वत्व नहीं है, पहले भी नहीं था । पहले वह समर्पिता बनी पति के चरणों में धूल-धूसरिता थी ।"[3]

---

1. आधुनिकता के सन्दर्भ में आज का हिन्दी उपन्यास डॉ अतुलवीर अरोड़ा ; पृष्ठ 263-64

2. दो एकान्त नरेश मेहता ; पृष्ठ 86

3. वही ; पृष्ठ 86

"दो एकान्त" में पति-पत्नी सम्बन्ध में आधुनिक दृष्टि के बावजूद पुरानेपन की बू है । "वानीरा का यह "व्यक्ति" उसका ऐकान्तिक व्यक्ति है, जो घोषित रूप में विवेक के साथ अपने सम्बन्धों का अवचेतन स्तर पर तिरस्कार करता है, पुन: अपराध भाव से ग्रस्त होकर विवेक के समक्ष पश्चात्ताप से जलता है । विवेक के समक्ष वानीरा जितने नग्न है, अपने समक्ष भी इससे कम नहीं ।"[1]

"अन्धेरे बन्द कमरे" उपन्यास में हरबंस और नीलिमा का दाम्पत्य जीवन तनावपूर्ण है । उन दोनों का प्रेम-विवाह हुआ था । प्रेम विवाह की मानसिक स्तर पर असफलता का अंकन उनके दाम्पत्य जीवन में व्यक्त है । उनका प्रेम-विवाह न टूट जाता है और न समरसता में आ पाता है । दोनों का मानसिक स्तर, विचार, परिवेश, रुचियाँ, आशाएँ, आकांक्षाएँ भिन्न-भिन्न हैं । वे दोनों एक दूसरे के साथ रहते हैं । चाहकर भी वे अलग नहीं हो पाते । परिणामस्वरूप पति-पत्नी, जीवन की दरार, घुटन, ऊब, नीरस, अकेलेपन की जिन्दगी बिताते हैं । दोनों एक दूसरे को पाना चाहते हैं, पाते हैं, एकदम अपरिचित हो जाते हैं और एक दूसरे से छुटकारा पाना भी चाहते हैं । हरबंस को लगता है कि वह सदा के लिए जिन्दगी के अन्धेरे मे पड़ गया है । वह इससे बाहर निकलने के लिए जितना प्रयास करता है उतना ही अधिक धंस जाता है । नीलिमा यह स्वीकार करती है कि - "तुम जानते हो कि हम दोनों के बीच कहीं कोई चीज़ है जो हम दोनों को उटकता रहती है । हम दोनों चेष्टा करके भी उसे अपने बीच से निकाल नहीं पाते ।"[2] हरबंस यह नहीं समझ पाता कि असल में नीलिमा क्या चाहती है । वे दोनों प्रेम की परिभाषा देने के प्रयास में हैं । नीलिमा की स्वीकारोक्ति यह है कि सफल दाम्पत्य जीवन का आवश्यक घटक पति और पत्नी का आपसी समझौता है । यद्यपि परम्परागत पारिवारिक मान्यताओं का उल्लंघन करके दोनों ने प्रेम-विवाह किया था फिर भी दोनों में अपना-अपना अहं काम करता

---

1. आधुनिकता के सन्दर्भ में आज का हिन्दी उपन्यास:डॉ॰अतुलवीर अरोड़ा ; पृष्ठ 142
2. अन्धेरे बन्द कमरे मोहन राकेश ; पृष्ठ 202

है । फलस्वरूप एक दूसरे को समझने में, मानने में वे असफल हो जाते हैं, अत: उनका दाम्पत्य जीवन सुखपूर्ण नहीं बन पाता ।

पति-पत्नी सम्बन्ध में रति-भाव की समस्या केन्द्रीभूत रहती है । लेकिन मात्र रति-भाव की पूर्ति ही दाम्पत्य जीवन नहीं है । आपसी आत्मसमर्पण भी अवश्यक है । नीलिमा के प्रेम में, आत्मसमर्पण करने का संस्कार नहीं है । व्यक्तित्वहीन समर्पण को भी वह स्वीकार नहीं करती । पति पर वह आरोप लगाती है - "मै जानती हूँ, हरबंस मेरे बिना नहीं रह सकता पर उसी तरह जैसे वह दोनों वक्त खाना खाये बिना नहीं रह सकता। उसकेलिए यह सिर्फ भूख का सवाल है और कुछ नहीं । पर मैं उसकी भूख का सामान बनकर नहीं रहना चाहती ।"[1] विवाहित जीवन की निरर्थकता और परम्परागत जीवन मूल्यों की तिरस्कारभावना यहाँ प्रकट है । हरबंस और नीलिमा जिस विवशता, विषमता तथा निरर्थकता को झेल रहे हैं उसका श्रीकान्त वर्मा ने एक रूपक द्वारा यों प्रकट किया है । "आधुनिकता की पाली हुई पृष्ठभूमि पर प्रेम एक दुखान्त नाटक है जिसका हर अभिनेता कर्तव्य की भावना से तंग-संग अभिनय करने तथा विविध मुद्राओं में जीवित रहने केलिए बाध्य है । हर अभिनेता का अपना मन है, अकेला-पन है, जो उसका नेपथ्य है । हरबंस और नीलिमा इसी नेपथ्य में छटपटाती, झुंझलाती, खोझती आकृतियाँ हैं जो एक दूसरे केलिए अर्थहीन है ।"[2] आधुनिक युग में व्यक्ति केवल स्वार्थ-पूर्ति में ही निरत है । यह दाम्पत्य जीवन तथा पारिवारिक जीवन को सत्ता के प्रति ललकार है ।

स्त्री एक चीज़ नहीं, एक व्यक्ति है । हर क्षेत्र में प्रत्येक व्यक्ति का अपना व्यक्तित्व है । स्त्री का भी अपना व्यक्तित्व है । उसके व्यक्तित्व को

---

1. अन्धेरे बन्द कमरे मोहनराकेश ;पृष्ठ 229
2. आधुनिकहिन्दी उपन्यास श्रीकान्त वर्मा ; पृष्ठ 207

स्वीकारना समाजगत आवश्यकता है । आज स्त्री मात्र भोग्या नहीं, वह समाज का अधिकारी भी है । नीलिमा में अपनी स्वतन्त्र भावना है और स्वत्व सम्बन्धी विचार जाग उठे हैं । पत्नी, पति की सम्पत्ति है, उसे अपनी इच्छा के अनुरूप उपयोग कर सकता है, पुरुष के इसी सामन्तीय विचार के प्रति विरोध नीलिमा ने आजमाया है । आधुनिक मान्यताओं के अनुसार परिवार में स्त्री का समान अधिकार होना है क्योंकि आज स्त्री भी आर्थिक संचालन में निरत है । स्त्रियों के आर्थिक क्षेत्र में आगमन का यह अर्थ है कि पारिवारिक संचालन मात्र पुरुष की कमाई से नहीं चल सकता । इसी कारण से ही स्त्री को परिवार और समाज में मान्यता मिलने लगी है । ऐसा होने पर भी पुरुष का सामन्तीय विचार इसे स्वीकारने में हिचकता है । पति-पत्नी के बीच शारीरिक सम्बन्ध में भी पुरुष अपना समाजगत पुरुषोचित अधिकार का विनिमय करता है ।

नीलिमा पत्नीत्व की अपेक्षा कलाकार के स्वतन्त्र व्यक्तित्व की स्थापना की आकांक्षी है । पर हरबंस अपनी इच्छाओं को उस पर लादने का इच्छुक है । उसके विचार में नीलिमा को पहले पत्नी बननी है । दोनों के जीवन की स्थितियाँ बदलने से उनका पारिवारिक जीवन दारुण, तनावपूर्ण और असह्य बन जाता है । "हरबंस और नीलिमा - एक दूसरे की शिकायत करते हैं, रूठते हैं, झगड़ते हैं, फिर भी विवश होकर साथ-साथ रहते हैं ।"[1] "व्यक्ति और व्यक्ति के बीच एक गहरी खाई है, और आसपास एक गहरा खड्डा है - वे चाहकर भी इन्हें भर नहीं पाते, पर न भर पाने की मज़बूरी से बचकर क्या वे रह सकते हैं ? - अन्धेरे में भटकना और बन्द होकर रहना उनकी मज़बूरी है, फिर भी वे एक ही कमरे में साथ-साथ हैं - यह कमरा उनका साँझी ज़िन्दगी है । उन्धेरा या बन्द होने से मुक्ति एक दूसरे से हट कर उनकेलिए नहीं है - न एक केलिए और न दोनों केलिए । इसीलिए रात-दिन आपस में टकराते हुए एक साथ जिये जाते हैं, क्योंकि मुक्ति उनके लिए

---

1. हिन्दी उपन्यास का मनोविश्लेषणात्मक अध्ययन:डॉगिरिधर प्रसाद शर्मा,पृष्ठ 202

यदि है तो वह एक दूसरे में और एक दूसरे को साझेदारी में है । पर उन्हें मुक्ति नहीं मिल पाती ।"[1] पति-पत्नी जीवन में हरबंस अपनी पत्नी नीलिमा से सन्तुष्ट नहीं । उसकी धारणा है कि नीलिमा को पहले पत्नी बननी है । नीलिमा के स्वतन्त्र व्यक्तित्व की स्थापना के पीछे अपने पत्नीत्व है ।

"एक इंच मुस्कान" उपन्यास का नायक अमर साहित्यकार है । पारिवारिक जीवन में उसे आस्था नहीं । इसीलिए पति-पत्नी-सम्बन्ध को लेकर उसने नया मूल्य स्थापित किया है । उसकेलिए वैवाहिक सम्बन्ध अपनी कल्पना के परे है । लेकिन प्रेम सम्बन्ध में उसे आस्था है । स्त्रियों से शारीरिक सम्बन्ध की स्थापना ही उसके प्रेम का आधार है । चाहे वह पत्नी से ही या और किसी अन्य स्त्री से । वह स्वतन्त्र रहने का पक्षपाती है । उसके जीवन में दो स्त्रियाँ आती हैं । एक पति-परित्यक्ता धनी अमला, और दूसरी रंजना जो पारिवारिक जीवन के सम्बन्ध में परम्परित विचार वाली । इन दोनों का विवाहित जीवन के सम्बन्ध में धारणाएँ भिन्न ही है । अमला विवाहित जीवन से ऊब कर बाहर आयी है और वह खुले और स्वतन्त्र प्रेम की इच्छुक बनी है । वह साहित्यकार अमर को अपने वश में कर लेती है । अमर भी यह पसन्द करता है । अमर वास्तव में आर्थिक तंगी का शिकार है । अमला से उसे आर्थिक सहायता समय-समय पर मिलती रहती है । उन दोनों का शारीरिक सम्बन्ध भी ज़ारी रहता है । अमला इस शारीरिक सम्बन्ध को मात्र जैविकी आवश्यकता के रूप में मानती है । प्रकृति के अन्य जीव भी शारीरिक सम्बन्ध को निभाते हैं । उसी प्रकार मनुष्य भी । वह पारिवारिक मूल्यों का कोई महत्व नहीं देती ।

अमला के दाम्पत्य जीवन में उसके पति ने अमला को कोई मान्यता नहीं दी थी । उसने पुरुषोचित सामन्तीय अधिकार का उपयोग अपनी पत्नी

---

1. ज्ञानोदय जुलाई, 1965 पृष्ठ 15

के साथ किया था । शिक्षित और आधुनिक विचार वाली अमला को इन सामन्तीय विचारों का सामना करना था । आधुनिक विचार वाली अमला यह बर्दाश्त नहीं कर सकी । इस कारण उसका भी विवाह से चिढ़ है । इस परिवर्तन पर डॉ॰महेन्द्र भटनागर लिखते हैं - "विवाह का महान आदर्श आज समाज में लुप्त हो गया है । दाम्पत्य जीवन का सुख आज दुर्लभ बन गया है । वैवाहिक असंगतियाँ आज घर-घर में विद्यमान है, जिन्होंने स्त्री-पुरुषों के सम्बन्धों को विकृत तो किया ही है, समाज की शान्ति भी भंग कर रखी है ।"[1]

रंजना और अमर के दाम्पत्य जीवन के कटु अनुभवों ने रंजना को अलग होने को बाध्य किया । वह दूसरे शहर में तबादला लेकर नौकरी करने जाती है । उनके दाम्पत्य जीवन में तीसरे के आगमन ने उनके पारिवारिक जीवन को विघटित किया । रंजना परम्परागत दाम्पत्य मूल्यों को तोड़ने या छोड़ने के पक्ष में नहीं । इसका मतलब यह नहीं कि वह पति की गुलाम या आश्रिता बने रहने की समर्थक है । आधुनिक समाज में भी सुखी और सुदृढ़ दाम्पत्य के लिए इस परम्परागत मूल्य को निभाना है । "पाश्चात्य और भारतीय दाम्पत्य जीवन के मनोविज्ञान में मूलत: कोई अन्तर नहीं है । सभ्य बनने के लिए महत्ती शर्त यह है कि व्यक्ति सामाजिक विधि-निषेधों को पूरी मान्यता देता हुआ दाम्पत्य जीवन के बन्धनों को पूरी तरह अपनाता हुआ अपने को एक सामाजिक प्राणी सिद्ध करे ।"[2]

दाम्पत्य जीवन के बारे में कुछ मधुर कल्पनाएँ रंजना में ज़रूर थीं । उन मधुर कल्पनाओं की प्राप्ति की आकांक्षा भी थी । लेकिन कोशिश के बावजूद रंजना अपने जीवन में वह न पा सकी । अन्त में वह इस निर्णय पर आ पहुँचती है कि अमर के साथ का जीवन झूठ है, अवहेलना है, छल है, विश्वासघात है । यह

---

1. समस्यामूलक उपन्यासकार - प्रेमचन्द डॉ॰महेन्द्र भटनागर ; पृष्ठ 170
2. ज्ञानोदय दिसम्बर 1969 एवं जनवरी 1970 , पृष्ठ 235

आधुनिक पारिवारिक जीवन की ही विडम्बना है । परम्परागत पारिवारिक मूल्य बदल गये हैं । परम्परागत पारिवारिक मूल्यों का ह्रास हो गया है और नये पारिवारिक मूल्यों की सृष्टि हो रही है ।

पति-पत्नी सम्बन्धों का नया आयाम "उखड़े हुए लोग" उपन्यास में रूपायित है । स्वभावत: भारतीय परिवेश में विवाह के फलस्वरूप ही पति-पत्नी सम्बन्ध की शुरुआत होती है । लेकिन इस उपन्यास में विवाह के बिना ही पति-पत्नी सम्बन्ध तथा पारिवारिक जीवन का संगठन दिखाया गया है । यह तो ठीक है कि पति-पत्नी सम्बन्ध का लक्ष्य बिना विवाह कर्म से ही प्राप्त है । लेकिन यह सामाजिक विधिनियम का निषेध है । इसका प्रकट दृश्य शरद-जया के दाम्पत्य जीवन में लक्षित है । उपन्यासकार ने शरद-जया को सृष्टि यों की है कि उनके माध्यम से परम्परागत पारिवारिक जीवन मूल्यों का खण्डन करे । शरद और जया शिक्षित है । उनका अपना-अपना परिवार भी है, माता-पिता, भाई-बहन और सगे सम्बन्धी भी हैं । युवा शिक्षित पीढ़ी के प्रतिनिधि शरद और जया समाज की परम्परित जर्जरित विवाह पद्धति को तोड़ने में क्रियाशील है ।

इस उपन्यास में शरद-जया का परिचय एक रेल यात्रा में अकस्मात् होता है । दो दिन का यह परिचय बढ़ते-बढ़ते इस निर्णय पर एकमत हो जाते है कि वे एक साथ रहे यानी सहजीवन बिताए । यह सहजीवन एक समझौते के बल पर आधारित है । जब आपस में ऊब जाए अलग हो सकते हैं । उनका यह सह-जीवन एक दूसरे के लिए भार नहीं होना है । विवाह और पति-पत्नी सम्बन्ध पर शरद की धारणा है कि - "विवाह को कहानी स्त्री की गुलामी की कहानी है । "पतिव्रता" का जो मध्यकालीन नशा हमारे दिमाग में भर दिया गया है, यह वास्तव में स्त्री के दिमाग को कुन्द करने का संगठित और परम्परागत प्रयत्न रहा है । राजा और सामन्तों की अन्य सम्पत्ति में स्त्री या स्त्रियाँ भी एक सम्पत्ति थीं पहले जिसके पास शक्ति थी वह पर-इच्छा को "खरीद"

लेता है आज तो नारी के श्रम का उचित मूल्य ही नहीं आंका जाता और शरीर को खिलौना बना दिया गया है । और रूप तो आर्थिक समानता के ही युग में सम्भव है कि स्त्री-पुरुष अपनी वास्तविक स्वतन्त्र इच्छाओं को महत्व देकर ही विवाह के बन्धन में बन्धे । दोस्ती दो समान व्यक्तियों में होती है । उस समय उसमें स्थिरता आ पाती है जब उन दोनों में कहीं समानता हो । अर्थात् नारी पुरुष की आश्रिता न हो । प्रेयसी, पत्नी की अपेक्षा शायद इसीलिए अधिक प्रिय होती है कि वह आर्थिक रूप से पर-निर्भरता की स्थिति तक नहीं आ पाती ।"[1] जया इसको वैवाहिक जीवन और पति-पत्नी सम्बन्ध का सैद्धान्तिक पक्ष मानती है और इससे निराशा, कुण्ठा बढ़ती है । वह यह जानना चाहती है कि दाम्पत्य जीवन का व्यावहारिक पक्ष क्या है । शरद स्पष्ट करता है - आज हमारे समाज या हम सभी पर, सामन्तवाद के ध्वंसावशेषों की राख छाई है और दूसरी ओर महाजनी समाज की ह्रासकालीन छाप अपने "गुणों" के साथ गहरी पड़ती जा रही है । इस विचित्र किस्म की संक्रान्ति के दौर से गुज़रना हमारे समाज की एक ट्रैजडी है । हमारे मनों पर एक से नहीं, दो व्यवस्थाओं से लड़ना है । इन दोनों बोझों के नीचे हमारी आत्मा कराह रही है ।"[2] शरद-जया सम्पूर्ण वैवाहिक विधियों का तिरस्कार करते हैं । बहुत विचार विमर्श के पश्चात् वे दोनों जीवन भर सहजीवन बिताने का निर्णय करके पति-पत्नी बन जाते हैं । "हम लोग सम्मिलित जीवन बिताने का आज निश्चय कर रहे हैं । हमने विवाह किया है, सनद रहे और वक्त-ज़रूरत काम आये । विवाह सामाजिक धरातल पर एक व्यक्तिगत मसला है लेकिन आज का सामाजिक रूढ़ि जर्जर मिटता हुआ रूप, व्यक्ति के अनुकूल हो नहीं उसके विकास में सबसे बड़ा बाधक है । आज विवाह एक समझौता है, और उसके सिवा कुछ हो भी नहीं सकता । जब आपस में यह गुंजाइश नहीं रहेगी कि इसे चलाया जा सके या इस पर स्थिर रहा जा सके तो यह समझौता टूट जाएगा ।"[3] कुछ दिनों के अन्दर दोनों में मनमुटाव उत्पन्न

---

1. उखड़े हुए लोग राजेन्द्र यादव, पृष्ठ 23-24
2. वही ; पृष्ठ 25
3. वही ; पृष्ठ 28

होता है । यद्यपि शरद विवाह प्रथा का विरोध करता है फिर भी स्त्री-पुरुष के शारीरिक सम्बन्ध को मानता है क्योंकि वह उसको दृष्टि में प्रकृति का नियम है । उसके लिए विवाह संस्था की ज़रूरत नहीं । सामाजिक विधि-नियमों के बाहर पति-पत्नी-सम्बन्ध की परिकल्पना आज के समाज में दुर्लभ नहीं है ।

भीष्म साहिनी कृत "कड़ियाँ" उपन्यास के महेन्द्र की पत्नी प्रमिला पूरी तरह घरेलु नारी है जो अपने घर को ही सबकुछ समझती है । महेन्द्र अपनी पत्नी के घरेलूपन से ऊब जाता है । प्रमिला के संस्कारों ने उसे घर से बाहर देखने ही नहीं दिया । जब माँ की मृत्यु हुई थी तब प्रमिला छोटी थी । माँ की मृत्यु के बाद उसने अपने पिता का सदमा भरा जीवन देखा था, और वहीं उसके आदर्श पुरुष थे । प्रमिला अपने पति में भी इसी आदर्श पुरुष को देखने की कोशिश करती है । प्रमिला के इसी आदर्श से पति महेन्द्र कुण्ठित हो जाता है, फलस्वरूप वह अपने दफ्तर की सुषमा से सम्बन्ध बना लेता है । लेकिन बाद में अपने संस्कारवश महेन्द्र को लगा कि सुषमा से अपना यह सम्बन्ध अपनी पत्नी के प्रति छल है । अतः वह पछता कर पत्नी से सारी बातें खुल्लम-खुल्ला कह देता है और पत्नी से वादा करता है कि आइन्दा वह सुषमा से कोई भी सम्बन्ध नहीं रखेगा ।

प्रमिला इतनी कट्टर पंथी थी कि अपने पति की इस मानसिकता को सही अर्थ में वह स्वीकार न कर सकी। इस कारण महेन्द्र की यह स्वीकारोक्ति उनके जीवन की समस्या का हल नहीं बनी । उसी दिन से प्रमिला अपने पति को सन्देह की दृष्टि से देखने लगी । फलस्वरूप उनके दाम्पत्य में विघटन शुरू होता है । समय-असमय वह उसे कोसने भी लगती है । अब प्रमिला के व्यवहारों से महेन्द्र को लगता है कि "औरत चाहे तो मर्द को अपनी मुट्ठी में रख सकती है । अगर वह सलोनेवाली होती तो मैं सुषमा के पास जाता ही क्यों ।"[1] पति-पत्नी

---

1. कड़ियाँ: भीष्म साहिनी; पृष्ठ 57

सम्बन्ध को यह करार यों बढ़ो कि महेन्द्र अपनी पत्नी को छोड़ने का निश्चय करता है । प्रमिला अपने विश्वासों पर अड़िग रहती है । "जिस पुरुष को कभी वह पूर्णत: अपना और आनेलिए अखण्ड समझ कर अपने सम्बन्धों का निर्वाह करती रही थी, उसे एक, दो अथवा कई दिशाओं में विभक्त पाकर पुराने सम्बन्ध की निष्ठा और संपूर्णता को स्थिर रखना उसके सम्मुख नयी समस्या बन कर प्रकट होता है और बहुधा देखा गया है कि ऐसी स्थिति में नारी, परिस्थितियों की बदली हुई गतिविधियों के कारण छीजती सी चली जाती है, कुण्ठित हो जाती है ।"[1]

व्यक्ति सामाजिक प्राणी है । समाज परिवर्तनशील है । समाज के इस परिवर्तन के साथ व्यक्ति भी परिवर्तन चाहता है । मतलब यह है कि समय के बदलाव के साथ समाज तथा व्यक्ति में बदलाव आता है । "कड़ियाँ" उपन्यास के महेन्द्र के औद्योगिक जीवन में तरक्की आती रही तो दूसरी ओर उसका रंग-ढंग भी बदलता है । लेकिन पत्नी प्रमिला इस बदलाव की शिकार नहीं है । "कड़ियाँ" उपन्यास परिवार की कड़ियों के टूटने में ही नहीं, बल्कि इन कड़ियों के टूट जाने के बाद प्रताड़ित पत्नी के आन्तरिक व्यक्तित्व की कड़ियों के नव-गठन की कथा है । इस उपन्यास में मध्यवर्गीय पति-पत्नी के परिवार की कड़ियाँ टूटती हैं, इस टूटन का कारण भी बिलकुल साधारण है । आज के सामाजिक - आर्थिक दृष्टि से गतिशील जीवन में अनेकानेक मध्यवर्गीय अणुपरिवारों में यह विषम स्थिति आती है, जब ऊँचा पद पाने वाले व्यक्ति अपने अतीत से जुड़ी कड़ियों को तोड़ता है । यह झूठी स्थिति, ओढ़ने के कारण उत्पन्न होने वाली बात है । लेकिन जब इस झूठी स्थिति को पत्नी के साथ या पति के साथ जोड़ा जाता है तो झूठ का खोखलापन अधिक हो जाता है । उपन्यास का नायक महेन्द्र भी उन व्यक्तियों में से है, जिसे अपनी पत्नी प्रमिला पिछड़ी और बेमेल लगती है ।

---

1. हिन्दी उपन्यास-समाजशास्त्रीय विवेचन डॉ चण्डीप्रसाद जोशी ; पृष्ठ 44

अन्य पुरुषों के समान महेन्द्र न तो कुण्ठित रहता है और न ही अपने नये सम्बन्धों को ही पत्नी से छिपाता है । लेकिन पत्नी इस स्थिति से समझौता नहीं करती है ।

पति-पत्नी सम्बन्ध के विभिन्न परिपार्श्वों को प्रक्षेपित करने वाले हिन्दी के ये उपन्यास अन्ततः सम्बन्ध की ऊष्मलता पर प्रश्न-चिह्न लगाने वाले नहीं है । अगर ये प्रश्न-चिह्न लगाते हैं तो उन रूढ़ियों एवं पारिवारिक रीति-नीतियों पर ऐसे उपन्यास भी लिखे गये हैं जिन में दाम्पत्य की ऊष्मलता से शारीरिक बन्धन को महत्व देते हैं । लेकिन ऐसे उपन्यासों के पति-पत्नी सम्बन्ध शारीरिक सम्बन्ध में विलीन होकर किसी नयी दिशा की ओर अग्रसर भी नहीं हो रहे हैं । ज़ाहिर है कि भारतीय परिवार-संकल्प को पूरी तरह से तिरस्कृत समझ कर लिखे गये उपन्यास बहुत ही कम है । परिवार को जीवन की केन्द्र-धुरी के रूप में ही देखा गया है । पर रूढ़ियों में बन्धे परिवार को शुरू से अस्वीकृत समझा गया है । पति हो या पत्नी दोनों के स्वत्व को, गतिशील स्वत्व-बोध को महत्व दिया गया है । पत्नी को पति के गुलाम के रूप में देखने वाली या समझनेवाली सामन्तीय दृष्टि का सख्त विरोध किया गया है । पति-पत्नी सम्बन्ध के विभिन्न आयाम अन्ततः हमारी परम्परा से सम्बन्धित हो है अर्थात् वह परम्परा जो जड़ नहीं है नैरंतर्य से युक्त परम्परा से है । परम्परा का अतीतत्व इन उपन्यासों में अंकित नहीं है । इसीलिए पत्नी स्त्री-स्वत्व के साथ परिकल्पित है । परम्परा के वर्तमानत्व को महत्व के साथ देखा गया है । उसमें से दाम्पत्य का गतिशील पक्ष उभरता है । नगर-जीवन की अतिरंजनाओं से युक्त दाम्पत्य-जीवन का अंकन अपनी विकलताओं के साथ ही अंकित है । संक्षेपतः कहा जा सकता है कि आधुनिक हिन्दी उपन्यासों में पति-पत्नी सम्बन्ध स्त्री-पुरुष सम्बन्ध की सहज स्थितियों को रेखांकित करने के साथ-साथ हमारे गतिशील नैतिक स्थिति के नैरंतर्य को भी दिखाता चलता है ।

अध्याय चार

आधुनिक हिन्दी उपन्यास में

अणु परिवार की समस्याओं के विविध आयाम

अणु परिवार का विकास

आज़ादी के बाद हमारी कृषिप्रधान संस्कृति के बदले नौकरशाही संस्कृति, व्यापार-व्यवसाय के विकास के कारण परिवार का परम्परागत रूप बदलने लगा । संयुक्त परिवार धीरे-धीरे विघटित होने लगा । संयुक्त परिवार के विघटित होने के और भी कारण हैं । अत: परिवार का वह पुराना स्वरूप भी धीरे-धीरे लुप्त हो चला । आधुनिक संस्कृति ने, आधुनिक रहन-सहन के नये तौर-तरीके ने पारिवारिक स्वरूप को विभाजित किया है । उनमें से एक है अणुपरिवार । एक प्रकार से अणुपरिवार कोई नया परिवार तो नहीं है । पर इतना अवश्य है कि अणु परिवार के विकास के साथ हमारे सामाजिक इतिहास के विकास का सम्बन्ध है ।

परिवार का लघुतम रूप "अणु परिवार" कहलाता है । अंग्रेज़ी के "न्यूक्लियर फैमिली" केलिए हिन्दी में अनेक पर्यायवाची शब्द प्रयुक्त हैं जैसे एकाकी परिवार[1], एकांगी परिवार[2], व्यक्तिवादी परिवार[3], व्यक्ति परिवार, इकाई परिवार[4], लघु परिवार[5], केन्द्रकीय परिवार, केन्द्रीय

1· नारी शोषण आईने और आयाम : आशारानी व्होरा
2· महिला उपन्यासकारों की रचनाओं में बदलते सामाजिक सन्दर्भ डॉ·शीलप्रभावर्मा
2· स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास साहित्य की समाजशास्त्रीय पृष्ठभूमि
3· हिन्दी उपन्यास मे पारिवारिक चित्रण डॉ·महेन्द्र कुमार जैन
5· हिन्दी उपन्यास साहित्य का सांस्कृतिक अध्ययन :डॉ रमेश तिवारी
4· हिन्दी उपन्यास और सामाजिक मूल्य डॉ·मोहिनी वर्मा
5· स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास - मूल्य संक्रमण ; डॉ हेमेन्द्र पानेरी

परिवार[1], छोटा परिवार[2], नाभिक परिवार[3] आदि । लेकिन अणु परिवार शब्द का प्रयोग अधिक प्रचलित है ।

अणु परिवार में पति-पत्नी और अविवाहित बच्चे एकसाथ रहते हैं । यह हमारे नये सामाजिक विधान की उपज है । उसके कर्ता-धर्ता पति और पत्नी है । पति-पत्नी के जीवन पर केन्द्रित, उनकी आकांक्षाओं पर केन्द्रित पारिवारिक जीवन अणु परिवार का मुख्य आधार है । उसमें सदस्यों की आकांक्षा की प्रमुखता है । लेकिन सदस्यों की संख्या सीमित है ।

भारत के अणु परिवार पश्चिमी देशों के अणु परिवार से मेल खाने वाले नहीं है।पश्चिमी अणु परिवार पूरी तरह से अन्य सभी रिश्तों से दूर है । परिवार अनेक कारणों से अपना पूर्ववर्ती स्वरूप बदलता है । यह हमारी सामाजिक गति का एक प्रकरण मात्र है । रे.ई. डेबर ने कहा है - "परिवार के दुर्दिन अवश्य है, परन्तु इसके लोप का कोई खतरा नहीं है । व्यक्तिगत परिवार इतने अधिक टूट जाएँगे कि उनकी कभी भी मरम्मत नहीं की जा सकेगी, परन्तु उनका स्थान लेने केलिए नये परिवार उत्पन्न हो जाएँगे"[4] भारतीय अणु परिवार के सदस्यों केलिए अपने सगे-सम्बन्धियों का जीवन ही मुख्य है । भारतीय समाज में आज जितने अणु परिवार हैं वे पूरी तरह से पूर्ववर्ती स्वरूप से कटे हुए नहीं है ।

---

1. हिन्दी उपन्यास समाज और व्यक्ति का द्वन्द्व डॉ.मुंजुला गुप्त
1. साठोत्तरी महिला कहानीकार डॉ.मंजु शर्मा
2. भारतीय मध्यवर्ग : डॉ.श्यामसुन्दर घोष
3. हिन्दी उपन्यास में पारिवारिक सन्दर्भ डॉ.उषा मन्त्री
4. मैरिज एण्ड दि फैमिली आफ्टर दि वार रे.ई.डेबर ; पृष्ठ 163

यह सही है कि स्वतन्त्रता के पहले ही संयुक्त परिवार विघटित होने लगे और नये प्रकार की परिवार व्यवस्थाएँ उभरने लगी हैं । आधुनिक शहरी वातावरण में अणु परिवारों का विकास अनिवार्य सा हो गया है ।

अणु परिवार आधुनिक पारिवारिक जीवन का एक प्रमुख अंग है । अत: समाजशास्त्रियों ने उसके बारे में अपनी राय प्रकट की है । वास्तव में समाजशास्त्रियों ने उसके स्वरूप को देखने का कार्य किया है जिसके अन्तर्गत किस प्रकार का जीवन जिया जाता है ।

जैसे उपरिवत् सूचित है कि स्वतन्त्रता पूर्व भारतीय समाज में ही संयुक्त परिवार की जड़ें हिलने लगी थीं । इसके मूल में विदेशी शासन तथा विदेशी शिक्षा का प्रभाव रहा है । विदेशी शासन और शिक्षा से प्रभावित होने से पुरानी मान्यताएँ बदलने लगी । इसका असर भारतीय पारिवारिक जीवन पर पड़ा । फलस्वरूप व्यक्ति की अस्मिता की भावना बढ़ी । समष्टि चिन्ता व्यष्टि चिन्ता में परिणत हुई । जीवन अर्थ-केन्द्रित होने लगा । जब से जीवन को धुरी अर्थाधारित होने लगी तब से संयुक्त परिवार की टूटन तथा अणु परिवार की शुरूआत होने लगी । व्यक्ति का निजी संसार बनने लगा । इस प्रकार उन सम्बन्धों से अलग व्यक्ति - स्त्री और पुरुष - स्वतन्त्र जीवन की ओर झुकने लगे । इस सामाजिक प्रक्रिया का प्रभाव उपन्यासकारों ने भी स्वीकार किया है । परिवार में आये परिवर्तन तथा परिवर्तन की अनेकानेक संश्लिष्ट स्थितियाँ उनकी विषय वस्तु बनने लगीं । "संयुक्त परिवार का परम्परागत ढाँचा प्रेमचन्द के समय में ही टूट गया था और परिवार की परिभाषा वहीं नहीं रह गयी थी, जो अभी तक समझी जाती थी । फैमिली या परिवार की सीमा आज पति-पत्नी और बच्चे ही हैं, उसमें भाई-बहन, भाभी-जीजा, बाबा-दादा इत्यादि रिश्तेदार नहीं होते ।"[1]

---

1. एक दुनिया-समानान्तर राजेन्द्र यादव ; पृष्ठ 30

शहरों का विकास और शहरों में पूँजी का केन्द्रीकरण भारतीय समाजशास्त्र का एक महत्वपूर्ण पहलु है । उसने गाँवों और कस्बों से लोगों को आकर्षित किया है । परिवार की वास्तविक जड़ें वहीं की वहीं रह गयीं और छोटे-छोटे परिवार शहर की ओर अग्रसर होने लगे । "एकांगी परिवार की सदस्य संख्या बहुत सीमित हो गयी है, जिसमें पति-पत्नी तथा बच्चे ही सामाजिक इकाई के रूप में आते हैं ।"[1] इन अणु परिवारों की कथाएँ हिन्दी उपन्यास की एक मुख्य विषय वस्तु है क्योंकि नये सामा--- प्रतिमान इनके माध्यम से प्रकट होते हैं ।

स्वातन्त्र्योत्तर उपन्यास और अणु परिवार

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद लिखे गये उपन्यासों में नये ढंग के परिवारों की कथाएँ प्रमुख बन गयी हैं । ऐसे कुछ उपन्यास हिन्दी साहित्य में उपलब्ध हैं जिन केलिए स्वीकृत पारिवारिक परिप्रेक्ष्य को अणु परिवार के अन्तर्गत रखा जा सकता है । इन उपन्यासों में खासकर एक ही विषयवस्तु को प्रमुखता दी गयी है और वह है पति-पत्नी सम्बन्ध । पति-पत्नी सम्बन्ध अनेक प्रकार की पुरानी मान्यताओं से जकड़े होने पर भी आधुनिक सभ्यता के प्रभाव के कारण पुरानी मान्यताओं पर प्रश्न-चिह्न लगा दिये गये हैं । जब सम्बन्धों के बीच प्रश्नचिह्न लगते हैं तब सम्बन्ध तनावग्रस्त हो जाता है । आधुनिक उपन्यासकारों ने इसे विषयवस्तु के रूप में स्वीकारा है । इसलिए वे आधुनिक संस्कृति और पुरानी मान्यताओं की टकराहट दिखा सकते हैं । "स्वातन्त्र्योत्तर काल देश के आर्थिक नव-निर्माण के समान ही नये जीवन के निर्माण का काल है । राष्ट्रीय चेतना के समान ही व्यक्ति और समाज की चेतना आन्तरिक और बाह्य परिस्थितियों और समस्याओं से संघर्ष करती हुई अपना नवीन संस्कार कर रही है । इसके परिणामस्वरूप जीवन के प्रति दृष्टिकोण सामाजिक तथा वैयक्तिक मर्यादा आदि

---

1. स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास साहित्य की समाजशास्त्रीय पृष्ठभूमि
डॉ. स्वर्णलता ; पृष्ठ 51

सभी में एक आधारभूत परिवर्तन उपस्थित हो रहा है और इसी परिवर्तन के फलस्वरूप जीवन में अनेक स्वस्थ-अस्वस्थ सम्भावनाएँ परिलक्षित हो रही है ।"[1] यद्यपि ये उपन्यास पति-पत्नी सम्बन्ध का एक स्थायी चित्र ही प्रस्तुत कर रहे हैं फिर भी उनमें संस्कृति की अन्तर्धारा भी निहित है । असल में परिवर्तित होते सामाजिक परिदृश्यों एवं पारिवारिक स्थितियों की कहानी के रूप में इन औपन्यासिक कथाओं को देखना उचित लगता है ।

अणु परिवार की बात बाद में आती है । इसके आधार पर लिखे जाने वाले अधुनातन उपन्यासों की कमी हिन्दी में नहीं है । लेकिन पच्चासोत्तर काल की कई प्रकार की समस्याएँ हैं । पचासोत्तर उपन्यासों में, खास कर पति-पत्नी सम्बन्धों को लेकर लिखे गये उपन्यासों में स्त्री-पुरुष की समस्याओं का पक्ष प्रबल हो गया । स्त्री-पुरुष के अधिकार, समानाधिकार, स्त्री का स्वत्व पुरुष की अधिकार भावना, तज्जन्य सामन्तीय मानसिकता आदि अणु परिवार के सन्दर्भ में भी विचारणीय है ।

पारम्परिक समाजविधान और समानाधिकार की समस्या

पारम्परिक समाजविधान में जोकि पुरुषप्रधान है, स्त्री ही अत्याचार का पात्र बनती है । सदियों से चली आने वाली इस स्थिति ने स्त्री की मानसिकता को उसके अनुरूप ढाल लिया है । स्त्री की हीन भावना अपनेलिए ही नहीं, अपितु सम्पूर्ण समाज केलिए भी हानिकारक है । स्त्रियों की हीन भावना का कारण आंशिक रूप से सामाजिक और धार्मिक हो सकता है । किन्तु प्रमुखतः वह आर्थिक है । मानव-विज्ञान की गवेषणाओं से भी यह पता चला है कि जिस समाज में स्त्रियों के हाथ में अधिकार नहीं है उस समाज में स्त्रियों की

---

1. स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी साहित्य :डॉ.रामगोपालसिंह चौहान
सं. डॉ महेन्द्र भटनागर ; पृष्ठ 13

स्थिति में गिरावट आती है । इस सम्बन्ध में महात्मा गान्धी ने यों कहा था "अक्सर स्त्रियों का बहुत सा समय आवश्यक घरेलु कार्यों में नहीं, बल्कि अपने-अपने पति के अहंपूर्ण सुख को तृप्ति में ही बीतता है । मेरे विचार से स्त्रियों की यह गुलामी हमारी असभ्यता का चिह्न है । मेरी राय में भोजनालय की भी गुलामी विशेषत: हमारी असभ्यता का अवशेष है । यही समय है कि हमारा स्त्री समाज इस बन्धन से मुक्त हो जाय । स्त्रियों का सारा समय घरेलू कार्यों में नहीं लगना चाहिए ।"[1] देश का आर्थिक विकास स्त्रियों के उत्थान और आर्थिक विकास से पूर्णत: सम्बन्धित है । निम्न जातियों में स्त्रियाँ समान अधिकार एवं स्वतन्त्रता का उपभोग करती हैं क्योंकि इनमें स्त्रियों व पुरुषों के कार्यविभाजन की कोई निश्चित सीमा नहीं है । सामन्तवादी समाज ने स्त्रियों और पुरुषों के कार्य निश्चित रूप से दो प्रकार से विभक्त किये हैं । यही रीति आज भी ज़ारी है । समानाधिकार की समस्या पुरुषों केलिए एक समस्या नहीं है क्योंकि पुरुष परम्परागत मान्यता के बल पर अधिकार का कार्यकर्ता है ।

आर्थिक दृष्टि से पर-निर्भर स्त्रियों को बड़ी विषमता के साथ जीवन व्यतीत करना पड़ता है । पुरुष के हर प्रकार के अत्याचारों को झेलने केलिए वह बाध्य हो जाती है क्योंकि उसके पास और कोई उपाय नहीं है । वह घर के बाहर भी नहीं जा सकती ताकि पुरुष वर्ग के अत्याचारों का संयुक्त रूप से विरोध करे । पुरुष आर्थिक दृष्टि से स्वतन्त्र और सम्पन्न होने के कारण समाज पर उसका अधिकार है । वह अपनी पत्नी को छोड़कर दूसरा विवाह भी कर सकता है । किन्तु पति-परित्यक्ता पत्नी आसानी से फिर अपना परिवार नहीं बसा सकती । स्त्री की विवाहगति पर ऐसी अनेक रूढ़ियाँ रखी गयी हैं । पारम्परिक समाज ने परिवर्तनों के बावजूद अपने को बदलने का कार्य नहीं किया है । लेकिन जब समाज का आमूल परिवर्तन होने लगा, परिवार के नये-नये स्वरूप सामने आने लगे, नये

---

1. महिलाओं से महात्मा गान्धी ; पृष्ठ 26।

सामाजिक विकास की नयी-नयी मज़बूरियाँ प्रकट होने लगीं तो पारम्परिक विधान में बिखराव आने लगा है । अणु परिवार उनमें से एक है । इसमें स्त्री और पुरुष के अधिकार सम्बन्धी बात प्रमुख है । अणु परिवार नये सामाजिक विधान की उपज है । इसलिए उसमें समनाधिकार की भावना को अधिक प्रश्रय मिला है ।

अणु परिवार और समानाधिकार की भावना

समानाधिकार की भावना का मतलब है कि स्त्रियों को पुरुषों के समान अधिकार विनिमय में समानता की प्राप्ति । आधुनिक शिक्षा के प्रसार से स्त्रियों में यह धारणा सुदृढ़ है । पुरुषप्रधान समाज की स्थितियों से परिचित स्त्रियों की मानसिकता बदल गयी है । स्त्री को अपने अधिकारों के लिए लड़ने केलिए प्रेरित किया । असल में स्त्री ने अपने अधिकारों की माँग नहीं की, बल्कि वे अपने स्वत्व से सही ढंग से परिचित हो गयीं ।

आज के अणु परिवार में पुरुष और स्त्री का समान अधिकार व्यवस्थित है । स्त्री, पुरुष का गुलाम नहीं, पुरुष स्त्री का मालिक भी नहीं । वे दोनों मान्यताप्राप्त व्यक्ति हैं, समान अधिकार वाले व्यक्ति हैं । नये समाज के पुरुष, स्त्री को गुलाम बना के रखना नहीं चाहता या चाहने पर भी सम्भव नहीं होता । क्योंकि आज के समाज में दोनों समान रूप से आर्थिक क्षेत्र में कार्यरत है । परिवार की नींव अर्थ केन्द्रित होने के नाते एक दूसरे का गुलाम नहीं समझता है ।

"आपका बण्टी" मन्नु भण्डारी का उपन्यास है । बण्टी के माध्यम से पति-पत्नी सम्बन्ध को देखा गया है । इस उपन्यास का पति-पत्नी सम्बन्ध अन्दर से पूरी तरह बिखरा हुआ है । इस उपन्यास का परिवार अणु परिवार है । समान अधिकार की बांछा और तज्जन्य मानसिक एवं व्यावहारिक उलझन इस उपन्यास में अंकित है ।

परिवार में पति-पत्नी के समान अधिकार की मान्यता देने के बावजूद अणु परिवार के विघटन की कथा "आपका बण्टी" में चित्रित है। इस में पति और पत्नी दोनों अपने स्वत्व के संरक्षण केलिए तत्पर हैं, एक दूसरे की परवाह नहीं करते। "मनुष्य का चरित्र उसके चेतन से नहीं, अवचेतन से भी निर्मित और संचालित होता है। अवचेतन में मनुष्य की वे आदिम प्रवृत्तियाँ होती हैं, जो सत्-असत् की चिन्ता किये बिना कार्य करती है। और यह भी सत्य है कि ये ही हमारे सारे व्यक्तिगत और सामाजिक आधारों के मूल में होती हैं।"[1] अपना ही स्वार्थ उनके प्रत्येक कार्य-क्षेत्र में प्रकट है। इससे पारिवारिक तनाव बढ़ता है। इसका प्रभाव उनका एकमात्र पुत्र बण्टी पर पड़ता है।

"आपका बण्टी" के द्वारा परम्परागत पारिवारिक मूल्यों का निषेध शकुन और अजय के दम्पति के माध्यम से दर्शाया गया है। वे दोनों किसी भी प्रकार के समझौते केलिए तैयार नहीं है। वे अपने बच्चे के प्रति वात्सल्य तो दिखाते हैं पर उसमें हार्दिकता नहीं। अपने-अपने स्वार्थ लक्ष्य की सिद्धि ही प्रेरक शक्ति है। इस कारण से पति-पत्नी एक दूसरे को नीचा दिखाने की कोशिश करते हैं। यह अहं की भावना से जन्मी है। प्रत्येक व्यक्ति में अहं की प्रवृत्ति किसी न किसी मात्रा में अवश्य विद्यमान है। अहंभाव जब अनियन्त्रित ढंग से विकसित होता है तब वह घातक बन जाता है। शकुन का अहंभाव अपनी अधिकार-भावना से निसृत है। यह भावना शकुन को पराजय की ओर ले जाती है "सामनेवाला व्यक्ति तो पता नहीं, कब परिदृश्य से हट भी गया और वह आज तब उसी मुद्रा में, उसी स्थिति में खड़ी है - साँस रोके, दम साधे, छुटी-छुटी और कृत्रिम सात वर्षों में विभागाध्यक्षा से प्रिन्सिपल हो जाने के पीछे भी कहीं अपने को बढ़ाने से ज़्यादा अजय को गिराने की आकांक्षा ही थी। वह स्वयं भी अपना लक्ष्य रही ही नहीं।"[2] पति-पत्नी की अधिकार-भावना एक दूसरे को

---

1. हिन्दी उपन्यास - एक अन्तर्यात्रा डॉ. रामदरश मिश्र; पृष्ठ 7।
2. आपका बण्टी मन्नु भण्डारी; पृष्ठ 37

निगलने वाली बन जाती है । उपन्यास के कथा-परिदृश्य में यह स्वतन्त्रता और अधिकार-भावना पारिवारिक सीमाओं को लांघकर बाहर आती है तो परिवार का संचालन मुश्किल हो जाता है । शकुन किसी भी माने समझौते केलिए तैयार नहीं । इस कारण उसका दाम्पत्य जीवन विघटन की स्थिति पर आ जाता है । "किसी के साथ सम्बन्ध बढ़ने की सूचना और फिर उसके साथ सेटिल हो जाने की सूचना ने उसे तिल-मिला दिया था । अकेले रहने के बावजूद तब एक बार फिर नये सिरे से अकेलेपन का भाव जागा था, बहुत तीखा और कटु होकर । अपमान की भावना ने उस दंश को ज़्यादा बढ़ा दिया था ।"[1] दाम्पत्य जीवन में शकुन को अपने पति से अपमान और अकेलेपन ही मिले हैं । स्त्री को व्यक्ति के रूप में देखने और मानने की क्षमता अजय में नहीं रही । अगर है तो इसके प्रति अजय अनजान रहता है ।

शकुन समाज में प्रतिष्ठित व्यक्ति है । वह सात वर्ष से अपने पति से अलग रहती है । पर अब उसमें परिवर्तन आ गया है । "एक अध्याय था, जिसे समाप्त होना था, और वह हो गया । दस वर्ष का यह विवाहित जीवन - एक अन्धेरी सुरंग में चले जाने की अनुभूति से भिन्न न था । आज जैसे एकाएक वह उसके अन्तिम छोर पर आ गयी है । पर आ पहुँचने का सन्तोष भी तो नहीं है, ढकेल दिये जाने की विवश कचोट भर है । पर कैसा है यह छोर ? न प्रकाश, न वह खुलापन, न मुक्ति का अहसास । लगता है जैसे इस सुरंग ने उसे एक दूसरी सुरंग के मुहाने पर छोड़ दिया है - फिर एक और यात्रा - वैसा ही अन्धकार, वैसा ही अकेलापन ।"[2] नये समाज का वैवाहिक जीवन एक दूसरे को गुलाम रखने के सामन्तीय मूल्य का विरोध करता है । स्त्री के अधिकार को नगण्य मानकर उसे गुलाम रखने की इच्छा आज के समाज के पुरुषों में है । यह भावना उसके नस-नस में

---

1. आपका बण्टी मन्नु भण्डारी; पृष्ठ 36
2. वही; पृष्ठ 39

समा गयो है । इसी धारणा का आज का स्त्री-वर्ग विरोध करता है । पत्नी को इस अधिकार-भावना को स्वीकारने केलिए अजय तैयार नहीं होता । स्त्री को गुलाम बनाये रखने को विवाह-प्रथा को शकुन कुत्सित मानती है ।

समाज ने पुरुष को पुनर्विवाह करने का अधिकार सौंप दिया है । पुरुष पुनर्विवाह कर सकता तो स्त्री क्यों नहीं कर सकती ? इसी उपन्यास के वकील चाचा के मत में - "अगर अजय अपनी ज़िन्दगी को नयी शुरूआत कर सकता है तो तुम क्यों नहीं कर सकती ? क्यों अपने को इतना बाँध कर रखती हो ? आखिर प्रिन्सिपल होने के नाते यहाँ के भद्र समाज में उठना-बैठना होगा ही, इस दृष्टि से कभी ।"[1] पुरुषप्रधान समाज ने अपनी सुविधा केलिए ही सामाजिक नियम बनाये हैं । इन नियमों के कारण स्त्री वर्ग पुरुषों का शिकार बन जाता है । सभी सामाजिक नीतियाँ स्त्रियों केलिए निषेधात्मक हैं । परिणामस्वरूप उस उपेक्षित स्त्री के जीवन में अन्धकार छा जाता है । पुरुष आसानी से पुनर्विवाह कर सकता है । पर स्त्री को दूसरी शादी का अधिकार प्रकटत: निषिद्ध है । दूसरे विवाह के सम्बन्ध में स्त्री योग्य भी नहीं हो सकती । चाहे पति जीवित रहे, चाहे पति की मृत्यु हो जाए, पत्नी केलिए पर-पुरुष की कल्पना करने से बड़ा अपराध और कुछ नहीं है । "हिन्दू विवाह पद्धति की विडम्बना है कि पुरुष जितने चाहे विवाह कर सकता है, परन्तु स्त्री केलिए यह अनैतिक माना जाता है । स्त्री पति के न रहने पर जीवन-पर्यन्त उस के नाम पर एकाकी जीवन बिताने केलिए बाध्य है, यह प्रकृति विरोधी है । प्रकृति विरुद्ध इन कुनीतियों ने ही समाज में पाखण्ड और भ्रष्टाचार का प्रसार किया है ।"[2] इस उपन्यास में पति-परित्यक्ता शकुन ऐसे मूल्यों का निषेध करके दूसरी शादी केलिए सोचती है । परिणामस्वरूप डॉ.जोशी से उसका परिचय बढ़ता है

---

1. आपका बण्टी : मन्नु भण्डारी ; पृष्ठ 44
2. हिन्दी गद्य के निर्माता बालकृष्ण भट्ट डा.राजेन्द्रकुमार शर्मा ; पृष्ठ 263

और यह परिचय शादी में परिणत होता है । जोशी के साथ उसकी शादी का निर्णय वैवाहिक जीवन बिताने की ललक की अपेक्षा अपने स्वत्व को बनाये रखने केलिए है । "नहीं, अजय से कुछ पा न सकने का दंश शायद इस बात का है कि किसी और ने अजय से वह सब कुछ क्यों पाया, जो उसका प्राप्य था या कि इस बात का था कि वह सब कुछ तोड़कर निकलती और अजय अलग उस केलिए दुखी होता, छटपटाता, साथ नहीं रह सकते थे, इसलिए साथ नहीं रह रहे हैं । स्थिति तब भी वैसी ही रहती, पर फिर भी कितना कुछ बदल गया होता यदि अजय के साथ मीरा न होती, बल्कि उसके अपने साथ कोई होता सच पूछा जाय तो अजय के साथ न रह जाने का दंश नहीं है, यह वरन् अजय को हरा न पाने की चुभन है यह, जो उसे उठते-बैठते सालती रहती है ।"[1] शकुन केलिए दूसरी शादी कोई समस्या नहीं रही क्योंकि शकुन सुशिक्षित और ऊँचे पद पर प्रतिष्ठित महिला है । लेकिन आज के समाज की सभी पति-परित्यक्ता स्त्रियों की दूसरी शादी इतनी आसानी से नहीं होती । अगर स्त्री आर्थिक दृष्टि से सुसम्पन्न है, प्रतिष्ठित है, जैसे शकुन है, तो वह अपना पथ ढूँढ़ निकाल सकती है । लेकिन यह सवाल बना रहता है । स्त्री के पक्ष में यह मुख्य है । अधिकार का सवाल अणु परिवार की सबसे ज्वलन्त समस्या है ।

परिवार में विशेषकर अणु परिवार में स्त्री-पुरुष - पति-पत्नी - के आपसी सम्बन्ध का जितना महत्व है उसका आधार उनकी आपसी स्वतन्त्रता से भी है । स्वतन्त्रता जीवन के किसी एक क्षेत्र तक सीमित नहीं है । "उखड़े हुए लोग" उपन्यास में रचयिता राजेन्द्र यादव ने पति-पत्नी के रिश्ते तथा नयी स्वतन्त्रता खासकर स्त्री की नौकरी की स्वतन्त्रता का उल्लेख करते हुए उपन्यास में लिखा है - "आज संघर्ष, जीवित रहने का संघर्ष इतना तेज़ है कि आदमी खुद अकेला जीवित रह ले यही काफ़ी है । आधी दुनिया की वह कहाँ से बैठकर

---

1. आपका बण्टी मन्नु भण्डारी ; पृष्ठ 39

खिला सकता है ? और सचमुच उससे बड़ा मज़ाक हो भी क्या सकता है कि आधी दुनिया लड़े, मरे, खून बहाना शुरू करे और आधी दुनिया मज़े से घर में बैठी शृंगार करे और खाये । इस समय यदि स्त्री, पुरुष की मदद नहीं करती है तो स्त्री-पुरुष के सम्बन्धों में सचमुच बड़ा संकट उपस्थित हो जाएगा । पुरुष यह मानता है कि स्त्री अपने जीवन की सहभागी है, पुरुष अकेले आज परिवार का आर्थिक बोझ नहीं उठा सकता है । स्त्री भी इसमें खुशी का अनुभव करती है कि जब वह अपने पुरुष के साथ कार्यक्षेत्र में निरत हो जाती है । वह पुरुष के साथ आत्मीयता निभा सकती है ।

उपन्यास की जया स्त्री की अस्वतन्त्रता का आधुनिक सन्दर्भ में परिभाषित करती है । "जी नहीं, स्त्री घर की रानी है, उसकी दुनिया चहारदीवारी के भीतर है, इन या ऐसे ही वाक्यों को आप पुरानी संस्कृति के रद्दी तोतों केलिए छोड़ दीजिए । कैसा सुन्दर वाक्य है - घर की रानी - इसका सीधा अर्थ तो यह हुआ न, प्रमुख कार्य करनेवाला पुरुष और स्त्री केवल गति बनाये रखने केलिए "मोबिल आइल" । फ़र्क क्या रहा, कल वह बैल की तेल थी आज मोटर की "मोबिल आइल" हो गयी । लेबिल बदल गया है, उपयोग वही रहा । स्त्री को सन्तोष मिल गया - चलो बड़ी भारी भ्रान्ति कर ली ।"[1] पुरुष वर्ग का स्त्री के प्रति, स्त्री को वशीभूत रखने के चमत्कारपूर्ण भाषाई प्रयोग से स्त्री-वर्ग खुश था । इस चमत्कारपूर्ण व्यवहार के पीछे स्त्री को हमेशा केलिए गुलाम बनाये रखने की भावना निहित है । जब स्त्री ने शिक्षा अर्जित की तो वह पुरुष की स्त्री-सम्बन्धी इस परम्परागत धारणा को चुनौती देने लगी । वह आज घर की चहारदीवारी के अन्दर इन चमत्कारपूर्ण चिकनी-चुपड़ी बातों में फँसकर जीवन बिताना अपमानजनक समझती है । पुरुष के क्रूरतापूर्ण व्यवहार से समझौता करने की पिछली माने में शिक्षित स्त्री वर्ग आज तैयार नहीं है । पति-पत्नी की

---

1. उखड़े हुए लोग राजेन्द्र यादव ; पृष्ठ 22

सम-भावना को इलक शरद के शब्दों में स्पष्ट है । "किसी ऐसे रास्ते को खोज करो जहाँ दोनों के व्यक्तित्व एक दूसरे से लदे नहीं, एक दूसरे से दबे नहीं और एक दूसरे को खा न जाएँ और जब दोनों के व्यक्तित्व इतने मुक्त रहेंगे कि एक - दूसरे के बनने में, उसे मानसिक बल देने में समर्थ हो सकें, तभी तो एक का प्यार दूसरा उठाएगा और आत्मा-आत्मा का सच्चा प्यार निखर कर आएगा ।"[1] स्त्री-पुरुष में समानाधिकार की भावना को बल देने के पक्ष में शरद का विचार महत्वपूर्ण है । असली स्वतन्त्रता पति-पत्नी के समानाधिकार को जगाती है । समानाधिकार में पति-पत्नी के व्यक्तित्व मुक्त रहते हैं । एक दूसरे की भलाई और प्रगति यह अनिवार्य है ।

अणु परिवार के स्वस्थ जीवन केलिए इस प्रकार के दृष्टिकोण की सख्त ज़रूरत है । "उखड़े हुए लोग" शीर्षक उपन्यास का उपरोक्त उदाहरण किसी समझौतावादी दृष्टि का परिणाम नहीं है । वह रुग्ण मानसिकता से ऊपर उठने की भावना है । विडिरंगत: सबकुछ ठीक रहकर भी जीवन के अधिकतर पक्ष पुराने रह जाते हैं । ये विचार अणुपरिवार की स्वस्थता केलिए ही नहीं, बल्कि सामाजिक विकास केलिए भी घातक है ।

मोहन राकेश के उपन्यास "अन्धेरे बन्द कमरे" में भी अणु परिवार का परिदृश्य प्राप्त होता है।अतत में पति-पत्नी सम्बन्ध के कुछ अन्दरूनी पक्षों को लेकर औपन्यासिक वृत्त रचने का सृजनात्मक कार्य ही राकेश ने किया है । इतने पर भी परिवार के सन्दर्भ में सम्बन्ध और तनाव की काफ़ी बारीकी से उपन्यासकार ने प्रस्तुत किया है । पति-पत्नी सम्बन्ध में आये तनाव को स्त्री-पुरुष सम्बन्ध के परिप्रेक्ष्य में देखें तो अनेक प्रकार की वैचारिक टकराहट के नमूने मिल जाएँगे जो अणु परिवार की समस्याओं से सम्बधित है ।

---

1. उखड़े हुए लोग राजेन्द्र यादव ; पृष्ठ 25

"अन्धेरे बन्द कमरे" उपन्यास की नीलिमा के जीवन में हरबंस का पति के रूप में आगमन, जो अन्तरंग दृष्टि से पुरानी मान्यताओं का पुजारी है, बिलकुल स्पृहणीय नहीं है । बाहयत: हरबंस महत्वाकांक्षी है । पत्नी को आधुनिक बना देना चाहता है । वह उसे नृत्य सीखने को कहता है, उसे कलाकारों से मिलवाता है । यही नहीं शराब व सिगरेट पीने की खुली छूट भी देता है । जब वह तथाकथित ढंग से आधुनिक बन जाती है, तो हरबंस चाहने लगता है कि वह घर के बन्द कमरों में बैठे और गृहस्थिन बन जाएँ जो कि नीलिमा के लिए अब असंभव है । नीलिमा अनुभव करती है कि यह उसके अधिकार और स्वतन्त्रता के लिए बाधक है, अपने विकास के मार्ग की रुकावट है । नीलिमा स्पष्ट कह देती है - "यह महत्वाकांक्षा मेरे मन में तुम्हीं ने जगायी है । मैं इस रास्ते पर इतना बढ़ आयी हूँ कि अब मैं लौट कर उस तरह की गृहस्थिन नहीं बन सकती जैसी कि तुम मुझे देखना चाहते हो ।"[1] पुरुष इतना स्वार्थी है कि वह अपने अधिकार की सीमा के बाहर अपनी पत्नी को जाने की अनुमति नहीं देता । यह एक सामन्तीय विचार है । पर उपन्यास की नीलिमा इसका विरोध करती है ।

आज की शिक्षित स्त्री अपने अस्तित्व को बनाये रखना चाहती है । पुराने सामन्तीय विचारों को खोखला समझती है । पुरानी स्त्री जो केवल भोग्या थी, केवल "चीज़" थी, आज वह उसकी अस्वीकृति करती है । नीलिमा के विचार में - "मैं अब उसकी भूख का सामान बन कर नहीं रहना चाहती । उसने आज तक यह नहीं समझा कि मैं एक चीज़ नहीं एक इन्सान हूँ, और मेरी भी अपनी ज़रूरतें हैं ।"[2] नीलिमा अपने पति से समान अधिकार चाहती है । समाज के जिन सामन्तीय विचारों का नीलिमा विरोध करती है उनमें समानाधिकार की प्राप्ति केलिए स्त्री वर्ग से लड़ाई का आह्वान है । नीलिमा समाज

---

1. अन्धेरे बन्द कमरे मोहन राकेश; पृष्ठ 211
2. वही ; पृष्ठ 467

में अपने पति के समान पत्नी की प्रतिष्ठा चाहती है । वह नृत्य में पारंगत होने को इच्छुक है । अपनी आत्मोपलब्धि और स्वतन्त्र अस्तित्व केलिए संघर्षशील है । पति के विचारों से सहमत न होते हुए भी वह इसी निष्कर्ष पर पहुँचती है कि "हम लोग साथ-साथ नहीं रह सकते । हम लोगों की ज़िन्दगी की ज़रूरतें बिलकुल अलग हैं -हम तो पति-पत्नी हैं, परन्तु पति-पत्नी में जो चीज़ होती है जो चीज़ होनी चाहिए, वह हममें कब की समाप्त हो चुकी है । वह चीज़ कभी थी ही नहीं ।"[1] पति-पत्नी के सुखी पारिवारिक जीवन हेतु जिन ज़रूरी चीजों की आवश्यकताएँ होती हैं, पति-पत्नी की बाहरी और भीतरी तनाव, कुण्ठा, वितृष्णा के कारण इनको प्राप्ति नहीं होती है । ये चीज़ें पति की अधिकार भावना से नष्टप्राय हो गयी हैं । पत्नी के प्रति तिरस्कार भाव से मृतप्राय हो गयी है । हरबंस, नीलिमा को आधुनिक बना लेने के पक्षपाती तो है । बाहरी दृष्टि से देखने पर इस निष्कर्ष पर पाठक आएँगे कि हरबंस अपनी पत्नी नीलिमा को अपने समकक्ष प्रतिष्ठित करने में उत्सुक है । लेकिन अन्तरंगत: यह स्पष्ट हो जाएगा कि इस प्रक्रिया के पीछे हरबंस का स्वार्थ ही कार्य कर रहा है । नीलिमा के आधुनिक बनने पर हरबंस को यह स्वार्थ भावना स्पष्ट होती है । हरबंस नीलिमा की आधुनिकता से नाखुश ही नहीं बल्कि नाराज़ भी है । हरबंस की संकुचित धारणा यह है कि अपनी चंगुल से पत्नी फिसल जाएगी, नीलिमा हमेशा केलिए अपने से अलग हो जाएगी । यही वह पुराना सामन्तीय विचार है जिसके प्रति असन्तोष नीलिमा ने प्रकट किया है । हरबंस यों सोचता है कि पत्नी को अधिकार मिलने से वह अपना तिरस्कार करेगी । लेकिन असलियत यह है कि स्त्री की शिक्षित और संस्कृति सम्पन्न होने से वह परिस्थितियों से समझौता कर सकती है जिसका परिणाम यह स्वस्थता ही होगी ।

हरबंस, जो समानाधिकार का निषेध करता है उसका स्पष्ट संकेत नीलिमा को इन बातों में है । "एक तो मैं तुम्हारेलिए कमा कर लाती हूँ -

---

1. अन्धेरे बन्द कमरे मोहन राकेश; पृष्ठ 422

दूसरे घर में नौकरानी का सारा कार्य करती हूँ । उस पर तुम्हें यह करने का हौसला पड़ता है कि मैं हो तुम्हारेलिये सिरदर्द पैदा कर रही हूँ ।"[1] आधुनिक परिवार में पुरुष के समान स्त्री भी समाज व्यक्ति है । पुरुषों को अपेक्षा स्त्रियाँ काम अधिक करती हैं । उसे बाहर नौकरी करनी पड़ती है जिसके पीछे आर्थिक आवश्यकताएँ हैं । काम करना याने कार्यक्षेत्र में उतरना भले ही आर्थिक मज़बूरियों के कारण हो, फिर भी स्त्री के कार्यक्षेत्र में उतरने से उसका व्यक्तित्व भी विकसित होने लगता है । अणु परिवार में दोनों के व्यक्तित्व के विकास पर बल है । समभावना के विषय का यह नतीजा है । लेकिन यह आरोपित नहीं । अत: स्त्री जब कार्यक्षेत्र में रहती है तो वह परिवार से हटती नहीं । वह परिवार से अलग भी नहीं होती है । बस उसके क्षितिज विकसित होने लगते हैं । उसके विकसित होते क्षितिज के प्रति पति का दृष्टिकोण आधुनिक होना अनिवार्य है । वह स्वस्थ भी होता है । "अन्धेरे बन्द कमरे" में दाम्पत्य जीवन में स्वस्थता का अभाव है जिसे अणु परिवार की ज्वलन्त समस्या के रूप में निर्दिष्ट किया जा सकता है । विवाहित जीवन की परिधि में अनुभव किये जाने वाले अजनबीपन को प्रस्तुत करना इस उपन्यास का उद्देश्य है । नेमिचन्द जैन कहते हैं - "मोहन राकेश ने एक ऐसी स्थिति को उठाया है जिसमें तीव्र-से-तीव्र और गहन-से-गहन वैयक्तिक तथा सामूहिक, कलात्मक और सामाजिक अन्तर्द्वन्द्व की विस्फोटक भावसंधान की सम्भावनाएँ हैं और इन संभावनाओं की ओर उन्मुक्तता ही इस उपन्यास की सबसे बड़ा आकर्षण है ।"[2]

राजेन्द्र यादव और मन्नु भण्डारी के सम्मिलित प्रयास से संरचित "एक इंच मुस्कान" नामक उपन्यास अणु परिवार की अहम समस्या से सम्बन्धित है । इसमें पुरुष पात्र के दो प्रकार के सम्बन्ध दिखाये गये हैं, पत्नी रंजना और

---

1. अन्धेरे बन्द कमरे मोहन राकेश; पृष्ठ 217-18
2. आधुनिक हिन्दी उपन्यास और अजनबीपन : डॉ. विद्याशंकर राय; पृष्ठ 97

प्रेमिका अमला के साथ का सम्बन्ध । दोनों में पुरुष अपना अधिकार जताता है । पत्नी पर पति के रूप में, प्रेमिका पर प्रेमी के रूप में । सम्बन्धों का यह विस्तार असली सम्बन्ध में तनाव उत्पन्न करता है जो अणु परिवार संकल्पना में दरारें पैदा करता है ।

"एक इंच मुस्कान" उपन्यास का नायक अमर कलाकार है । वैवाहिक और पारिवारिक जीवन के प्रति उसे घृणा है । अत: वह अपनी पत्नी रंजना को व्यक्ति मानने से इनकार करता है । वैवाहिक और पारिवारिक जीवन से उसे इसलिए घृणा है कि उसे उसमें उसको अनेक ज़िम्मेदारियाँ हैं जिन्हें पूरी निष्ठा से निभाना है, यह एक कलाकार के साहित्यिक जीवन केलिए बाधक और घातक है । उसके जीवन में दो स्त्रियाँ आ जाती हैं - रंजना और अमला । एक ओर रंजना आदर्श भारतीय परम्परा के मूल्यों की प्रेमी है तो दूसरी ओर अमला इन मूल्यों के तिरस्कार की । अमला पति-परित्यक्ता है । वह जीवन को मात्र आनन्द का साधन मानती है । जो भी हो, अमर का विवाह रंजना से हो जाता है, साथ ही अमला के साथ के सम्बन्ध को अमर ज़ारी भी रखता है । इस पर रंजना कुण्ठित है । अपने पति का अमला के साथ जो अवैध सम्बन्ध है वह रंजना बर्दाश्त नहीं कर पाती है । रंजना की इस मानसिकता के प्रति अमर की कोई प्रतिक्रिया नहीं है । अपनी पत्नी के पत्नीत्व का वह जान-बूझ कर तिरस्कार करता है । पत्नी को अपने समकक्ष मानने में वह तैयार नहीं है । अमर और रंजना के पारिवारिक जीवन में आर्थिक विषमता तो है, फलस्वरूप रंजना नौकरी पर जाती है । नौकरी करने केलिए पति मज़बूर करता है । वह अपनी पत्नी को पैसा कमाने का एक यन्त्र मात्र मानता है । यन्त्र से मतलब मात्र वस्तु से है । अगर वह अपनी पत्नी को वस्तु के बदले व्यक्ति मान लेता तो, उसे भी व्यक्ति के अनुरूप अधिकार मिलता । लेकिन अमर इन अधिकारों का निषेध करता है । रंजना को इन बातों से अमर की अधिकार-निषेध-भावना स्पष्ट है । "आपके भीतर वही पुराना सामन्तीय पति ज़िन्दा है

आप चाहते हैं कि पत्नी नौकरी तो करे ही, साथ ही साथ घर की देख-भाल करे, फिर पति की पूरी-पूरी सेवा भी करे, उसका चौका-चूल्हा करे, हाथ-पाँव दबाये । पति को सारी छूटें हैं - वह दुनिया भर की खुराफातें करें, मटर-गश्ती करें, दोस्तों में घूमें और अपने घर पर चाहे जितना खर्च करें ।"[1] रंजना में आक्रोश तो है, पर वह निष्क्रिय है ।

रंजना अपने पति अमर को ज्यों ही पतिपरित्यक्ता अमला की ओर अनुरक्त देखती है त्यों ही अनासक्ति भाव से वह उससे विलगित होकर दूसरे शहर में नौकरी करने लगती है । आरोपित एवं बेईमान सम्बन्धों को तिलांजलि देते हुए उसका कथन है - "स्त्री-पुरुष के मध्य मित्र का कोई सम्बन्ध नहीं होता है ।"[2] रंजना के मन में प्रतीक्षित समानाधिकार के निषेध से निराशा उत्पन्न होती है । रंजना का विचार है कि पारिवारिक सम्बन्ध मित्र-सम्बन्ध से कहीं बढ़कर है, कहीं भिन्न भी है । रंजना की आकांक्षा के विरुद्ध जब घटनाएँ घटित होती है तो रंजना पति अमर से स्वतन्त्र होती है । वह मान लेती है कि पति-पत्नी के बीच मित्र जैसा सम्बन्ध स्वीकृत नहीं है । मित्र जैसा सम्बन्ध पारिवारिक जीवन के बाहर भी सम्भव है । पारिवारिक सम्बन्ध तो समाज गठन केलिए अवश्यक व्यवस्था है ।

पारिवारिक समस्याओं के कारण अमला का पारिवारिक जीवन भी टूट गया था । अमला अब स्वतन्त्र है । उसकेलिए दूसरे विवाह की चर्चा हो रही थी । लेकिन दूसरे विवाह केलिए वह तैयार नहीं । वैवाहिक जीवन के कटु अनुभवों से विषाक्त अमला का मन दूसरा विवाह करने को तैयार नहीं है । "मैं इतनी निर्बल और निरीह नहीं हूँ कि जीवन बिताने केलिए कोई सहारा चाहिए।"[3]

---

1. एक इंच मुस्कान मन्नु भण्डारी और राजेन्द्र यादव ; पृष्ठ 190
2. वही ; पृष्ठ 221
3. वही ; पृष्ठ 111

पारिवारिक जीवन में पति और पत्नी समान अधिकारी है । लेकिन प्राय: यह होता है कि विवाह के पहले स्त्री को जो अधिकार समाज और परिवार से प्राप्त है वह विवाह के बाद नष्ट हो जाता है और परिवार में बिलकुल गुलामी का जीवन बिताना पड़ता है । अमला आधुनिक शिक्षित स्त्री का प्रतिनिधित्व करती है जो अबला और निरीह नहीं है । साधारण मान्यता यह है कि स्त्री अबला है । वह समाज में अकेली रह नहीं सकती । स्त्रियों के लिए ऐसी एक सामाजिक व्यवस्था बनायी गयी है कि स्त्री हमेशा पुरुषों के आश्रय में रहे - पुरुष चाहे पिता हो, पति हो या भाई हो । इसी अवधारणा से पुरुष वर्ग फायदा उठाता है ।

परिवार में पति और पत्नी के अपने अधिकार हैं और अपनी स्वतन्त्रता है जो परिवार के ठोस संचालन केलिए आवश्यक है । पति-पत्नी के अधिकार सम्बन्धी मान्यता में सन्तुलन के खो जाने पर पारिवारिक जीवन डाँवाडोल होने लगता है । भारतीय संस्कृति के अनुसार पति का अन्य किसी स्त्री से सम्बन्ध रखना पत्नी केलिए अपने अधिकार के प्रति ललकार है, यह पति-पत्नी सम्बन्धी समझौते का तिरस्कार है ।

इस उपन्यास में अणु परिवार में व्यक्तित्व विकास एवं स्वतन्त्रता को अलग-अलग कोणों से देखा गया है । जब व्यक्तित्व विकास में बाधाएँ उत्पन्न होती है तो अणु परिवार का सन्तुलन हिलने लगता है । लेकिन अमला के माध्यम से स्वतन्त्रता की जो मान्यता प्रकट हुई है वह अणु परिवार के बाहर की बात है । उनकी मान्यताओं में स्वतन्त्रता सम्बन्धी स्थापनाओं के बावजूद दूसरों के जीवन में हस्तक्षेप डालने बात भी है जो कदाचित् स्पृहणीय नहीं है ।

एक साधारण क्लर्क के रूप में भीष्म साहनी के "कड़ियाँ" उपन्यास का मध्यवर्गीय महेन्द्र नौकरी में भर्ती हो जाता है । शादी एक साधारण ग्रामीण

स्त्री प्रमिला के साथ हुई थी । उसके पारिवारिक जीवन में किसी भी प्रकार की खींचातानी, तनाव, कुण्ठा का वातावरण नहीं है । पत्नी प्रमिला पति-परायण स्त्री है । पति को परमेश्वर मानने वाली परम्परागत मान्यता की समर्थक था ।

लेकिन पति-पत्नी के सम्बन्ध में एकाएक परिवर्तन होता है । महेन्द्र की पदोन्नति होती है । वह क्लर्क से अफसर बन जाता है । आर्थिक स्थिति भी सुधर जाती है । अपने जीवन में आये परिवर्तन के अनुसार पत्नी को बदल न पाने से महेन्द्र का अफसरी-मन कुण्ठित होता है । उसे पत्नी इतनी सामान्य लगती है उसका स्नेह कम होने लगता है । घर के अन्दर ही रह कर प्रमिला बैल की तरह अधिक परिश्रम करती रहती है, पति-परमेश्वर की सेवा में निरत रहती है । इसी को वह अपना धर्म मानती है । "क्लर्की के जमाने की पत्नी के रूप में प्रमिला ठीक थी, लेकिन इस पोज़ीशन के अनुरूप वह नहीं थी । वह इस सोसाइटी के अनुकूल नहीं बनी थी प्रमिला के कट्टरपंथी विचार अन्त तक नहीं टूटे थे और वही पिछड़कर पीछे रह गयी थी ।"[1] वस्तुत: प्रमिला पूरी तरह से घरेलू महिला है जो अपने घर को ही पूरा संसार समझती है । महेन्द्र उसके घरेलूपन से ऊब जाता है । प्रमिला के संस्कारों ने उसे अपने को घर से बाहर देखने ही नहीं दिया ।

महेन्द्र अपने दफ़्तर की सुषमा से सम्बन्ध स्थापित करता है, जो उसकी दृष्टि में आधुनिक है । लेकिन बाद में महेन्द्र को लगा कि वह अपनी पत्नी के प्रति छल है । अपने संस्कार की अवहेलना है । इसलिए महेन्द्र सारी बातें अपनी पत्नी को बताकर माफ़ी माँगने का निश्चय करता है । "हमारे दफ़्तर में एक लड़की है । वह मुझ पर डोरे डालती रही है, और मैं मैं उससे

---

1. कड़ियाँ भीष्म साहिनी; पृष्ठ 184

मिलता रहा हूँ ।"[1] लेकिन महेन्द्र को इस स्वीकृति से पति-पत्नी के बीच तूफ़ान आ जाता है । प्रमिला कहती है - "मैं समझे बैठी थी तुम शरीफ़ आदमी हो, बच्चों के हक अच्छे हैं, मेरे हक में भी अच्छे हो । मैं सतवन्त से भी कहा करती थी कि तुम अच्छे आदमी हो, बड़बा बोलते हो, पर हो अच्छे आदमी । आजकल कुछ पता नहीं चलता, कौन अच्छा है, कौन बुरा ।"[2]

पति-पत्नी समानता सम्बन्धी जो मूल तत्व है वह आपसी विश्वास है । प्रमिला और महेन्द्र दोनों आपसी विश्वास का संरक्षण करते हैं । लेकिन जब महेन्द्र महत्वाकांक्षा वश गलत कर बैठता है और बाद में पछताता है । उस से मुक्ति पाने की चाह से अपनी पत्नी के सामने सारी बातें सच-सच बताता भी है । परन्तु उसकी पत्नी इस बात को स्वीकारने केलिए तैयार नहीं होती । उसका अपने पति के प्रति विश्वास टूट जाता है । पति-पत्नी दोनों हृदय से अलग हो जाते हैं । स्पष्ट शब्दों में महेन्द्र प्रमिला से कह देता है - "मैं तुम्हारे साथ नहीं रह सकता, यह शादी भूल थी । मैं ने फैसला कर लिया है ।"[3] महेन्द्र सामाजिक रीति-नीति के आधार पर अपनी पत्नी को त्यागने का निर्णय लेता है । पति-पत्नी के अलग होने की बात पर मात्र पति ही निर्णय लेने के अधिकार का इस्तेमाल करता है, इस निर्णय पर पत्नी के निर्णय का कोई महत्व नहीं । असल में यह पुरुषप्रधान समाज का स्त्रियों के प्रति क्रूरतापूर्ण व्यवहार का मिसाल ही है ।

भारतीय पारिवारिक परिवेश की पृष्ठभूमि में खड़े होकर प्रमिला सोचती है कि पति के अलग हो जाने पर अपने बच्चों का भविष्य अन्धकारपूर्ण हो जाएगा । उनके जीवन में अनेक प्रकार की समस्याएँ पैदा हो जाएंगी ।

---

1. कड़ियाँ भीष्म साहिनी ; पृष्ठ 35
2. वही ; पृष्ठ 36
3. वही ; पृष्ठ 61

स्त्री को अपना अधिकार जमाने केलिए पति से अलग रहने की मज़बूरी है । वह सोचती है - "उसके साथ रहने को मेरा मन नहीं करता है । हाँ कभी-कभी यह मन में आता है कि बच्चे बड़े होंगे तो क्या कहेंगे, हमारा बाप था भी, फिर भी हम अनाथों की तरह पले हैं । वे यह तो नहीं सोचेंगे कि हमारे साथ क्या बात हुई थी । क्या मालूम ये मुझे ही दोष देने लगे । पर अब मैं उसके पीछे मारी-मारी तो नहीं फिरूँगी । बहुत हो गया ।"[1] स्पष्ट है कि हिन्दी उपन्यासकार शिशु-मानस के मनोवैज्ञानिक अध्ययन की ओर उदासीन नहीं रहे हैं । उन्होंने बच्चे के व्यक्तित्व विकास केलिए परिवार को ही उत्तरदायी साबित किया है । पारिवारिक वातावरण जहाँ बच्चे को सुयोग्य नागरिक बना सकता है, वहीं भ्रान्तिकारी और व्यवस्था विरोधी भी । हिन्दी उपन्यासों में बाल-मनोविज्ञान से सम्बन्धित ऐसे स्फुट संकेत प्राय: प्राप्त हो जाते हैं । डॉ.देवराज के मतानुसार "मनोविश्लेषणवादियों ने शिशु-मानस और अवचेतन प्रदेश के जिस विराट स्वरूप का उद्घाटन किया, वहहिन्दी साहित्य के कथाकारों की सृजन-प्रतिभा को छूकर जागृत कर सका ।"[2] मनोविश्लेषणवादी उपन्यासकारों ने यह स्थापित किया है कि परिवार में शिशु-संरक्षण का कार्य अत्यन्त गंभीर है । थोड़ी ही असावधानी हो जाने से बालक का व्यक्तित्व बिगड़ सकता है, अत: माता-पिता को इस ओर आरम्भ से ही सचेष्ट रहना चाहिए । अपने पति के छोड़ जाने की अवस्था पर अपने पुत्र के पथभ्रष्ट होने की आशंका प्रमिला को कचोटती है ।

प्रमिला के आत्मविश्वास को देख कर अपनी पड़ोसिन दोस्त सतवन्त को लगा कि - "जैसे उसकी सहेली दम लेने केलिए किसी पड़ाव पर रुकी है, उसे बहुत दूर जाना है, पर सतवन्त को विश्वास था कि वह चल पाएगी, अपने पैरों पर चलती हुई बहुत सी मंजिलें काट डालेगी ।"[3]

---

1. कड़ियाँ भीष्म साहनी ; पृष्ठ 229
2. आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य और मनोविज्ञान डॉ.देवराज उपाध्याय ; 162
3. कड़ियाँ भीष्म साहनी ; पृष्ठ 232

यह स्पष्ट है कि नये समाज की स्त्री चाहे वह पुराने विचार वाली हो, फिर भी पति की गुलाम बनकर, उसके पाँव की जूती बनकर रहना कभी पसन्द नहीं करती । प्रमिला को मात्र एक कमी थी - आर्थिक स्वावलम्बन की । इसका भी हल हो जाता है तो वह आत्मनिर्भरता का अनुभव करती है । प्रमिला आधुनिक पति-परित्यक्ता स्त्री का एक नमूना है । वह यह साबित करती है कि पुरुष के बिना भी समाज में स्त्री जीवन बिता सकती है ।

इन विवेच्य उपन्यासों में आधुनिक अणु परिवार की अनेक समस्याएँ कथाविन्यास के बीच प्राप्त होती हैं ।

1. आपसी सम्बन्धों में अयाचित बातों में उलझन
2. स्त्री के स्वत्व बोध का निषेध
3. पुरुष की अनियन्त्रित अधिकार-भावना
4. समस्या की समान्तर स्थिति और उसकी बढ़त

इन सबसे बढ़कर सभ्यता की गिरावट का एक सशक्त पक्ष आपसी सम्बन्धों के तनाव में दृष्टिगत होता है । वस्तुत: अणु परिवार के सम्बन्धों के तनाव को इसी दृष्टि से देखना चाहिए ।

अणु परिवार में आर्थिक समस्याओं का अंकन

आर्थिक समस्या हर क्षेत्र को त्रस्त और अव्यवस्थित कर देती है । परिवार के स्वस्थ जीवन कोलिए भी आर्थिक सन्तुलन की आवश्यकता है । आर्थिक समस्या का सम्बन्ध मात्र अर्थाभाव से उत्पन्न व्यावहारिक समस्याओं से नहीं है । उसका सम्बन्ध अर्थकेन्द्रित मूल्यों से भी है । परिवार का सम्बन्ध जब अधिकाधिक अर्थ केन्द्रित हो जाता है तो उसका अर्थ है मूल्यों का अर्थकेन्द्रित हो जाना । अणु परिवार मे मूल्य परिवर्तन का यह पक्ष बहुत स्पष्ट होता है और उसका प्रभाव गहरा भी होता है ।

"समुद्र में खोया हुआ आदमी" शीर्षक उपन्यास में अर्थकेन्द्रित समस्या को उजागर किया गया है । पिता श्यामलाल पुरुष प्रधान सामन्तीय विचार वाले समाज का प्रतिनिधि है जो सारा अधिकार अपने पास ही रखना चाहते हैं । पर बदकिस्मती से श्यामलाल की आर्थिक स्थिति ठीक नहीं है । उसके बड़े बेटे तारा में यह शंकित आ जाती है । अपनी मज़बूरियों के कारण तारा को नौकरी करनी पड़ती है । यद्यपि उसकी कमाई बहुत कम थी तो भी इसी कमाई के आगे सामन्तीय विचारवाले पिता को झुकना पड़ा । इससे पिता श्यामलाल अधिक कुण्ठित है । पर वे कुछ बोल नहीं पाते । वे महसूस करते हैं कि परिवार में अपना महत्व घट रहा है । लेकिन जब अपने बेटे बोरन की आमदनी अपने हाथों में पहुँचने लगती है तो श्यामलाल की पुरानी सामन्तीय भावना फिर जाग उठने लगती है । अब वे पहले जैसे जीवन बिताने की आकांक्षी बन जाते हैं किन्तु जब अकस्मात् अपने पुत्र की मृत्यु का समाचार पाता है तो उनकी आकांक्षाओं पर पानी फिर जाता है । "श्यामलाल को लगता है कि वह सिर्फ फालतू चीज़ की तरह रह गया है, जिसे फेंका नहीं जा सकता सिर्फ़ बर्दाश्त किया जा सकता है । जिसे सहा भी नहीं जाता सिर्फ़ होने को महसूस किया जाता है ।"[1] यह विदित बात है कि धन के साथ अधिकार सम्मिलित है । आर्थिक विषमता के कारण श्यामलाल के निर्णय लेने का अधिकार नष्ट हो जाता है । तारा के व्यवहार में कमाऊ व्यक्ति का यही भाव दिखायी देता है ।

"अन्धेरे बन्द कमरे" में भी अणुपरिवार के सहज तनाव का चित्रण है । पर इसको प्रोत्साहित करने वाला घटक अर्थ है । दिल्ली कलानिकेतन ने नीलिमा के नृत्य का आयोजन कर लिया । भोजन-पार्टी में प्रमुख व्यक्ति आये । हरबंस नृत्य के पक्ष में नहीं था, पर नीलिमा उत्साहित थी । हरबंस टिकट बेचने के हक में नहीं रहा, बाद में तैयार हुआ और टिकटें बेचने में जुट गया । परन्तु हरबंस काफ़ी कुढ़ता रहता है

---

1. समुद्र में खोया हुआ आदमी कमलेश्वर ; पृष्ठ 8

नीलिमा का नृत्य प्रथम श्रेणी का रहे यह हरबंस की उत्कट कामना है । चौंतीस वर्षीय नीलिमा घर में बैठी रहना नहीं चाहती है । नीलिमा के भरत-नाट्यम नृत्य के उपलक्ष्य में पत्रकार एवं विशिष्ठ व्यक्तियों के लिए प्रीतिभोज का कार्यक्रम रखा गया । इस बात को भी हरबंस और नीलिमा एकमत नहीं है । इसलिए मानसिक टकराव और खिंचाव में रहने के कारण छोटी-मोटी बातों में भी दोनों चिल्लाकर बोलने लगे । क्योंकि "चिल्ला कर ही अपना मन हल्का कर सकते थे "[1] हरबंस की तनावपूर्ण स्थिति देखकर नीलिमा नींद की गोली की बात करती है तो हरबंस का कहना है - "अच्छी नींद अब शायद मुझे ज़िन्दगी भर में कभी नहीं आएगी ।"[2]

नीलिमा के लन्दन पहुँचने पर हरबंस संशय की अन्धेरी गुफाओं में भटकने लगता है । जीवन को नये सिरे से आरम्भ करने की बात तो वह जैसे भूल ही गया है । अब तो वह नीलिमा के किसी भी कार्य-कलाप को सहन नहीं कर पाता है । नीलिमा का नृत्य प्रदर्शन के लिए घूमना भी उसे पसन्द नहीं । लेकिन जिस गरीबी की हालत में वे लोग लन्दन में जी रहे हैं, वह भी तो स्पृहणीय नहीं है । नृत्य-प्रदर्शन के लिए हरबंस की अनुमति न मिलने पर नीलिमा कहती है - "मैं दो साल तक और छह महीने भरतनाट्यम का अभ्यास इसलिए नहीं करती रही कि मैं अंग्रेज़ बच्चों को जाँघिये और निक्करें पहनाया करूँ । अगर तुम मुझे जाने से ज़बरदस्ती रोकोगे तो मैं तुमसे कह देती हूँ कि मैं वैसे ही चली जाऊँगी और कभी तुम्हारे पास लौटकर नहीं आऊँगी ।"[3]

नीलिमा और हरबंस के अभिशप्त जीवन में मानवीय सम्बन्धों के ह्रास होने से वे यातनापूर्ण जीवन जी रहे हैं । पति लेखक बनना चाहता है और पत्नी

---

1. अन्धेरे बन्द कमरे मोहन राकेश ; पृष्ठ 382
2. वही ; पृष्ठ 406
3. वही ; पृष्ठ 204

सुप्रतिद्ध नृत्यांगना । लेकिन ऊष्मा को खोकर वे मात्र स्त्री-पुरुष रह गये हैं । परिणामस्वरूप सुरुचि, कोमलता, अनुभूति को खोकर दोनों हो विवशतापूर्ण जीवन जो रहे हैं । सब के मूल में आर्थिक पक्ष हो प्रमुख है ।

महानगरीय परिवेश में अर्थ हो महत्वपूर्ण वस्तु है । इसके अभाव से जीवन दूभर हो जाता है । नीलिमा और हरबंस के परिवार में यहो होता है । यह सहो है कि उन दोनों का प्रेम-विवाह था । विवाह के बाद हो उनके जीवन में समस्याएँ उठतो हैं । इन समस्याओं के मूल में अर्थ हो है । पुरातनता को छोड़ने तथा नवोनता को पाने की छटपटाहट तो उनके जीवन में है । लेकिन इसको प्राप्ति में समस्याएँ सामने आतो है । इन समस्याओं के हल केलिए तो वे कठिन परिश्रम करते हैं । लेकिन यहो होता है कि वे इन समस्याओं के हल के लिए जितने परिश्रम करते हैं, उतने अधिक उन समस्याओं में फँस जाते हैं । अपने परिवार के आर्थिक सुधार केलिए तो वे कोशिश करते हैं । उनको शादो के बाद नीलिमा को नृत्य सिखाने का यत्न इसका उत्तम दृष्टान्त है । इसमें वे दोनों विजयी भो होते हैं । परन्तु हरबंस अपने पुराने संस्कारों को जकड़ से बाहर आने को तैयार नहीं है । दूसरो ओर आधुनिकता का आह्वान भो है । हरबंस अर्थ का आकांक्षो तो है लेकिन नीलिमा के अपने अधिकार सीमा से बाहर निकलने को शंका जब हरबंस में पैदा होतो है तब वह अपनो पत्नो नीलिमा को आज़ादो में रुकावट पैदा करता है । डॉ॰बेचन के शब्दों में - "अन्धेरे बन्द कमरे" को कथा दिल्लो के नागरिक जीवन को व्यस्तता के बीच उभरते हुए खण्डित व्यक्तित्व को कथा कथा है । आज का नागरिक जीवन जो बाह्य रूप में आकर्षण तथा चटक-मटक से पूर्ण है - भोतर से एक मौन कोलाहल से पूर्ण है - जो मन को विषमता का बोधक माना जा सकता है ।"[1] पारिवारिक जीवन में आर्थिक सुस्थिरता का महत्वपूर्ण योग है । आर्थिक स्वावलम्बन या समानाधिकार को प्राप्ति से हो स्त्रो समाज का अंग बन सकती है ।

1॰ आधुनिक हिन्दो उपन्यास - उद्भव और विकास डा॰बेचन ; पृष्ठ 262

यह तो सही है कि समाज में जीवन बिताने के हेतु धन की सख्त ज़रूरत है । समाज तथा परिवार से अलग रहने वाले व्यक्ति को आर्थिक विषमता का कटु अनुभव महसूस होता है । शरद और जया के जीवन पर इसका असर पड़ता है । उनको मालूम हो गया कि समाज में अपने अस्तित्व को पहचान को सुरक्षित बनाये रखने के हेतु प्रत्येक व्यक्ति को पुरानी और नयी व्यवस्थाओं से द्वन्द्व करना पड़ता है । शरद और जया समाज की इस द्वन्द्वात्मक स्थिति का अनुभव करते हैं । आर्थिक कठिनाई के कारण शरद को जीवन संघर्ष में मज़बूरन परिस्थितियों से समझौता करना पड़ा है । शरद के मत में, "वास्तविकता तो यह है कि हम सब टूटे हुए व्यक्तित्व के लोग हैं । हमारे स्वाभाविक गठन और व्यक्तित्व को कुछ इस तरह मरोड़ दिया गया है, जैसे गीली मिट्टी से बनी सुन्दर मूर्ति को कोई अत्यन्त निर्दयता से मरोड़ डाले । इस तरह की कुछ हमारी सूरतें हो गयी है । हम देखते कहीं है, चलते कहीं है और वास्तविकता कुछ और है । - हर जगह समझौता करना पड़ता है, हर जगह झुकना पड़ता है, वर्ना क्या करे ? कहाँ जाएँ "[1] अणु परिवार की एक ज्वलन्त समस्या की ओर उपन्यासकार ने इशारा किया जिसके मूल में आर्थिक विषमता है । भौतिक जीवन की एक ठोस समस्या पारिवारिक वातावरण को पूरी तरह से जर्जरित करती है ।

"उसका बचपन" जो कृष्ण बलदेव वैद का उपन्यास है जिसमें बीरू के घर का विषादित वातावरण चित्रायित है । इसका एकमात्र कारण आर्थिक तंगी है । बीरू के परिवार का कोई भी व्यक्ति इस विषादित वातावरण से मुक्त नहीं । बीरू भी घर के इस विषादित वातावरण से त्रस्त है । घर का प्रत्येक सदस्य एक दूसरे पर दोषारोपण करता है, गालियाँ देता है । इस से बीरू का दम घुटता है । पारिवारिक विघटन, तनाव, बौखलाहट, बेचैनी, चीख-पुकार से पारिवारिक सम्बन्धों में जड़ता सी आती है । आपसी स्नेह सम्बन्धों में जड़ता व्यापती है ।

---

1. उखड़े हुए लोग राजेन्द्र यादव ; पृष्ठ 225-26

बोरु समझता है कि "माँ का प्यार भी सौदाइयों का-सा और गुत्था भी ।"[1] बारु की माँ आर्थिक विषमता से इतनी त्रस्त है कि अपने लाड़ले बेटे की परवरिश करने की फुर्सत उसे नहीं मिलती । अगर मिलती तो भी उसे प्रकट करने का उसका मन नहीं है । अर्थ ही परिवार की मूल धुरी है । इसके अभाव में परिवार का संचालन सम्भव नहीं । इसीलिए आर्थिक तंगी में तथा तज्जन्य पारिवारिक बिखराव में फँसकर बोरु की माता त्रस्त जीवन बिताती है । वहाँ भी वह अपने परिवार को सुधारने का उपाय जुटा नहीं पाती ।

एक वक्त के भोजन केलिए भी बोरु तरसता है । परिवार के अन्य सदस्यों में मार-पीट से हमेशा तनाव बना रहता है । इस तनावपूर्ण जीवन से उस परिवार का कोई भी व्यक्ति मुक्त नहीं । संवेदनशील बोरु सोचता है - "घर मानो जंगल है, अन्धेरे में बना कोई एक मन्दिर है, जिसमें पुजारी रो रहा है और दूसरा उसे चुप करा रहा है ।"[2] बोरु का बालक-मन अपने माता-पिता तथा परिवार वालों से वात्सल्य की आकांक्षी है । लेकिन परिवार की आर्थिक स्थिति इतनी जटिल और दुरुस्त है कि कोई भी व्यक्ति अपने परिवार के प्रति स्नेही नहीं है ।

बोरु की बहन, देवी ब्याहने योग्य आयु की है । देवी अपने प्रेमी नरेश से विवाह करना चाहती है । पर माँ इस सम्बन्ध का खंडन करती है । देवी नरेश के साथ विवाह कर लाहौर भाग जाना चाहती है । फलस्वरूप एक ही छत के नीचे माँ-बेटी दोनों दुश्मन बनी रहती है । यहाँ देवी-नरेश के विवाह के प्रति माता के विरोध का कोई महत्व नहीं । क्योंकि विवाह केलिए दहेज देना है । जितनी भी कोशिश करे दहेज देकर देवी को शादी करा देना माँ केलिए दुर्गम पहाड़ ही है । यहाँ भी आर्थिक तंगी से पारिवारिक विघटन माँ-बेटी

---

1. उसका बचपन कृष्ण बलदेव वैद ; पृष्ठ 12।
2. वही ; पृष्ठ 14

के बीच हो जाता है ।

घर की आर्थिक तंगी का बुरा असर ज़रूर बीरू पर पड़ता है । बुखार की तेज़ी में यही सोच पाता है कि वह "हँसता हुआ ऊपर ही ऊपर उठता हुआ चला जाएगा और आखिर बहुत ऊँचे आसमान पर तारा बन जाएगा, जहाँ से उसे माँ न नज़र आएगी, न बाबा, न देवी, न पारो, न असलम, न हफीज़ा, न स्कूल, न मास्टर, न कुछ .... ।"[1] अत: बीरू अपने परिवेश और घर से मुक्ति चाहता है । बीरू का बाप जब कुछ बेचकर, पैसे खत्म करके घर लौट आता है, तो घर में फिर एक बार झगड़ा होता है झगड़ा इतना बढ़ जाता है कि बीरू का बाप उसकी माँ को धक्का देकर कमरे में बन्द कर देता है । बीरू का संघर्षपूर्ण मन और अधिक परेशान हो उठता है । असहाय बीरू अपनी मुक्ति के लिए रसोई में जाकर गले में रस्सी कसने लगता है और बेहोश होकर गिर पड़ता है । बीरू का बाल-मन आत्महत्या से परिचित नहीं । फिर भी उसका संवेदनशील मन इन पारिवारिक वातावरण से दूर रहना ज़रूर चाहता है । अपनी माता की दयनीय स्थिति पर बीरू दुखी है । अपनी माता को इस पतनावस्था से बचाने का इच्छुक भी है । पर वह कुछ नहीं कर पाता । अर्थाभाव से प्रत्येक का जीवन विडम्बना-पूर्ण है ।

यद्यपि इस उपन्यास का कथापरिदृश्य पूर्ण रूप से अणु परिवार के अनुरूप नहीं है फिर भी ऐसे एक परिवार को उपन्यासकार ने कथा-परिदृश्य के लिए चुना है जो अन्तत: अणु परिवार के समान हो है । सदस्यों के आपसी समझौते के अभाव में तथा आर्थिक बिखराव से उत्पन्न कठिनाइयों का दृश्य सृजित किया गया है कि परिवार की टूटन सुनिश्चित हो गया है । बिखराव यहाँ अनिवार्य हो गया है ।

---

1. उसका बचपन कृष्ण बलदेव वैद ; पृष्ठ 13।

अणु परिवार को सबसे बड़ी समस्या आर्थिक और तज्जन्य पारिवारिक जीवन विसंगतियाँ हैं । अपना स्वस्थ जीवन बनाये रखने केलिए मनुष्यों को संघर्ष करना पड़ता है । उसे धन की आवश्यकता होती है । धन प्राप्ति केलिए प्रत्येक परिवार को साधारणत: कुछ आर्थिक व्यवस्थाएँ होती हैं । इन व्यवस्थाओं के माध्यम से वह अपने परिवार की आवश्यकताओं को पूर्ति करता है । लेकिन सभी परिवार इस प्रक्रिया में सफल नहीं होते । इसलिए आर्थिक विषमताएँ उत्पन्न हो जाती है, परिणामत: पारिवारिक बिखराव होता है । आधुनिक हिन्दी उपन्यासों ने इस त्रासदी का चित्रण किया है । अणु परिवार में यह समस्या अपना उग्र रूप दिखाती है । अणु परिवार का जीवन या आकांक्षा का कोई भी फलक अस्पष्ट नहीं है । पति-पत्नी के जीवन में जब आर्थिक समस्या आ प्रभाव पड़ता है तो कई ऐसी आनुषंगिक समस्याएँ भी सिर उठाने लगती है जिन में व्यक्ति की अपनी समस्याओं से लेकर सामाजिक विसंगति के कई रूप देखने को मिलते हैं । इसलिए यह कहना उचित है कि अणु परिवार की यह समस्या वैयक्तिक जीवन तक या दो व्यक्तियों तक सीमित नहीं है ।

अणु परिवार में आर्थिक समस्याओं से उत्पन्न नैतिक ह्रास

पच्चासोत्तर दौर में लिखे गये उपन्यासों में आर्थिक अभाव का जो संकेत उपरिवत् सूचित है जिसके फलस्वरूप पति-पत्नी में तथा अन्य सदस्यों में जो तनाव उल्लेखित है उनकी प्रतिक्रियाओं का विश्लेषण करे तो पता चलेगा कि मनुष्य की मूल्यपरक गिरावट कितनी दयनीय है। यह अणु परिवारों के जीवन की विसंगति भी है ।

पारिवारिक समस्याओं के मूल में आर्थिक समस्या का फलक है । अर्थ की कमी से और अर्थ की अधिकता से परिवारों में नैतिक ह्रास सम्भव है । आधुनिक समाज में इन दोनों के फलस्वरूप नैतिक ह्रास होता है । दोनों का चित्रण आधुनिक

हिन्दी उपन्यासों में हुआ है । आधुनिक आर्थिक व्यवस्था ने परम्परागत पाप-पुण्य के अन्तर को बहुत कम कर दिया है । धर्म-अधर्म, पाप-पुण्य, नीति-अनीति का अन्तर नहीं के बराबर है । सामाजिक परिवर्तन से मानवीय विचारधारा में परिवर्तन आया, फलस्वरूप परम्परागत नैतिक धारणाओं में भी बदलाव आया । नैतिकता का आधार धर्म, पुण्य, सद्भाव हुआ करते थे, परन्तु इस वैज्ञानिक युग में नैतिकता में नये आयाम विकसित हुए । "नैतिक मूल्यों की समस्या और भी विकट इसलिए हो गयी कि प्राचीन शास्त्रीय धार्मिक अथवा ईश्वर सम्भूत धार्मिकता इस युग में क्रमशः क्षीण होती जा रही है और नैतिकता का आधार एक मानव सम्भूत नीति में खोजा जा रहा है । जो दायित्व अब तक ईश्वर या धर्म पर था, वह अब मानव ने स्वयं ओढ़ लिया है ।"[1] स्त्री-पुरुष सम्बन्धों में, अनुचित यौन सम्बन्धों एवं श्लील अश्लील के दृष्टिकोण में नैतिक रूढ़ियाँ द्रुत गति से टूटी और बिखरी है तथा नये नैतिक मूल्यों का प्रसरण हुआ है । आचरण की पवित्रता लुप्तप्राय हो गया है । दैहिक सौन्दर्य को महत्व देने लगा है । यौनाचार सम्बन्धी परम्परागत मूल्य, श्लील-अश्लील सम्बन्धी धारणाओं के मूल्य भी बदल गये हैं । इन सबको विचलित, उद्वेलित या सन्तुलित करने में अर्थ का असर अनुभव किया जा सकता है ।

हिन्दी उपन्यासों में जिनमें अणु परिवार लक्षित है, नैतिक ह्रास के पक्ष को भी महत्व दिया गया है । अर्थाभाव के कई कारण हो सकते हैं । नैतिक पतन उसका अभिन्न अंग नहीं है । मगर आधुनिक जीवन में यह भी देखने को मिलता है । "अन्धेरे बन्द कमरे" उपन्यास में हरदंस और नीलिमा का अणु परिवार आर्थिक तंगी से तनावग्रस्त है । एक के बाद एक होकर समस्याएँ उनके जीवन में बढ़ती रहती है । फलस्वरूप उन दोनों का पारिवारिक जीवन और कठिन हो जाता है । पति-पत्नी में जो मूल्यगत भावनाएँ थीं वे लुप्त होती हैं । नीलिमा अपनी

---

1. आत्मनेपद अज्ञेय; पृष्ठ 196

परिवारगत मान्यताओं को छोड़ने के पक्ष में नहीं । यही नहीं वह पारिवारिक मान्यताओं के संरक्षण के पक्ष में है । इस केलिए वह कठिन परिश्रम भी करती है । वह नृत्य का प्रदर्शन करने जाती है । नौकरी करने को तैयार हो जाती है ताकि आर्थिक पक्ष सुधर जाए । लेकिन पुरुषोचित सामन्तीय विचार का पक्षपाती हरबंस, नीलिमा की इस मानसिकता को सही अर्थ में स्वीकार नहीं कर पाता है । वह अहंवादी बन जाता है, हीन भावना का शिकार बन जाता है । हरबंस को कुछ कमी महसूस होती है । झासे छुटकारा पाना तो वह चाहता है, लेकिन सम्भव नहीं होता । वह अपनी पत्नी को त्यागना चाहता है, वह आत्महत्या करना चाहता है । संस्कारगत पुरानी मान्यताओं के शिकार बनने के कारण वह मानसिक कुण्ठा का अनुभव करता है । वह नैतिक ह्रास का शिकार बन जाता है ।

नीलिमा और हरबंस दोनों एक दूसरे से मुक्ति चाहते हैं । वास्तविकता तो यही है कि नीलिमा अपने पति से अलग होना नहीं चाहती है । लेकिन अपने पति हरबंस को सामन्तीय रूढ़ विचारों का शिकार बन कर रहना नीलिमा बर्दाश्त नहीं कर सकती । इसीलिए हरबंस को अलग रहने की इच्छा के कारण से ही नीलिमा भी अलग रहना चाहती है । हरबंस सोचता है - "हम दोनों साथ-साथ रह कर सुखी नहीं रह सकते । मगर अपने देश में रहते एक सामाजिक परिस्थिति मुझे तुम्हारे साथ रहने केलिए मज़बूर करती थी - मज़बूरी का सम्बन्ध सम्बन्ध नहीं होता ।"[1] हरबंस की सामन्तीय शंकालु प्रवृत्ति हरबंस को अपने संकुचित दायरे से बाहर नहीं जाती । हरबंस आर्थिक तंगी से मुक्ति तो चाहता है । लेकिन उसकी सामन्तीय भावना इतनी जटिल है कि वह नीलिमा को अपनी सीमा से बाहर ले लाने की अनुमति नहीं देता । सम्मिलित परिवार की अपेक्षा अणु परिवार को इन पारिवारिक समस्याओं का हल बहुत कठिन है । अणु परिवार एक बार टूटा तो वह हमेशा केलिए टूट जाता है । उचित निर्णय लेने में स्वभावत:

---

1. अन्धेरे बन्द कमरे मोहन राकेश, पृष्ठ 133

उसके सदस्य पराजित हो जाते हैं । हरबंस के पारिवारिक जीवन में भी यही होता है ।

"एक इंच मुस्कान" उपन्यास का नायक अमर साहित्यकार है जो आर्थिक तंगी से पीड़ित है । वह नैतिकता को महत्व नहीं देता है । प्रेम और विवाह उसकी दृष्टि में हेय है । सामाजिक रूप से नहीं, वैयक्तिक रूप से वह उसका विरोध करता है । विवाह से पारिवारिक बन्धन जन्म लेता है, इस बन्धन को वह बोझ समझता है । इस बोझ को उठाने केलिए वह तैयार नहीं है । "विवाह अपने आप में एक समझौता है । सोचो, विवाह केलिए नौकरी करनी होगी, बन्धी हुई निश्चित ज़िन्दगी बितानी होगी - इतनी संकीर्ण - इतनी संकीर्ण । यहसब करने का मतलब होगा अपनी हत्या करना, तुम्हारी हत्या करना - यह सब मैं नहीं कर सकूँगा ।"[1] अमर में पारिवारिक जीवन से डर है । आर्थिक तंगी इतनी अधिक है कि इन पारिवारिक आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं हो पाती है । साथ ही वह पारिवारिक जीवन की पवित्रता को नगण्य मानता आया है । वह स्वतन्त्र जीवन बिताना चाहता है । साथ ही स्त्री से शारीरिक सम्बन्ध भी रखना चाहता है । पारिवारिक जीवन सम्बन्धी नैतिक मान्यताओं का वह तिरस्कार करता है । पति परायण, नौकरीशुदा रंजना मे रहते हुए पति-परित्यक्ता धनी अमला से शारीरिक सम्बन्ध रखने लगता है । स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास में नैतिकता का नया रूप हम देखते हैं । "सामने प्रतिष्ठित सत्य एवं स्वीकृत मानदण्ड टूठे पड़ गये हैं, और न केवल समाज के प्रति वरन् स्वयं अपने प्रति {व्यक्ति} विद्रोह करने केलिए आकुल है, प्रयत्नशील है । उसकेलिए सारे सन्दर्भ अर्थहीन हो गये हैं, और नैतिक मान्यताएँ, बल्कि सारी की सारी आचार संहिताएँ खोखली एवं जर्जर पड़ गयी है । जितना ही वह {व्यक्ति} सार्थक अर्थ प्राप्त करने की चेष्टा करता है उसमें व्यर्थता का बोध गहराता जा रहा है और वह असमर्थ

1· एक इंच मुस्कान मन्नु भण्डारी और राजेन्द्र यादव ; पृष्ठ 63

होता जा रहा है ।"[1]

पति-पत्नी का जीवन मात्र सहजीवन नहीं है, मात्र शारीरिक सम्बन्ध बनाये रखने की उपाधि नहीं है, इनके परे कुछ विशिष्ठ मूल्यगत भावनाएँ भी पारिवारिक जीवन के अन्तर्गत निहित हैं । उनको निभाने में कोई पति या पत्नी पराजित हो जाय तो उनका पारिवारिक जीवन अर्थहीन हो जाता है । यहीं से नैतिक ह्रास का आरम्भ होता है ।

आर्थिक विषमता से उत्पन्न नैतिक ह्रास का परिचय "समुद्र में खोया हुआ आदमी" उपन्यास में भी मिलता है । श्यामलाल का एकमात्र कमाऊ बेटा बोरन की मृत्यु से श्यामलाल के परिवार की आर्थिक दशा बिगड़ जाती है । श्यामलाल की बड़ी बेटी तारा कमाती तो ज़रूर है, जो अपने पति हरबंस के साथ अलग परिवार में रहती है । अपने माँ-बाप की सहायता करने को वह तैयार है । यहाँ तारा की इस मनस्थिति के पीछे अपना स्वार्थी मन ही प्रमुख है । अपने माँ-बाप की सेवा-शुश्रुषा करना उसका उद्देश्य नहीं । तारा के अपने परिवार में नौकरानी की आवश्यकता है । नौकरानी को रखने पर उसे माहवार देना होगा । तारा अपनी सभी पारिवारिक मूल्यगत भावनाओं को तिलांजली देकर व्यक्ति-केन्द्रित अर्थप्रधान समाज में अपने स्वार्थ पूर्ति हेतु अपनी माता को नौकरानी के रूप में रखने की सोचती है । इस विषय पर वह अपने पति हरबंस से राय प्रकट करती है । हरबंस अपनी पत्नी को इस बात का कोई विरोध नहीं करता । तारा अपने घर में आया की जगह अपनी माँ को रख लेती है । अर्थ प्रधान समाज में परम्परित पारिवारिक मूल्य नष्टप्राय और महत्वहीन हो गये हैं । परिवार के सदस्यों के बीच जो मानवीय पवित्र सम्बन्ध और रिश्ते थे वे सब अमान्य सिद्ध हो गये हैं । "लड़की अब लड़की नहीं है । और माँ सिर्फ़ दूध पिलाकर बड़ा

---

1. हिन्दी उपन्यास सुरेश सिन्हा, पृष्ठ 135

करने वालो धाय भी नहीं है । सब लोग व्यक्तियों में बदल गये हैं ।"[1] यही स्थिति आज के अणु परिवार में सर्वत्र लक्षित है । प्रत्येक मनुष्य व्यक्ति है । वह आत्म-केन्द्रित है । आज के समाज की धारणा है कि बच्चों को पैदा करना तथा उनकी देख-भाल करना माता-पिता का धर्म और कर्तव्य है । प्रत्येक व्यक्ति अपने-अपने स्वार्थ केलिए प्रयत्न करता है, दूसरों पर ध्यान नहीं देता, परम्परागत मानवीय मूल्यों का तिरस्कार करता है । यही भावना इस उपन्यास की तारा में भी स्पष्ट दिखायी पड़ती है ।

नैतिकता के सामाजिक प्रतिमान परिस्थिति सापेक्ष है और परिस्थितियों के परिवर्तित होने से इसके बाह्य रूप अर्थात् इसके द्वारा निर्धारित विधिनिषेधों में परिवर्तन सहज स्वाभाविक है । नैतिक अवधारणाएँ एवं प्रक्रियायें स्वयं मानवीय जीवन की परिस्थितियों से ही उद्भूत होती है । व्यक्ति, परिवार, समाज, राष्ट्र की भलाई केलिए ही नैतिक नियम निर्धारित किये गये हैं । नियम प्रत्येक व्यक्ति केलिए है नैतिकता की यह नींव सम्पत्ति पर आधारित है । आर्थिक सुधार या ह्रास के प्रभाव से व्यक्ति की नैतिक विचारधाराओं में अन्तर पड़ता है । जिसके पास सम्पत्ति है उसकेलिए धर्म, नैतिकता, समाज-व्यवस्था, आदर्श सभी स्वीकृत है, मान्य है क्योंकि स्वार्थता वश अपनी सम्पत्ति का संरक्षण उपर्युक्त सिद्धान्तों के माध्यम से सुरक्षित किया जा सकता है । वह अपनी सम्पत्ति के बल पर समाज को यह सिखा देता है कि जीवन में उपर्युक्त आदर्शों का संरक्षण करना परम आवश्यक है । दूसरी ओर जिसके पास सम्पत्ति की कमी है, गरीबी है, जीविकोपार्जन दुष्कर है, उसकेलिए ये आदर्श बिलकुल खोखले हैं । उसके लिए धर्म, व्यवस्था आदि निरर्थक हैं क्योंकि उसे मालूम है कि इन आदर्शों के माध्यम से बुनियादी आवश्यकताओं का समाधान नहीं हो सकता है । जिस व्यक्ति के लिए इन आवश्यकताओं का निषेध किया जाता है उसका समाज के प्रति आक्रोश होता है ।

---

1. समुद्र में खोया हुआ आदमी कमलेश्वर ; पृष्ठ 112

इस आक्रोश का प्रभाव उसके वैयक्तिक, पारिवारिक, सामाजिक जीवन में प्रतिबिम्बित होता है ।

इन उदाहरणों में मुख्य रूप से निम्न लिखित बातें ध्यान देने योग्य है - आत्माभिमान का पक्ष गायब होता नज़र आ रहा है । पारिवारिकता का अभाव सर्वत्र विद्यमान है । आपसी और अधिक संकीर्ण होता जा रहा है । सम्बन्धों में से ऊष्मलता नष्ट होती जा रही है । अणु परिवार के जीवन के ही नहीं बल्कि पारिवारिक मूल्यों में दृष्टिगत ये संकेत नैतिक पतन के चिह्न है । जीवन की रफ्तार के सामने इन सभी समस्याओं के अपनी तर्क हो सकते हैं । उसकी नज़र भी ढूँढ़ी जा सकती है । अणु परिवार के सम्बन्ध में विचार करते समय नैतिक ह्रास की जो गति है वह अधिक वेगवान है क्योंकि वह दो व्यक्तियों के बीच या एकाध व्यक्तियों के बीच है । अतः नैतिक पतन का चित्र अणु परिवार में शीघ्र ही स्पष्ट होता है ।

अणु परिवार की समस्याएँ सामाजिक प्रसंग में भी प्रमुख हो उठती हैं । इसका कारण यह है अणु परिवार की ऐसी कोई अस्मिता हमारे समाज में नहीं है और अणु परिवार कहे जाने वाले परिवारों की जो भी स्थिति है वह हमारी सामान्य सामाजिक स्थिति से भिन्न नहीं है । भारतीय समाज में यद्यपि अणु परिवार में अपना अस्तित्व बना लिया है फिर भी पुरानी पारिवारिक प्रथाएँ या तो अब भी प्रचलित है या इन प्रथाओं के प्रति हमारे मन में अब भी झुकाव है । अतः हिन्दी उपन्यासों में आये हुए अणु परिवारों का अध्ययन उन सभी सामाजिक स्थितियों के सन्दर्भ में भी सम्भव है ।

अध्याय पाँच

आधुनिक हिन्दी उपन्यास में अंकित

पारिवारिक जीवन का समाजशास्त्र

साहित्य और समाजशास्त्र

समाजशास्त्र सामाजिक अन्तर्क्रियाओं का निरूपण करता है । ये अन्तर्क्रियाएँ ही मानवीय सम्बन्धों की आधारशिला है । समाजशास्त्री का अध्ययनक्षेत्र यह जीवित समाज है । मानव की चेतन क्रियाओं में समाजशास्त्री का शोध चलता है । समाजशास्त्री समाज को निकट से देखकर, मानव व्यवहार को परख कर लेता है । "मानवीय व्यवहार की जटिलता एवं विविधता के उद्भव एवं विकास की यात्राकथा का ही दूसरा नाम समाजशास्त्र है ।"[1] मानवीय व्यवहारों को सामाजिक परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करते समय उसका समाजशास्त्रीय परिदृश्य स्पष्ट होने लगता है । समाजशास्त्र के सिद्धान्त उसी से रूपायित हैं ।

साहित्य और समाजशास्त्र का पारस्परिक सम्बन्ध है । इस सम्बन्ध की खोज ज्ञान की विकास-श्रृंखला की एक कड़ी है । साहित्य सामाजिक प्रक्रियाओं का चित्रण करता है । इसलिए साहित्य समाजशास्त्र से अलग नहीं है । कला और कलात्मक संस्थाएँ भी समाजशास्त्र की विषय वस्तु में शामिल रहती है ।

समाजशास्त्र हमेशा व्यक्ति और समाज के प्रति आस्थावान रहता है । समृद्धता की तलाश में वह किसी भी इकाई का अवहेलना नहीं करता है और किसी विशिष्ट इकाई केलिए समृद्धता को छोड़ता भी नहीं है । कला और साहित्य के क्षेत्र में वह समाज और साहित्यकार का महत्ता को समान रूप से स्वीकार

---

1. सोसियोलजी मिनेन्द्रनाथ बसु ; पृष्ठ 4

करता है । वह उनकी अन्तर्क्रियाओं के मध्य साहित्यिक समाज को व्याख्या करने की ओर अग्रसर होता है । समाजशास्त्रीय विश्लेषण एक वैज्ञानिक पद्धति है वह सिद्धान्तों के अवलोकन, परीक्षण तथा विश्लेषण की प्रक्रिया है । वस्तु-निष्ठ तथा तर्काश्रित अध्ययन में आस्था रखता है । वह निष्पक्ष तथा तटस्थ रहता है । वह पूर्वग्रहों से मुक्त रहता है । वह व्यक्ति के विश्वास, आशा और भय से स्वतन्त्र रहने वाली सच्चाई है । इन खूबियों के प्रति समाजशास्त्री सदा जागरूक है । समाजशास्त्री की पद्धतियाँ अपनी प्रकृति में वैज्ञानिक है । अपनी इस वैज्ञानिक दृष्टि का उद्देश्य वास्तविकता का अन्वेषण है । सामाजिक स्थिति का सही-सही अन्दाज़ निकालना ही समाजशास्त्री का उद्देश्य है ।

गुलाबराय ने साहित्यकार और वैज्ञानिक दोनों को ही सत्य के अन्वेषक माना है । "दोनों ही मनुष्य के अनुभव की व्याख्या करते हैं । दोनों ही आश्चर्य, चमत्कार, नवीनता, खोजबीन, आनन्द और संलग्नता का कार्य करते हैं । दोनों का ही अन्तिम लक्ष्य मनुष्य जाति का हितसाधन है फिर विरोध कैसा ?"[1] साहित्य की साध्यावस्था भी इस अर्थ में वैज्ञानिक है भले ही वह अपनी कल्पना के बल पर खड़ा है । साहित्य की कल्पना का महत्व इसलिए है कि वह सामाजिक स्थितियों, तीक्ष्ण गतिविधियों की उपज है । इसलिए कल्पना का अन्वेषण पक्ष उसके सामाजिक पक्ष का द्योतन ही है ।

समाजशास्त्री समाज के जीवन की विविधता और उसके विभिन्न पक्षों को लक्षित करता है । प्रत्येक पक्ष का इतिहास, नृतत्वशास्त्र तथा सामाजिक क्रिया-कलापों का विश्लेषण करता है । साहित्य सभी वर्गों के प्रति समान दृष्टि रखता है । पर साहित्य समाज की भावात्मक स्थिति पर अधिक बल देता है । अत: साहित्य के समाजशास्त्रीय अध्ययन के अवसर पर भावात्मक स्थिति का पुन: सामाजिक आधार ढूँढ़ लेना अवश्यक हो जाता है ।

---

1. साहित्य और समीक्षा गुलाबराय; पृष्ठ 11

सामाजिक जीवन में मनुष्य कुछ ऐसे सुनिश्चित सम्बन्धों की स्थापना करते हैं जो जीवन की प्रगति केलिए आवश्यक है । इन सामाजिक सम्बन्धों की पूर्णता के आर्थिक धरातल का निर्माण होता है जिसके ज़रिए मानवीय सम्बन्धों को और निकटता से देखने का मौका मिलता है । इस प्रकार भावात्मक स्थिति से सामाजिक आधार और उसके बाद आर्थिक आधार स्पष्ट होने लगता है । साहित्य के सामाशास्त्रीय अध्ययन में इन सब का लेखा-जोखा होता है । साहित्य समाज की एक भीतरी समझ है । यह समझ एक साथ समाज के भीतर और बाहर रहने से आती है ।

उपन्यास और समाजशास्त्र

सामाजिक विकास के समानान्तर ही कला और साहित्य का भी विकास होता है । समाज व्यवस्था में बदलाव लाने का दायित्व साहित्य पर भी है क्योंकि साहित्य केवल निराधार कल्पना की अभिव्यक्ति नहीं है । "श्रेष्ठ साहित्यकार जनजीवन को उसके व्यापक सर्वांगीण रूप में देखता है, उसकी दुर्बलताओं को समझता है और उसके संघर्षरत प्रगतिशील तत्वों का भी उद्घाटन करता है । गहरी संवेदना, अन्तर्दृष्टि और व्यापक अनुभूति से यह जीवन को अपने साहित्य में प्रतिबिम्बित करता है । साहित्य जीवन की अनुकृति मात्र नहीं होता, उसे गति और दिशा भी देता है ।"[1] साहित्य और कला का अस्तित्व समाज सापेक्ष है । साहित्य और कला के नियम भौतिक जगत् और मानव-समाज के नियमों के अनुसार स्थापित है ।

बीसवीं सभ्यता के इस युग में समूचे सामाजिक जीवन को अभिव्यक्ति देने के सक्षम माध्यम के रूप में उपन्यास को देखा गया है । इस कारण से सुप्रसिद्ध कथा आलोचक रैल्फ फॉक्स ने उपन्यास के सामाजिक स्वरूप पर यों विचार किया है ।

---

1. आज का हिन्दी उपन्यास प्रकाश चन्द्र गुप्त ; पृष्ठ 3

"उपन्यास का वास्तविक सम्बन्ध जीवन से है । वह महान घटनाओं को खोज नहीं करता, उसका रचना-क्षेत्र तो दैनिक जीवन की घटनाओं से है ।"[1] वास्तव में आधुनिक जीवन की बहुआयामी विशिष्टताओं की प्रतिनिधि विधा उपन्यास ही है । इस कारण से वर्तमान युग में उपन्यास ने बड़ी लोकप्रियता अर्जित की है । इसका कारण यह है कि उसने मानवीय सम्बन्धों और सामाजिक मूल्यों को गम्भीरता से विवेचन किया है । मानव जीवन के विकास का आधार उसकी परिवर्तनशीलता है । उपन्यास उन परिवर्तनों का एक जीवित इतिहास है । सामाजिक पृष्ठभूमि के अध्ययन के बिना उपन्यास में अभिव्यक्त वैचारिकता को समझना कठिन है ।

सामाजिक रूढ़ियों, परम्पराओं, विचारों, धर्मों और संस्कारों का उल्लेख उपन्यास में रहता है । मात्र उल्लेख से उपन्यास में रचनात्मकता का आभास उत्पन्न नहीं होता है । उन सभी पक्षों को रचनाकार अपने ढंग से समाजशास्त्रीय आयाम में प्रस्तुत करता है । लेकिन यह उनकी रचनादृष्टि का परिणाम मात्र है । पर उन पक्षों का - सामाजिक गतिविधियों का - वास्तविक अध्ययन समाजशास्त्रीय रीति से सम्भव है । चाहे वह पति-पत्नी सम्बन्ध हो, कोई भी पारिवारिक स्थिति हो या और कुछ । पात्रों में परिकल्पित व्यक्तियों की निजता और उनकी सहजता को ढूँढ़ने के लिए व्यक्ति-परिवेश से बाहर आना पड़ता है । अत: दो व्यक्तियों के आपसी रिश्ते अपने ढंग से समाजशास्त्रीय सम्भावना से युक्त भी है ।

उपन्यास की एक और विशेषता है जो उसके समाजशास्त्रीय पक्ष को और भी दृढ़तर करती है और वह है उपन्यास की सामाजिक समान्तरता । उपन्यास में समाज की सभी गति-विधियों का उल्लेख हो, यह आवश्यक नहीं है ।

---

1. उपन्यास और लोकजीवन रैल्फ फॉक्स ; पृष्ठ 38

पर मूर्त सामाजिक स्थितियों के अभाव में भी उस में सामाजिक समान्तरता का अन्तर्भूत आयाम हमें मिलता है । समाज की बृहद् गति-विधियों के एकाध नमूने ही उपन्यास में उपलब्ध हो सकते हैं । उदाहरण स्वरूप स्त्री जागरण को लें । उपन्यास में इसे एक नमूने के रूप में प्रस्तुत किया जाता है । अतः उपन्यास का एक नमूना, एक सीमित परिदृश्य, बृहद परिदृश्य का संक्षिप्त आंकलन भर होता है । अतः उपन्यास का समाजशास्त्रीय अध्ययन ऐसे इने-गिने नमूनों का अध्ययन ही है और वह अन्ततः वास्तविक सामाजिक स्थितियों का अध्ययन है ।

स्वतन्त्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास और बदलते सामाजिक मूल्य

मूल्य समाज की आधारशिला है । इस पर सभ्यता और संस्कृति का भव्य प्रासाद खड़ा है । परिवेश के क्रमिक परिवर्तन के अनुसार मूल्य में भी परिवर्तन आ जाते हैं । मानवीय विवेक के द्वारा मूल्य का निर्धारण होता है । वही उसे सत्य-असत्य का बोध प्रदान करता है । प्रत्येक समाज में जीवन और पारस्परिक व्यवहार सम्बन्धी कुछ धारणायें होती हैं । ये धारणाएँ स्थिर हो कर मूल्य पद पर प्रतिष्ठित होती हैं ।

आधुनिक काल में मानव का अहं बहुत अधिक जागृत हुआ है । उसने अपने महत्व और अपनी ताकत को समझ लिया है । उसने अपने प्रभुत्व का अनुभव किया है । व्यक्ति अलौकिकता से लौकिकता की ओर, असाधारण से साधारण की ओर संचरण करने लगा है । आदर्शवाद के स्थान पर यथार्थवाद को अपनाने केलिए वह उत्सुक है । इस कारण से ही अब परम्परागत जीवनमूल्य अस्वीकृत होते जा रहे हैं । "इस पुरानी पीढ़ी के अतिरिक्त दूसरी ओर कुण्ठासन पर विराजित विद्रोह के चरणों में समर्पित नया रक्त है जो कुण्ठित भी है और क्रुद्ध भी । समस्त मूल्यों, सम्बन्धों और परम्पराओं की अस्वीकृति मुद्रा में समाज की यह नयी

पोढ़ो साहित्य के माध्यम से व्यक्त होने लगो है ।"[1] विज्ञान को प्रगति ने समस्त मानव जोवन को अपने घेरे में कर दिया है । उसने धर्म, ईश्वर, इहलोक, परलोक आदि से सम्बन्धित सभो अलौकिक मूल्यों को नगण्य बना दिया है । नयो जोवन परिस्थितियों के मूल्य सम्बन्धो अवबोध को भो परिवर्तित किया है ।

स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दो उपन्यासों ने अनेक चुनौतियों को अपने रचना-परिदृश्य में स्वीकार किया है । जोवन के सभो पहलुओं को उसने छू लिया है । इस पर डॉ॰नेमिचन्द जैन का मत है - "स्वाधोनता के बाद का हिन्दो उपन्यास भारतोय जोवन के बहुत से स्तरों और आयामों को अभिव्यक्त करने में सफल हुआ है । भाव-चेतना, सौन्दर्य-बोध और बौद्धिक संघर्ष का जो वक्तव्य है वह काव्य में उपलब्ध वक्तव्य को अपेक्षा तोव्रता और गहनता में चाहे कम हो, किन्तु व्यापकता और वैचित्र्य में निश्चित हो अधिक है । इन उपन्यासों में जोवन के खण्ड-सत्यों के असंख्य सूक्ष्म तथा मार्मिक रूप अनुभूति को तोव्रता और विविधता के अनगिनत स्तरों में बिखरे पड़े हैं । उनमें से किसो में सम्पूर्ण युगव्यापो सत्य को समेटने का प्रयत्न प्राय: नहीं है । अथवा है भो तो वह अधिक सफल नहीं होता । सभो में अपने-अपने दृष्टि-बिन्दु से जोवन को ग्रहण करने और उस सीमित अनुभव को सार्थक कलात्मक रूप देने का प्रयत्न अधिक दिखायी पड़ता है । इसो से जोवन के बहुत से पक्ष असम्बद्ध रूप में इन उपन्यासों मे प्रकट है ।"[2] जीवन की विविधता की पृष्ठभूमि में नये मूल्यों की पहचान उपन्यासों में हुई है । उस पहचान ने जोवन को अवधारण को बदल डाला है ।

---

1. स्वातन्त्र्योत्तर कथा साहित्य और ग्राम्य जोवन विवेको राय ; पृष्ठ 316
2. अधूरे साक्षात्कार नेमिचन्द जैन ; पृष्ठ 2-3

मध्यवर्गीय जीवन स्थितियों का समाजशास्त्र

उपन्यास में सदैव मध्यवर्गीय जीवन प्रतिफलित होता रहा है । यह अकारण नहीं है । हमारे सामाजिक जीवन में मध्यवर्ग का मुख्य स्थान है । जीवन की मुख्य धारा में मध्यवर्ग की अदृश्य भूमिका है । मध्यवर्गीय जीवन की अनेकरूपता उसकी आर्थिक अस्त-व्यस्तता, मानसिक उलझन आदि उपन्यास की मध्यगत सम्भावना को विकसित भी करती है । हिन्दी उपन्यास में मध्यवर्ग की बहुआयामी आकांक्षाएँ अक्सर स्थान अर्जित करती रही है । जिन उपन्यासों में पारिवारिक जीवन को प्राथमिकता मिली है, उनमें आत्यन्तिक रूप से मध्यवर्गीय जीवन ही अंकित है । इसका प्रमुख कारण उपन्यासकारों का मध्यवर्गीय होना ही है । अत: मध्यवर्ग जीवन विषय भी है तो दूसरी तरफ औपन्यासिक दृष्टि को रूपायित करने वाला प्रमुख घटक भी है ।

मध्यवर्ग आधुनिक समाज-विकास का अभिन्न अंग है । लेकिन अपनी नयी स्थिति के बावजूद इस वर्ग ने पूँजीवादी वर्ग से, उपनिवेशवादी संस्कृति से उद्भूत सत्ताधारी वर्ग से अपना सम्बन्ध साबित किया है । इसलिए मध्यवर्ग से जुड़ा जीवन-स्थितियों का उपन्यास के सन्दर्भ में समाजशास्त्रीय अध्ययन उपन्यास विश्लेषण के लिए नये क्षितिज को अनावृत कर सकता है ।

मध्यवर्ग का शहरों में आकर बसना और शिक्षा प्राप्त कर नये बाबूवर्ग का विकास आदि हमारे सामाजिक इतिहास में प्रमुख है । धीरे-धीरे इस बाबू वर्ग की संख्या बढ़ती गयी । शहर की ओर प्रवासित मध्यवर्ग की अपनी समस्याएँ थीं। आर्थिक दृष्टि से मध्यवर्ग सम्पन्न नहीं था । मध्यवर्ग हमेशा परिवर्तन चाहता है । इसलिए वह असन्तोष, विवशता, कुण्ठा आदि में जीवन बिताता है । मध्यवर्ग की अपनी निजी दुर्बलताएँ भी हैं । इसी कारण से अन्य वर्गों से अपेक्षाकृत अधिक आक्रान्त है । उसकी सबसे बड़ी दुर्बलता प्रदर्शनप्रियता है । अपनी कुल-

मर्यादा को रक्षा केलिए, मर्यादा को निभाने केलिए उसे बहुत अधिक कोशिश करनो पड़तो है । पर उसको आर्थिक स्थिति स्कावट पैदा करतो है । मध्यवर्ग, आभिजात्य वर्ग तक पहूँचने को आकांक्षा रखता है । किन्तु आर्थिक तंगो के कारण वह खोखला प्रदर्शन हो कर पाता है । "आज को बदलतो परिस्थितियों के दमघोटू वातावरण ने मानव के जोवन में विचित्र बिखराव उत्पन्न कर दिया है । आज जिन्दगो को बड़बाहट सबसे अधिक मध्यवर्गोय व्यक्ति को होनो पड़ता है, क्योंकि न तो वह उच्च वर्ग का अंग बन सकता है, न अपने अहं के कारण निम्न वर्गवालों से मिल सकता है । थोथो अहम्मन्यता का जुआ इच्छा रहते अपनो गर्दन से नहीं निकाल पाता, वैयक्तिक मान्यताएँ जितनो तेजो से बदलों, सामाजिक प्रतिशोधों ने उतना हो दबाने को कोशिश को ।"[1] इस कारण वह मध्यवर्ग, खोखले आदर्शों केलए, परम्पराओं का बोझ ढोता हुआ अधिक विवश दिखायो पड़ता है ।

पारिवारिक मूल्य विघटन का समाजशास्त्र

हमारे सामाजिक जोवन के कुछ मूल्य ऐसे हैं जो कभो बदलते नहीं है और उन्हें बदलना भो नहीं चाहिए । लेकिन कुछ मूल्य समय के बदलने के साथ बदलने केलिए बाध्य हो जाते हैं । कभो-कभो उनमें संशोधन होने लगते हैं और कभो-कभो उनमें बहुत कुछ जोड़ा भो जाता है । "मूल्य न तो टूटते हैं, न बिखरते हैं और न मरते-जोते हो हैं, बल्कि प्राचोन मूल्यों में से हो नवोन मूल्य विकसित होते हैं । अस्तु,मूल्यों का न तो निर्माण होता है, न उत्पादन, सिर्फ़ उनका विकास होता है ।"[2] बदलने का अर्थ इसो से सम्बन्धित है । जोवन में हमेशा नये-पुराने का संघर्ष अनिवार्य है । कोई भो संस्था ऐसो नहीं है जो बिना बदले बनी रहती हो । इसलिए नये पुराने का संघर्ष मूल्यों के सन्दर्भ में कुछ और

---

1. स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दो उपन्यास साहित्य की समाजशास्त्रोय पृष्ठभूमि
डॉ. स्वर्णलता ; पृष्ठ 76
2. स्वातन्त्र्योत्तर कथा साहित्य :सोताराम शर्मा ; पृष्ठ 59

नये बनने का अपक्रम करता है ।

पारिवारिक मूल्य विघटन का सन्दर्भ क्या हो सकता है इस पर विचार करते समय हमारे सामने कई प्रकार के पारिवारिक मूल्य उभर आते हैं । परिवार की नींव को सुदृढ़ बना रखने केलिए कई मूल्यों की ज़रूरत है । लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि उन मूल्यों को कभी संशोधित किया नहीं जा सकता । पारिवारिक जीवन किसी गुफा में बन्द कोई इकाई नहीं है । परिवार के कई ऐसे सदस्य होते हैं जिनका जीवन बाहरी आबोहवा से लिप्त रहता है । बाह्य वातावरण से वे बहुत कुछ लेते हैं और बहुत कुछ अलग करते हैं । इसलिए पारिवारिक मूल्यों के बदलने की आवश्यकता को स्वीकार करना पड़ता है । अन्यथा वह जीवन धीरे-धीरे जड़ हो सकता है ।

परिवार में सबसे अधिक सुदृढ़ सम्बन्ध पति-पत्नी का होता है, विशेष कर छोटे परिवार में । इसका कारण यह है कि अपने छोटे परिवार सम्बन्धी सभी निर्णय उन्हीं के होते हैं । दूसरों की भागीदारी इसमें नहीं है । इसीलिए पति-पत्नी सम्बन्ध का सिर्फ़ सनातन मूल्य ही नहीं है बल्कि आधुनिक मूल्य भी है । जब यह सम्बन्ध पारस्परिकता के मूल्य से अलग हो जाता है तब पारिवारिक मूल्य विघटन का आरम्भ होता है । सनातन एवं शाश्वत कहे जाने वाले सन्दर्भों में आधुनिक परिवार के मूल्य टिक नहीं सकते । पति-पत्नी सम्बन्ध इसकेलिए हेतु मात्र है । परिवार के दूसरे सम्बन्ध भी इसी प्रकार मुख्य है । "वैयक्तिक स्वतन्त्रता, प्रायोगिकी सम्बन्धों की जटिलता से आज का पर्यावरण इतना बदल चुका है कि परम्परागत परिवार न केवल विघटित हो रहे हैं, बल्कि नयी सामाजिक समस्याओं को भी जन्म दे रहे हैं । आज सामाजिक परिवेश में मूल्यों की टकराहट हो रही है, व्यक्तिनिष्ठा इतनी बढ़ गयी है कि सहिष्णुता, परहित भावना के लिए स्थान सीमित हो गया ।"[1]

---

1. साप्ताहिक हिन्दुस्तान : डा. श्याम सिंह शशि, मार्च 16-22, 1980

पारिवारिक मूल्य विघटन के कुछ दूसरे कारण भी हो सकते हैं जो सामाजिकता से अलग व्यक्ति के सीमित अहं से सम्बन्धित है । लेकिन इसे व्यक्तिवादी सन्दर्भ कहकर टाला नहीं जा सकता । व्यक्ति उक्त सीमित अहं में असामाजिक और अनैतिक दृष्टिकोण में बन्धे हुए होते हैं । इस कारण से मूल्य विघटित होने की सम्भावना है । अतः यही कहा जा सकता है कि आपसी सम्बन्धों की ऊष्मलता के अभाव में या सनातनी दृष्टि में जकड़े रहने के कारण या सनातनी मूल्य-दृष्टि के संशोधन में समय-समय पर बल न देने के कारण या विवेचनाकरण के अभाव के कारण पारिवारिक मूल्यों में विघटन पैदा होने लगता है ।

आज के समाज में भले ही अनेक प्रकार के प्रगतिविरोधी और रूढ़िवादी दृष्टिकोण मौजूद हो जिन्हें अनेक कोणों से बढ़ावा भी मिल रहा हो, फिर भी आज के समाज में प्रगतिशील और नये विचारों केलिए पर्याप्त स्थान है । नये सामाजिक विधान में अर्थात आधुनिक परिवारों में विशेष कर शहरी परिवारों में यह नये विचार स्वीकृत हैं । लेकिन विरोधाभास इस बात को लेकर है कि नये विचारों के बावजूद पुराने विचार भी बने हुए हैं । विचारों के इस नये-पुराने क्रम के बीच संघर्ष चलता है । संघर्ष के दौरान मूल्य की स्पृहणीय स्थिति सदा केलिए मिट जाती है । पारिवारिक जीवन के विघटन का यही एक कारण है । ऊपर जिस पति-पत्नी सम्बन्ध की सुदृढ़ता की बात की गयी है अन्य सम्बन्धों में भी उस प्रकार के संघर्ष चलते हैं और इसके अनेक कारण होते हैं । यहाँ यह भी गौर करना चाहिए कि यह सिर्फ़ आधुनिक विचारों की स्थिति नहीं है । पुराने परिवारों में भी ऐसी कुछ बातें थीं । लेकिन वहाँ नयी विचारधारा को समेटने का उतना मौका नहीं मिलता था जितना आधुनिक परिवारों को मिलता है । अइस कारण से पुराने परिवारों के सन्दर्भ में मूल्य संघर्ष के बावजूद विघटन की स्थिति मौजूद नहीं होती थी जबकि आधुनिक परिवारों में बहुत जल्दी प्रकट होती है । "पारिवारिक समस्याओं को आत्मघटित और आत्मपरिकल्पित दोनों स्तरों पर समझने और वर्णित करने का प्रयास कम ही मिलता है, क्योंकि यह प्रयास

आदर्श के दायरे से आरोपित होने के कारण प्रेमचन्द से आगे नहीं बढ़ा है परन्तु परिवार के विघटन की प्रक्रिया का अनुभव माता-पिता, पुत्र बहु, सास और ननद के टूटते हुए सम्बन्धों और आरोपित या नकली पहने हुए चेहरों को पहचानने का उपक्रम है ।"[1]

सामाजिक विकास के समान्तर दृष्टिगत ये बातें उपन्यास में अलग-अलग रंगों और रूपों में दिखायी पड़ती है । इसीलिए आधुनिक उपन्यास में जो पारिवारिक जीवन अंकित है जिनमें छोटे या बड़े पैमाने पर जिन-जिन मूल्यों की टकराहट संकेतित है उनका अपना समाजशास्त्रीय सन्दर्भ है ।

उषा प्रियम्वदा के उपन्यास "पचपन खम्भे लाल दीवारें" में पारिवारिक सीमाओं में जकड़ी मध्यवर्गीय शिक्षित स्त्री की सामाजिक एवं आर्थिक विवशताओं से उपजी मानसिक यन्त्रणा का चित्रण है । सुषमा का दायित्वबोध उसे अपने में सीमित करता है । इसीलिए वह अपने प्रेमी से कहती है - "पहली बात तो नील यह है कि मेरी बहुत ज़िम्मेदारियाँ हैं । तुमसे कुछ छिपा नहीं है । पक्षाघात से पीड़ित बाबु दो बहनें और भाई, सब मुझे ही करना है ।"[2] लेकिन मध्यवर्गीय जीवन के गर्त में उसके दायित्व बोध का शोषण होता है । सुषमा को शोषित करने का कार्य उसका अपना परिवार करता है । इसीलिए उसकी माँ बहानेबाजी करती है । "तुम जानो कृष्णा, सुषमा की शादी तो अब हमारे बस की बात नहीं रही । इतना पढ़-लिख गयी, अच्छी नौकरी है और अब तो, क्या कहते हैं, हॉस्टल में वार्डन भी बनने वाली है । बंगला और चपरासी अलग से मिलेगा, बताओ इनके जोड़ का लड़का मिलना तो मुश्किल ही है ।"[3] अत: सुषमा को लगता है कि उसका अपना जीवन अर्थहीन हो गया है । "मेरी ज़िन्दगी खत्म

---

1. सम्मेलन पत्रिका, भाग 61, अंक 1697
2. पचपन खम्भे लाल दीवारें उषा प्रियम्वदा; पृष्ठ 119
3. वही; पृष्ठ 10

हो चुकी है । मैं केवल साधन हूँ । मेरी भावना का कोई स्थान नहीं । विवाह करके परिवार को निराधार छोड़ देना मेरे लिए सम्भव नहीं । प्राचीरों में बन्दी ज़िन्दगी के लिए उसने अपने को ढाल लिया है ।"[1] "उसके जीवन में न जाने कहाँ कुछ ऐसी बात बिगड़ गयी थी, जो अब लाख बनने पर भी न बनेगी । इतने लोगों से घिरी रहने पर भी वह अकेली रहेगी ।"[2] "पैंतालीस साल की आयु में मैं भी एक कुत्ता या बिल्ली पाल लूँगी - उसे सीने से लगा रखूँगी आज से सोलह साल बाद शायद तुम मुझे यहाँ पाओगी । कॉलिज के पचपन खम्भों की तरह स्थिर, अचल ।"[3]

उपन्यास में सुषमा के जीवन के बिखराव के माध्यम से रूढ़िग्रस्त समाज का चित्रण हो उपन्यासकार ने किया है । मध्यवर्गीय मानसिकता में पूरी तरह डूबे हुए लोगों से सुषमा मुक्त नहीं हो पाती है । इसलिए वह भी डूब जाती है । दायित्व के नाम पर वह जो कुछ भी करती है वह दूसरे सदस्यों को पलायन और अवसरवादी ही बनाता है । सबके ऊपर दायित्व का बोझ लटकाया जाता है, और सब कुछ पुराने ढंग से चलता रहता है ।

धर्मवीर भारती के "सूरज का सातवाँ घोड़ा" उपन्यास में मध्यवर्गीय पारिवारिक मूल्य विघटन की स्थितियों का चित्रण है । इसके पात्रों ने परम्परागत जीवन मूल्यों के प्रति विरोध प्रकट किया है, खास कर पारिवारिक जीवन मूल्यों के प्रति । लेकिन उनका यह विरोध केवल आन्तरिक रह गया है । बाह्य रूप से विरोध करने की ताकत किसी पात्र में नहीं है क्योंकि वे परम्परागत सामाजिक रूढ़ियों, अन्धविश्वासों, रीतिरिवाज़ों में जकड़े हैं ।

---

1. पचपनखम्भे लाल दीवारें उषा प्रियम्वदा ; पृष्ठ 10
2. वही ; पृष्ठ 136
3. वही ; पृष्ठ 109-110

इस उपन्यास में आर्थिक विषमताओं एवं रूढ़िगत परम्पराओं के दोहरे पाटों में पिसते हुए मानव जीवन के विषाद को अभिव्यक्ति हुई है । "वास्तव में आर्थिक ढाँचा हमारे मन पर इतना अजब सा प्रभाव डालता है कि मन की सारी भावनाएँ उससे स्वाधीन नहीं हो पातीं और यहाँ रूढ़ियाँ, परम्पराएँ, मर्यादाएँ भी ऐसी पुरानी और विषाक्त हैं कि कुल मिलाकर हम सबों पर ऐसा प्रभाव पड़ता है कि हम यन्त्र-मात्र रह जाते हैं ।" [1] उपन्यास भर में विरोध का स्वर है । पारिवारिक जीवन के मूल्यों के बदलने को लेकर गहरी चिन्ता सर्वत्र विद्यमान है । "उस व्यवस्था द्वारा लादी गयी सारी नैतिक विकृति को भी अस्वीकार करे और उसके द्वारा आरोपित सारी झूठी मर्यादाओं को भी ।"[2]

परम्परागत मार्ग से अलग कर परिवर्तन की माँग करता हुआ उपन्यास का प्रकाश निम्न -मध्यवर्ग की दारुण स्थिति पर विचार करता है । "हम सभी निम्न-मध्य श्रेणी के लोगों की ज़िन्दगी में हवा का एक ताज़ा झोंका नहीं । चाहे दम घुट जाए पर पत्ता नहीं हिलता, धूप जिसे रोशनी देना चाहिए हमें बुरी तरह झुलसा रही है और समझ में आता कि क्या करें । किसी न किसी तरह नयी और ताज़ी हवा के झोंके चलने चाहिए । चाहे लू के ही झोंके क्यों न हों ।"[3]

निम्न मध्यवर्गीय व्यक्ति की निराशा, घुटन और कटुता के स्थान पर साहस, कर्मण्यता एवं दृढ़ता को स्थापित करने के प्रयास में मानिक मुल्ला सामाजिक व्यवस्था की अनैतिकता से लड़ने को उत्सुक है । "पर कोई न कोई ऐसी चीज़ है जिसने हमें हमेश अन्धेरा चीर कर आगे बढ़ने, समाज व्यवस्था को बदलने और मानवता के सही मूल्यों को पुन: स्थापित करने की ताकत और प्रेरणा दी है । चाहे उसे आत्मा कह लो चाहे कुछ और । आत्मविश्वास, साहस, सत्य के प्रति निष्ठा

---

1. सूरज का सातवाँ घोड़ा धर्मवीर भारती ; पृष्ठ 52
2. वही ; पृष्ठ 53
3. वही ; पृष्ठ 52

उस प्रकाशवाहो आत्मा को उसी तरह आगे ले चलते हैं ।"[1]

मानिक मुल्ला के जीवन में प्रेम की असफलता के पीछे आर्थिक विषमता है । यमुना, लिली, सत्ता के सम्पर्क में आकर उसे यही महसूस होता है । प्रेम सम्बन्धों में हमारे जीवन के समग्र यथार्थ को प्रस्तुत किया गया है । "देखो ये कहानियाँ वास्तव में प्रेम नहीं वरन् उस ज़िन्दगी का चित्रण करती है जिसे आज निम्न मध्यवर्ग हो रहा है । उसमें प्रेम से ही ज़्यादा महत्वपूर्ण हो गया है आज का आर्थिक संघर्ष, नैतिक विश्रृंखलता, इसलिए इतना अनाचार, निराशा, कटुता और अन्धेरा मध्यवर्ग पर छा गया है ।"[1]

प्रेम असल में व्यक्ति का निजी भाव है । दो व्यक्ति आपस में बँधते हैं । उनकी दृष्टि की समानता और आकर्षण उसके घटक हो सकते हैं । जब तक यह भाव, जिसे हम प्रेम करते हैं, दो व्यक्तियों के बीच है तो वह प्रेम ही रहता है जिसे बढ़ाने या घटाने वाला, जिस पर अंकुश लगाने वाली कोई ताकत नहीं होती । पर इसी प्रेम सम्बन्ध को गैर-ज़रूरी बातों के सन्दर्भ में देखा जाता है, सबसे पहले उसकी निजता नष्ट होती है । आर्थिक विपन्नता और सम्पन्नता के सन्दर्भ को कसने पर वह प्रेम नहीं बल्कि एक साफ़ अनैतिक मानसिक शक्ति का उदाहरण बन जाता है । प्रेम सम्बन्धों से उत्पन्न निराशा, या निराशा से जन्मी हताशा में प्रेम प्रश्नवाचक होता है । हमारे समाज में ऐसे हादसों की कमी नहीं है । पर इन हादसों के आधार पर यह नहीं देखा जाता है कि इस सामाजिक दृष्टि में कहाँ खोट है ।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद जिस आर्थिक सन्तुलन की आशा और आकांक्षा थी वह पूरी नहीं हुई । इसके विपरीत देश की आर्थिक स्थिति विषम

---

1. सूरज का सातवाँ घोड़ा धर्मवीर भारती; पृष्ठ 113
2. वही; पृष्ठ 113

होतो गयो और मध्यवर्गीय परिवारों पर आर्थिक संकट का असर पड़ने लगा । राष्ट्र के विकास को प्रक्रिया महानगर में प्रारम्भ हुई । फलस्वरूप बहुत बड़ा वर्ग आर्थिक सन्तुलन और आरामदेह जीवन की खोज में महानगरों की ओर चल पड़ा । इन महादगरों में वैज्ञानिक विकास के कारण यन्त्रकेन्द्रित संस्कृति पनप उठी । यहीं भारत के मध्यवर्गी परिवारों का संकट जन्म लेता है । विभिन्न प्रकार की विकल्प प्रक्रियाओं का वजह से मध्यवर्गीय जीवन में सुधार नहीं आया । उसकी आर्थिक स्थिति अधिक गम्भीर होतो गयी । श्यामलाल की मध्यवर्गीय मानसिकता में जो कमज़ोरियाँ थीं उसने इस वर्ग के जीवन को और अधिक मुश्किल में डाल दिया । हिन्दी उपन्यासों में ऐसे मध्यवर्गीय परिवारों की आर्थिक स्थितियों को विषय-वस्तु के रूप में स्वीकार किया गया है । "समुद्र में खोया हुआ आदमी" उपन्यास में आर्थिक संकट के शिकार मध्यवर्गीय परिवार की टूटन की प्रक्रिया अंकित है । शहरी जीवन का मूलाधार अर्थ है । अब इस अर्थ का स्रोत सूख गया है । सामान्य आदमी के जीवन के संघर्ष का, उसके अभावों का अंकन इस रचना में है । इस उपन्यास का प्रत्येक पात्र संघर्षरत है । अपने अभावों से लड़ता हुआ वह बेहतर आर्थिक सामाजिक जीवन की तलाश में है ।

अर्थकेन्द्रित पारिवारिक सम्बन्धों एवं अर्थाभाव से टूटते हुए पारिवारिक मूल्यों का अंकन इस उपन्यास में है । जब तक श्यामलाल सिन्धी ट्रान्स्पोर्ट कम्पनी में नौकर थे और परिवार का भरण-पोषण कर रहे थे तब तक तो उसके परिवार का वातावरण साधारण था । लेकिन नौकरी से छूटते ही पारिवारिक रिश्तों में दरार पड़ने लगी । और उसे परायेपन का बोध महसूस होने लगा । "इन पिछले दो-तीन वर्षों में चाज़ें अपने आप कैसे बदलती गयी थी, लड़कियाँ बहुत अपनी थीं, पर न जाने क्यों दूरी बढ़ गयी थी । आपस में कहीं कुछ धीरे से पिघल कर बह गया था, जिसे वह अबमहसूस कर रहे थे । चूँकि रिश्तों को नया नाम नहीं दिया जा सकता, बाप-बेटी या माँ-बेटी ही कहे जाएँगे, पर उनके बीच

से कोई चीज़ अनजाने हो खो गयी थी । हमों में कहीं बड़ा फ़र्क आ गया था ।"[1]

अर्थकेन्द्रित स्वार्थपरता के कारण बेटी माँ के प्रति परायेपन और हेय समझने की भावना जताती है । तारा अपने पति हरबंस के सुझावानुसार आया की जगह अपनी माँ को रख लेना सहर्ष स्वीकार कर लेती है ।

व्यक्ति का सीमित व्यक्ति में बदलना मूल्यों के ह्रास का सूचक है, खास कर परिवार में आर्थिक तंगी का वातावरण हो और व्यक्ति के सीमित होने का मतलब है मूल्यों से जी चुराना और अपने दायित्व से मुँह मोड़ना । "लड़की अब लड़की ही नहीं है । और माँ सिर्फ दूध पिलाकर बड़ा करने वाली धाय भी नहीं है । सब तब लोग व्यक्तियों में बदल गये हैं ।"[2]

पारिवारिक मूल्यों के व्यापक विघटन के परिणामस्वरूप आज का व्यक्ति व्यक्तिवादिता के संस्कारों से दब गया है । ऐसी स्थिति में व्यक्ति समाज से कटता जा रहा है, उसमें सामाजिकता की भावना शून्य होती जा रही है । सामाजिक मूल्यों के निर्वाह केलिए जिन भावनाओं की अपेक्षा होती है वे उसके व्यक्ति-स्वातन्त्र्य से मेल नहीं खाती । इसीलिए आज व्यक्ति और समाज के सम्बन्धों में व्यापक रूप से टूटन की प्रक्रिया दिखाई पड़ती है । फलस्वरूप सामाजिक मूल्यों का भी ह्रास होता जा रहा है ।

"उखड़े हुए लोग" में स्त्री-पुरुष के बदलते सम्बन्ध का परिदृश्य है । उसमें मध्यवर्गीय आर्थिक विषमता से उपजी सामाजिक अव्यवस्था का प्रसंग है । मध्यवर्गीय विषमताओं में प्रमुख आर्थिक विषमता ही है जो व्यक्ति के विकास को

---

1. समुद्र में खोया हुआ आदमी कमलेश्वर ; पृष्ठ 27
2. वही ; पृष्ठ 93

अनेक कारणों से रोकती है या उसे पलायित करती है या फिर समझौता करने को बाध्य करती है । "वास्तविकता तो यह है कि हम सब टूटे हुए व्यक्तित्व के लोग है । हमारे स्वाभाविक गठन और व्यक्तित्व को कुछ इस तरह मरोड़ दिया गया है, जैसे गीली मिट्टी से बनी सुन्दर मूर्ति को कोई अत्यन्त निर्दयता से मरोड़ डाले । इस तरह की कुछ हमारी सूरतें हो गयी हैं । हम देखते कहीं है, चलते कहीं हैं और वास्तविकता कुछ और है । हर जगह समझौता करना पड़ता है, हर जगह झुकना पड़ता है, वर्ना क्या करे ? कहाँ जाएँ ।"[1] इसलिए उसके जीवन को कोई निर्दिष्ट दिशा नहीं होती है । भटकन उनकेलिए अभिशाप है । आन्तरिक भटकन उन्हें बिखेरता है । हमारे सामाजिकविधान में उससे कई प्रकार की टकराहटें होती हैं । मूल्यों का विघटन इसका पहला प्रतिफलन है । जीवन-दिशाओं का खो जाना मध्यवर्गीय जीवन का सब से बड़ा अभिशाप है जिससे समझौता कर स्त्री और दृढ़ हो जाती है । वह रूढ़ियों से भी समझौता करती जाती है । परिणामस्वरूप संत्रास का जन्म होता है, अविश्वास के बीज अंकुरने लगते हैं । पर इसका अन्दाज़ पुन: पुरानेपन में खिप जाना होता है । "आज की समाजव्यवस्था में जीवन का संघर्ष इतना विषम और कठिन हो गया है कि स्वतन्त्र रूप से उसके व्यक्तित्व का विकास हो ही नहीं पाता । भगवान, धर्म, नैतिकता, समाज-व्यवस्था, आदर्श सभी के प्रति एक अविश्वास, एक भयंकर अविश्वास हमारा नस-नस में समाया हुआ है, क्योंकि उस सबका हमने निर्मम रूप से विश्लेषण कर डाला है । कहीं पुराने को नये से बदलने के जोश में हम पुराने से भी खराब तो नहीं लिये ले रहे । ?"[2]

मध्यवर्गीय जीवन के उखड़ेपन का यही कारण है । बदलाव अगर विपरीत दिशा में हो तो यह तबदीली सम्भव है ।

---

1. उखड़े हुए लोग राजेन्द्र यादव ; पृष्ठ 225-26
2. वही ; पृष्ठ 228-29

उपन्यास में प्रेम और विवाह को नये ढंग से देखने और समझने के संकेत है । ये संकेत नयी सामाजिक आकांक्षा के परिणाम है । "जहाँ दोनों के व्यक्तित्व एक दूसरे पर लदे नहीं, एक दूसरे से दबे नहीं और एक दूसरे को खा न जाए ।" [1] "आज तो स्त्री के श्रम का उचित मूल्य ही नहीं आंका जाता और शरीर को खिलौना बना दिया गया है और यह रूप तो आर्थिक समानता के ही युग में सम्भव है कि स्त्री-पुरुष अपनी वास्तविक स्वतन्त्र इच्छाओं को महत्व देकर ही विवाह के बन्धन में बँधे ।"[2]

उखड़ेपन के बावजूद मध्यवर्गीय जीवन में इस प्रकार के कुछ संकेत मिल जाते हैं जो हमारी सही सामाजिक दृष्टि के विकसित होने का प्रमाण है । स्त्री को उसके अपने सन्दर्भ में देखते हुए, विवाह को बोझ के रूप में न परिणत करने की दृष्टि के पीछे हमारे सामाजिक दृष्टि का एक गतिशील पक्ष है ।

"यह पथ बन्धु था" उपन्यास में नरेश मेहत्ता ने सामाजिक विकृति, पारिवारिक विघटन, बदलते हुए मानवीय सम्बन्ध, आर्थिक व्यवस्था का खोखलापन आदि का चित्रण किया है । यह उपन्यास व्यक्ति के अपूर्ण स्वप्नों और खण्डित आदर्शों की कथा कहता है । अपने स्वप्नों तथा आदर्शों के पूरा न होने पर व्यक्ति की टूटन केवल उसकी अपनी ही नहीं बल्कि वह उसके पूरे सामाजिक परिवेश को प्रभावित करती है । "यह पथ बन्धु था का ओधार इसी टूटन का प्रतीक है और ओधार से जुड़े हुए सारे सही लोग - उसकी पत्नी, पिता-माता, बेटी आदि विषम परिस्थितियों में अपनी मानवीय संवेदना और स्वप्न-शीलता लिये टूटन और थकान के इसी अहसास को घनत्व प्रदान करते है । ओधार के टूटने की कथा परिवार और समाज के टूटने की भी कथा बनती चलती है "[3]

---

1. उखड़े हुए लोग राजेन्द्र यादव ; पृष्ठ 28
2. वही ; पृष्ठ 23
3. आजकल ; अगस्त 1972, पृष्ठ 13

आर्थिक विषमता का फैला हुआ जाल पारिवारिक जीवन को खास कर संयुक्त परिवार को विनष्ट कर देता है । उसमें सम्बन्धों की ऊष्मलता नष्ट होने लगती है । सम्बन्धों के आदर्श के पीछे आत्मीयता को कड़ी है । पर जब सम्बन्ध निरन्तर आर्थिक कठिनाइयों में जूझता है तो अनात्मीयता सिर उठाने लगती है । मूल्य विघटन का एक अन्य प्रमुख कारण यथार्थ के प्रति पलायनवादी दृष्टि है । जब तक व्यक्ति अपने परिवार के यथार्थ को उसके सही सन्दर्भ में लेता नहीं है तब तक वह पलायनवादी ही समझा जाएगा । ऐसी मानसिकता के ऊपर कठिनाइयों का बोझ जब गिरता है भटकन शुरू होती है, याने पलायन का वास्तविक दौर शुरू होता है । हमारे समाज ने यथार्थ से बढ़कर परिवार को लिए अन्य तथ्य स्पृहणीय समझा है । यह हमारी सामाजिक दृष्टि की विकलता है । यथार्थ का अभाव उस विकलता को और अधिक विकृत कर देता है । डॉ॰रामदरश मिश्र ने इस उपन्यास को "मध्यवर्ग के टूटते हुए संवेदनशील व्यक्ति और उसके मानसिक उद्वेलन की अनुभूति गाथा" कहते हुए टिप्पणी की है "आज का एक ईमानदार प्रबुद्ध और साधनहीन मध्यवर्गीय व्यक्ति अपनी निजता को बचाता हुआ, अपने को परिवेश से जोड़ता हुआ और जोड़ने की प्रक्रिया में निरन्तर टूटता हुआ चलता है । उसके पास एक स्वप्न होता है, अभिमान होता है, अपने को सार्थक करने के लिए जो पग-पग पर आहत होता है, टूटता है । मूल्य तथा सार्थकता का बहुत बड़ा स्वप्न लेकर चलनेवाला व्यक्ति अन्त में अपने को चारों ओर से हारा हुआ अकेला और अजनबी पाता है ।"[1]

अन्धेरे बन्द कमरे में पति-पत्नी के आपसी जीवन - दाम्पत्य - की समस्याओं को विभिन्न कोणों से उठाया है । उनमें दो बातें समाजशास्त्रीय सन्दर्भ में मुख्य है - एक स्त्री स्वतन्त्रता का पक्ष और पुरुष की सनातनी दृष्टि । इन दोनों की टकराहट होती है । आधुनिक समाज की तह में स्वतन्त्रता और अस्वतन्त्रता की टकराहट में ऐसे आयाम अक्सर मिलते हैं ।

1॰ आधुनिक हिन्दी उपन्यास डॉ॰ नरेन्द्र मोहन ; पृष्ठ 68

राजेन्द्र यादव का "सारा आकाश" उपन्यास अनेक स्तरों पर मध्य-वर्गीय जीवन की बारीकियों को छूता है । एक ओर उपन्यास में संयुक्त परिवार की अनेक समस्याएँ हैं तो दूसरी ओर उससे अलग चरमराते अनेक व्यक्ति हैं ।

संयुक्त परिवार को बनाये रखने की पुरानी मान्यता का परिवेश "सारा आकाश" में है । लेकिन इस मान्यता का विरोध और टूटन के चित्र सर्वत्र हैं । समर का बड़ा भाई मासिक वेतन पाने वाला व्यक्ति है । लेकिन उसकी आमदनी से आठ-दस सदस्यों का रोज़खर्च निभा नहीं पाता । इस कारण परम्परा के अनुसार छात्र समर का विवाह अपनी इच्छा के विरुद्ध पढ़ी-लिखी प्रभा से होता है । परिवारवाले यही चाहते हैं कि दहेज स्वरूप में बड़ी रकम मिलेगी और वह घर के आर्थिक अभाव को सुधारने में सहायक होगी । पर समर आधुनिक विचार वाला है । दहेज लेने के पक्ष में वह नहीं है । अपनी इच्छा के विरुद्ध उसे दहेज लेना पड़ता है । वह इस स्थिति से मुक्त नहीं हो पाता । परिवार की इन घुटती परिस्थितियों केलिए भले ही हम संस्कृति की दुहाई दे फिर भी उसमें आधुनिक मानवीय दृष्टि अनुपलब्ध है । शिरीष के ख्याल में "हमारे ये पुरखे खुद गोबर संस्कृति के अजायबघर थे । हम उनकी सन्तान हैं, इसलिए सिर्फ भुस के पुतलों की सेनाएँ हैं - जो सिर्फ या तो जलना जानती हैं या जगह को कूड़े-कचरे से भरना, तो यों ही एक दिन जल-जल कर खाक हो जाएगी ।"[1] आदमी को विकास करना चाहिए । उसे आगे की ओर बढ़ना चाहिए । व्यक्ति के विकास की रुकावट का कारण यही है कि व्यक्ति संस्कारों की मज़बूत जकड़ में जकड़ा हुआ है । संस्कृति रेल के डिब्बे में आराम से बैठे हुए मुसाफ़िरों की तरह होती है । वे नये मुसाफ़िर को भीतर नहीं आने देते । "एक बार जहाँ आपने अपने आपको भीतर वालों से स्वीकृत कराया कि सारा विरोध समाप्त हो जाता है । आप भी उनमें से एक हो जाते हैं लेकिन यहीं एक मुसीबत

---

1. सारा आकाश राजेन्द्र यादव ; पृष्ठ 205

और है । जहाँ आप भीतर वालों में से एक बने कि आप भी दूसरों की तरह नये आने वालों का विरोध शुरू कर देते हैं ।"[1] नयी और पुरानी मान्यताओं का यह संघर्ष चलता रहता है । रूढ़ियों को तोड़ डालने में पारम्परिक व्यक्ति असमर्थ होता है । लेकिन बाहरी वातावरण के बदलाव के कारण या बदलते जीवन मूल्यों के कारण या अन्य सामाजिक, राजनीतिक परिवर्तनों के कारण समाज के ढाँचे में परिवर्तन होते ही रहते हैं जिनका प्रभाव पारिवारिक परिवेशों पर भी पड़ता है । इस प्रभाव के कारण संघर्ष अनिवार्य हो जाता है । लेकिन संघर्ष का इच्छित फल तो नहीं मिलता । फिर भी परिवार में घुटन का अनुभव होता है । संघर्ष के इस समाजशास्त्र को राजेन्द्र यादव ने बखूबी प्रस्तुत किया है ।

पुरानी मान्यताओं के अनुसार स्त्री शिक्षा प्राप्त नहीं कर सकती थी । प्राचीन पंथी लोग पढ़ी-लिखी लड़की को लाने से हिचकते थे । उनकी धारणा थी कि स्त्री पुरुषों को प्रसन्न रखने केलिए बनी है । प्रभा का शिक्षित होना उसके लिए मुसीबत बन जाती है जो गाँवों में जाकर औरतों को पढ़ाने, पैदल सारे हिन्दुस्तान का टूर करने की योजना बनाया करती थी, वह चूल्हे-चक्की के समीकरण में बन्द हो जाती है । वह भूल जाना चाहती है कि वह पढ़ी-लिखी है । लेकिन वह अपनी पढ़ाई-लिखाई छिपा नहीं रख सकती । समर एक बार यूँ ही उसके पढ़े-लिखे होने की बात कह बैठता है, तब उसका क्षोभ मुखर उठता है - "बताओ इस पढ़ने-लिखने को कहाँ ले जाऊँ ? माँ-बाप ने पढ़ा दिया तो क्या करूँ ? जो कुछ पहला पढ़ा-लिखा था, सब तो भुला दिया । किसी को घर में आज तक पढ़ने-लिखने का घमण्ड दिखाया ? "[2] आधुनिक होने पर भी समर में भी उसी पुरानी संस्कृति की जड़ जमकर स्त्री-शिक्षा के सम्बन्ध में विद्यमान है । यही नहीं घर की अन्य स्त्रियाँ इतनी पढ़ी-लिखी भी नहीं । इस कारण उसमें

1• सारा आकाश राजेन्द्र यादव ; पृष्ठ 204
2• वही ; पृष्ठ 119

अहम भावना पैदा होती है और शिक्षित प्रभा को नीचा दिखाने की निरन्तर कोशिश करती हैं ।

रूढ़ियों से जकड़े हुए परिवार के एक अन्य आयाम को दिखाने केलिए राजेन्द्र यादव ने इस उपन्यास में समर और प्रभा के सम्बन्ध का एक विशेष पहलू को लिया है । प्रभा का पढ़ी-लिखी होना इस परिवार की दृष्टि में स्पृहणीय बात नहीं है । पुरुष की तुलना में स्त्री का पढ़ी-लिखी होना अवांछित समझने वाला परिवार कभी भी रूढ़ियों से मुक्त नहीं हो सकता । इसमें उस पारिवारिक संस्कार में छिपी अनैतिकता व्यक्त होती है । "हमारे घर के लोग बे-पढ़े हैं और यह मैट्रिक तक पढ़ी है । शायद यही गुमान इसे हो गया है । निश्चय ही यह अपने को बहुत समझती है । यह यों ही खड़ी रही और मैं गुस्से से उठकर सीधा बैठ गया । बेशर्म । यही आजकल की शिक्षा है ? - न किसी का लाज, न हया । समझती है, दूसरे लड़कों की तरह मैं इसे मनाऊँगा, खुशामद करूंगा ? हूँह, सो खातिर जमा रखे । क़यामत तक तो यह मौका आएगा नहीं । पहले मैं ने सोचा था कि हम लोग शिक्षित है, समझदार हैं । आपस में बातें करके अपने को अधिक से अधिक योग्य बनाने की ओर ध्यान देंगे ।"[1] "उफ़ ! कितना दम्भ, एक-एक शब्द में जैसे तेज़ाब भरा है । यह शायद दूसरी बार इतना साफ़ उसका स्वर सुना है । कैसा उजड्ड लहजा है । इस कटार जैसी तीखी वाणी के सामने ही मैं झुकने जा रहा था ? इसी के ... ? कैसे अच्छे मौके पर रक्षा की है ईश्वर ने । सारी ज़िन्दगी रोता रहता । समझना है मुझे इस दम्भ को ही समझना है । ज़रा सा पढ़ क्या ली, अपने को खास खुदा ही समझने लगी । और क्या खाक पढ़ी है । भाभी ने ठीक कहा था - बड़ा घमण्ड है अपने पढ़ने का ।"[2] मध्यवर्गीय परिवारों की टूटन का यह भी एक कारण है । वस्तुत: इसमें शिक्षा की बात नहीं है अपितु पुरुष पर आधारित सामाजिक दृष्टि का पक्ष मुख्य है ।

---

1. सारा आकाश राजेन्द्र यादव, पृष्ठ 25
2. वही; पृष्ठ 59

स्त्री के आधार पर मूल्यों को संस्थित नहीं किया गया है । उपन्यास का यह पहलू समाजशास्त्रीय दृष्टि से काफ़ी मूल्यवान है ।

समर की बहन मुन्नी का पारिवारिक जीवन भी परम्परागत मान्यताओं से मुक्त नहीं है । उसका पति सम्पट और कामातुर है । वह निरन्तर मुन्नी से अत्याचार करता रहता है । यह मानकर भी मुन्नी को ससुराल भेजने की मानसिकता के पीछे पुरानी दकियानूसी विचारों का प्रभाव है । "तेरी भलाई केलिए ही तो कर रहे हैं बिटिया । वहाँ अपना घर है, तू नहीं सम्भालोगी तो फिर बिगड़ेगा । तेरी भलाई इसी में है, बेटी । वहाँ बिरादरी में बदनामी फैलती है, तब लोग उँगली उठाते हैं, किस-किस का मुँह रोकेंगे ?"[1] इस उद्धारण में स्त्री उत्पीड़न है । स्त्री का अत्याचार स्त्री के ऊपर होता है । एक स्त्री का दूसरी स्त्री के उत्पीड़न केलिए बाध्य करनेवाली हमारी पारिवारिक स्थितियों के पीछे पुरुष निर्मित मूल्य ही है । उपन्यास का यह प्रसंग हमारे निम्न मध्य-वर्गीय परिवारों की त्रासदी का कारण है जिसका सामाजिक सन्दर्भ सामन्तीय संस्कार से युक्त है । "शादी का रखा है पत्थर । तू क्या कहीं चला गया था ? कौन सा ज़माना आया था शादी में ? और कितने जन्म हो गये शादी को कि उसकी बात याद निकला रहा है ? क्यों रे, तब की सब चीज़ें अभी तक रखी हो होंगी ? मुन्नी को नहीं दिया कुछ जाते वक्त ? यह गयी थी तब इसे कुछ नहीं दिया ?"[2]

रमेश बक्षी के "बैसाखियों वाली इमारत" शीर्षक उपन्यास में व्यक्ति-व्यक्ति के सम्बन्धों का द्वन्द्व, पारिवारिक सम्बन्धों का तनाव, टूटन और व्यक्ति के अहं के चित्र रूपायित है । नायक पत्रकार केलिए प्रेम, विवाह, परिवार और वैवाहिक सम्बन्ध औपचारिक मात्र है । उसकेलिए ये बातें घृण्य हैं । पति-

---

1. सारा आकाश राजेन्द्र यादव ; पृष्ठ 59
2. वही ; पृष्ठ 125

पत्नी, प्रेमी-प्रेमिका, पिता-पुत्र किसी भी सम्बन्ध को वह सहज नहीं मान पाता । न तो वह इन सम्बन्धों को झटक पाता है, और न ही सहज स्वीकार पाता है । वह घोर अहंवादी और व्यक्तिवादी है । वह पत्नी को सन्तुष्ट नहीं कर पाता है और प्रेमिकाओं को भी । वह स्वयं मनोद्वन्द्व, अस्थिरता और अशान्ति का प्रमाण है ।

उपन्यास का पत्रकार पति-पत्नी सम्बन्ध को शारीरिक सम्बन्ध के स्तर पर स्वीकारती है । उस केलिए प्रेम एक दिमागी विलास है । पैर के जूते-चप्पल भी प्रेम से महत्वपूर्ण है । "प्रेम महज दिमागी विलास है, गरम देश में जमायी गयी आइसक्रीम की तरह है, जूते-चप्पल भी प्रेम से ज़्यादा महत्वपूर्ण हैं जिन्हें पहना जाता है ।"[1] "मैं ने तुम से इसलिए शादी नहीं की कि प्रेम-प्रेम के ढकोसले दुहराऊँ - तुमसे शादी की है, मेरा तुम्हारा पति-पत्नी का रिश्ता है - प्रेम नाम की मूर्खता हमारे बीच नहीं है । मैं ने एरेंज्ड मैरिज इसलिए ही की है कि प्रेम का गोरख-धन्धा मुझे बेवकूफ़ लगता है ।"[2] वह अन्य स्त्रियों से भी शारीरिक सम्बन्ध स्थापित करने का इच्छुक है । यों वह मिस जायस से परिचित होता है मिस जायस भी विवाह परम्परा की विरोधी है । वह वर्तमान को ही सर्वस्व और क्षण के महत्व को स्वीकार करती है । "मैं प्यार मुहब्बत में बिलकुल विश्वास नहीं करती । मैं ऐसी पहचान चाहती हूँ जिसका भूत-भविष्य कुछ भी नहीं है । कटे हुए लोग कहीं मिल जाय और मिलकर किसी भी दिशा में खो जाए । मैं इसी को आदर्श मानती हूँ ।"[3] मिस जायस भी पत्रकार के समान प्रेम को केवल ढकोसला मानती है । वर्तमान ही जीवन का महत्व है, वर्त-मान ही जीवन है । उसमें अधुनातन जीवन की मूल्यहीनता एवं दिशाहीनता का स्पष्ट प्रतिफलन है । "कोई मुझे फ्लर्ट कहे तो मैं दावे के साथ कह सकती हूँ

---

1. बैसाखियों वाली इमारत रमेश बक्षी ; पृष्ठ 19
2. वही ; पृष्ठ 23
3. वही ; पृष्ठ 66

कि यह मेरी सबसे बड़ी सामाजिक उपलब्धि है ।"[1]

उपन्यास में पारिवारिक सम्बन्धों का विघटन है । आपसी सम्बन्धों का हृदयहीन सम्बन्ध बुद्धि जीवी व्यक्ति के अहम् को व्यक्त करता है । व्यक्ति-व्यक्ति के संघर्ष का स्वर भी मुखरित है । "हम पति-पत्नी एक दूसरे से कुत्ते-बिल्ली की तरह लड़ रहे हैं । माँ-बाप-भाई, परिवार सारे-सारे रिश्तों से परिचित होने पर भी एक दूसरे से हम ऐसे कट गये हैं कि कोई पतंग भी वैसी हृदयहीनता से न कटे ।"[2] पारिवारिक सम्बन्धों में भावात्मकता के स्थान पर बौद्धिकता के समावेश ने पारिवारिक मूल्यों को परिवर्तित किया है । नायिका के वक्तव्य में नये पारिवारिक मूल्य प्रकट है । "मैं आपको इटक नहीं सकती । इसलिए कि मेरे मूल्य और तर्क और मेरी दृष्टि आप से अलग हो कर कुछ सोचने को तैयार ही नहीं है । अन्तर केवल इतना है कि बिना कुछ सोचे-समझे इस जोम में आप चाहें जो कर गुज़रना चाहते हैं और मैं जो कुछ भी करना चाहती हूँ उसके लिए रास्ता बनाती हूँ । मैं ने अब तक यदि आपको अस्वीकार किया है तो, और स्वीकार किया है तो ।"[3] स्त्री-पुरुष सम्बन्ध में निहित पावनता को यहाँ तिरस्कृत किया गया है ।

पति का अन्य स्त्रियों के साथ शारीरिक सम्बन्ध को कोई भी पत्नी स्वीकार नहीं कर सकती । ऐसा पति अपनी पत्नी को प्रेम प्रदान नहीं कर सकता । अगर प्रेम प्रदान करे तो उसमें आत्मीयता नहीं होगी । "लोगों के विवाहित जीवन ऐसे खुशनुमा होते हैं कि एक-एक दिन पर कोई चाहे तो किताबें लिखा ले और एक हम हैं चार साल हो गये लेकिन इन चार सालों के बारे में सोचने बैठें तो ज़रा देर में ही जी घबराने लगता है ।"[4] पारिवारिक संगठन को ध्यान में रखकर

---

1. बैसाखियों वाली इमारत रमेश बक्षी ; पृष्ठ 37
2. वही ; पृष्ठ 76
3. वही ; पृष्ठ 159
4. वही पृष्ठ 95

हो विवाह संस्था की स्थापना की गयी है । अंत में पत्रकार ने विवाह कर एक स्त्री के जीवन को बर्बाद किया है । प्रत्येक पुरुष और प्रत्येक स्त्री को विवाहित होने के पहले यह निश्चय कर लेना है कि वह विवाहित जीवन सामाजिक नीति-नियमों की सीमा के अन्दर बिताने में समर्थ है कि नहीं । अगर ऐसा निर्णय लेने में पराजित होता है तो उनका भविष्य भी पराजित हो सकता है । पत्रकार की पत्नी तो परम्परागत विवाह पद्धति पर आस्था रखने वाली है । भारतीय परम्परा की अन्य स्त्रियों के समान उसका भी वैवाहिक जीवन के प्रति सुन्दर संकल्पनाएँ हैं । लेकिन उनकी शादी हुए चार साल हुए, विवाह को याद करने पर उसका जी घबराने लगता है । वैवाहिक जीवन को तनाव और सम्बन्ध विघटन का सामाजिक परिदृश्य इस उपन्यास में उपलब्ध है । महानगरों के परिवेश में मूल्य विघटन का यह पक्ष देखा जा सकता है ।

संस्कारों की टकराहट, स्तरों में अन्तर, पति की अहंवादिता से उत्पन्न परिणामस्वरूप पत्नी स्वतन्त्र जीवन बिताने का निर्णय कर लेती है । इस निर्णय पर पति अनमना रहता है । पति पत्रकार के व्यक्तित्व और अस्तित्व को ठुकरा कर पत्नी निकल जाती है । "मैं जाते-जाते एक असन्तुष्ट और जलती हुई याद तो इस घर में छोड़ ही जाऊँगी और वैसे ही याद साथ में भी ले जाऊँगी ।"[1] उसके पति का प्रेम एकनिष्ठ नहीं, भटका हुआ है । "पत्नी के नाम और ख्याल भर से जो नाराज़ विक्षोभ मेरे मन में पैदा होता है उसी के कारण वसुधा से मैं जा टकराया था ।"[2] "शराब तो पीते हो, रोज़ रात को किसी वेश्या के कोठे पर चले जाइए । आप घर को धर्मशाला समझ सकते हैं, बीवी को वेश्या नहीं समझ सकते ।"[3]

---

1. बैसाखियों वाली इमारत रमेश बक्षी ; पृष्ठ 97
2. वही ; पृष्ठ 31
3. वही ; पृष्ठ 49-50

आज की स्त्री ने अपने व्यक्तित्व को स्वरूपित किया है । इसलिए वह पति का निर्णय ले कर पति को छोड़ कर चली जाती है । उसके इस निर्णय में पुराने पारिवारिक विचारों के प्रति विद्वेष प्रकट है । इस निर्णय पर उसे निराशा नहीं । वह आत्महत्या के पक्ष में भी नहीं है ।

अमृतराय कृत "बोज" उपन्यास मध्यवर्ग का जीवन्त चित्र है । इसमें अनेक पारिवारिक स्थितियाँ अंकित है । इसमें मध्यवर्गीय संस्कारों, रूढ़ियों, मान्यताओं, परम्पराओं के दायरे को तोड़ने का प्रयास भी है । "पारिवारिक जीवन के, प्रेम तथा विवाह के स्वरूप के, सास-बहु के संघर्ष के, टूटते हुए संयुक्त परिवार के तथा व्यक्तिवादी दृष्टिकोण के विकास तथा समाजवादी जीवन दर्शन की विजय के विविध चित्र है ।"[1] संयुक्त परिवार के विघटन के चित्र तथा नारी की प्रगति की कथा इसमें है । ये दोनों हमारे समाज के इतिहास से जुड़े तथ्य हैं और हमारी सांस्कृतिक दृष्टि के साथ इन दोनों तथ्यों का सम्बन्ध है । एक का सम्बन्ध हमारे बदलते पारिवारिक जीवन और मूल्य सम्बन्धी दृष्टि से है और दूसरे का सम्बन्ध हमारी विकसित चेतना से है । "बोज" में अमृतराय की दृष्टि मुख्यत: भारतीय शिक्षित नारी के अपने सीमित मध्यवर्गीय दायरों को तोड़ परिवार से बाहर आकर व्यापक जन-जीवन की आशा-निराशा और सुख-दुख के साथ तन्मय और समर्पित जीवन को स्वीकार करने की बौद्धिक और भावनात्मक प्रक्रिया को चित्रित करने की ओर है ।"[2] सत्य और उषा समाज की रूढ़ियों, पारिवारिक बन्धनों, मान्यताओं को नकार कर संयुक्त परिवार की टूटती लाश में से अणु परिवार की स्वस्थ नींव की स्थापना करते हैं । साथ ही परिवार के सीमित दायरे से, मध्यवर्गीय संस्कारों से निकल कर समाज की प्रगति में क्रियान्वित होकर, नये मूल्यों की स्थापना करते हैं । अत: उपन्यास में समाज का व्यक्ति के संघर्ष के साथ-साथ व्यक्ति का व्यक्ति से और व्यक्ति का स्वयं से संघर्ष है,

---

1. हिन्दी के राजनीतिक उपन्यासों का अनुशीलन:ब्रजभूषणसिंह आदर्श; पृष्ठ 37।
2. उपन्यास स्थिति और गति :चन्द्रकान्त बान्दिवडेकर; पृष्ठ 386

जिसका परिणाम सुखमय भविष्य है ।

"बूँद और समुद्र" अमृतलाल नागर का उपन्यास है जो व्यक्ति के सीमित परिवार और समाज के संघर्ष को स्पष्ट करता है । परिवार और समाज के प्रति व्यक्ति का सम्बन्ध अटूट है । परिवार और समाजमें रहते हुए व्यक्ति का संघर्ष, प्रतिकूल परिस्थितियों में उसका मानसिक तनाव, रूढ़ियों का विद्रोह, परम्पराओं की स्वीकृति, दूसरी ओर परम्पराओं का लोप का विरोध, नवीन मान्यताओं के प्रतिस्थापन आदि चित्रण इस उपन्यास में है । साथ ही परम्परा-गत रूढ़ मान्यताओं का टूटना और नयी आस्था का उदय स्थापित है । एक ओर प्राचीन जर्जर दीवारें ढह रही हैं, तो दूसरी तरफ़ नयी मान्यताओं का आलोक उदित हो रहा है । उपन्यासकार ने बदलते हुए मध्यवर्गीय समाज की पारिवारिक, आर्थिक, सामाजिक, वैयक्तिक मान्यताओं का विस्तृत चित्र अंकित किया है । लेखक का मन्तव्य है - "इस उपन्यास में मैं ने अपना और आपका, अपने देश के मध्यवर्गीय नागरिक-समाज का गुण-दोष भरा चित्र ज्यों का त्यों आंकने का यथामति, यथासाध्य प्रयत्न किया है ।"[1] आज का मध्यवर्ग, खास करमध्यवर्गीय स्त्री आर्थिक विषमता से जर्जरित और शोषित है । इस उपन्यास में नायिका वनकन्या की भाभी और महिपाल की पत्नी का जीवन इसका उदाहरण है । वनकन्या निम्न-मध्यवर्ग के परिवार की लड़की है । बचपन से ही उसने आर्थिक घुटन और सामाजिक लाचारी को देखा है । इस आर्थिक घुटन और सामाजिक लाचारी से पारिवारिक टूटन भी हुई है । स्त्रियों के भ्रष्टाचार की समस्या को सुलझाने के प्रयत्न में वनकन्या और सज्जन निरत हैं । मध्यवर्ग की अधिकांश स्त्रियाँ आर्थिक विषमता में पिसकर घुण्ठित जीवन व्यतीत करती हैं । सज्जन "महिला सेवा मण्डल" में बढ़ते हुए भ्रष्टाचार को दूर करने के प्रयत्न में जब उस मण्डल के अन्तरंग से परिचित होता है, तो उसे मालूम होता

---

1. बूँद और समुद्र अमृतलाल नागर ; भूमिका

है कि मध्यवर्ग की अधिकांश स्त्रियाँ महिला मण्डल में विभिन्न कामों के बहाने वेश्यावृत्ति कर रही हैं । इस वेश्यावृत्ति के पीछे परिवार की टूटन काम करती है । आर्थिक तंगी ही उसका मूल कारण है । इस मण्डल मे मध्यवर्ग की स्त्रियों की संख्या अधिक है जिसका एकमात्र कारण उनकी महत्वाकांक्षा और आर्थिक लाचारी हैं । लेखक ने मध्यवर्गीय स्त्री के भ्रष्टाचार की समस्या को विस्तार से प्रस्तुत किया है । "मण्डल में कम आमदनी वाले मध्यवर्ग की वे युवतियाँ आती हैं जिनकी चाहत के सपने जमाने के प्रभाव से रियासत भरे होते हैं । मैके में सोचती है कि पति के पैसे से ऐश करेगी मगर आम तौर पर ये नसीब सबको नहीं मिलता । अधिकतर युवतियाँ अपने पतियों की आर्थिक सीमाओं से बँधकर त्रस्त रहा करती है ।"[1] आधुनिक युग की एक सशक्त समस्या की ओर उपन्यासकार ने प्रकाश डाला है । स्त्री के आश्रित होने की समाजशास्त्रीय समस्याएँ इस उपन्यास में कथा में परिणत हुई है । यह एक सीमित पारिवारिक समस्या नहीं है, बल्कि यह हमारी वर्गीय दृष्टि या यों कहे सामन्तीय दृष्टि की गहरी स्थिति को व्यक्त करने वाली समस्या है ।

उपरोक्त विश्लेषण से इसका पता आसानी से लग जाता है कि इन उपन्यासों ने किन-किन समाजशास्त्रीय पक्षों को प्रस्तुत किया है । प्रत्येक उपन्यास की विषयवस्तु किसी सामान्य सामाजिक स्थिति तक सीमित न होकर हमारी गंम्भीर स्थितियों का मानचित्र प्रस्तुत करती और इस प्रकार वह हमारे समाजशास्त्रीय प्रसंगों को स्पष्टता के साथ विन्यसित करती है । इन कथाओं के माध्यम से ऐसा अवश्य प्रतीत होता है कि हमारा समाज सोद्देश्य हो रहा है प्रगति के पथ पर अग्रसर है । परन्तु यह प्रतीति भी होती है कि हमारा समाज कहीं रुग्णावस्था से मुक्त भी नहीं है । यह रुग्णावस्था दरअसल समाज में विद्यमान पुरानी मान्यताओं और उनकी सामन्तीय दृष्टि की है । पर प्रीतिप्रद बात यह है कि इन उपन्यासों में पुरानेपन के प्रति विरोध अधिक है । प्राचीनता को लेकर

1• बूँद और समुद्र अमृतलाल नागर ; पृष्ठ 526

द्वन्द्व भी उपस्थित हुआ है । अत: यह कहा जा सकता है कि प्रगति अवनति और द्वन्द्वात्मक स्थिति का सही-सही समावेश परिवार कथा केन्द्रित उपन्यासों में हुआ है ।

अणु परिवार की समस्याओं का समाजशास्त्र

व्यक्ति की अस्मिता - पुरुष और स्त्री की अस्मिता का समाजशास्त्र

समाज में पुरुष और स्त्री परस्पर पूरक होकर भी दो स्वतन्त्र इकाइयाँ हैं । दोनों का स्वतन्त्र अस्तित्व है, दोनों की स्वतन्त्र अस्मिता है । परम्परा से पितृसत्तात्मक समाज में पुरुष का प्रभुत्व रहा तो उसके सामने आत्मसम्पन्नता, आत्मविश्वास अर्जित करने, अपना पहचान बनाने के अधिक अवसर रहे, इसलिए अपनी अस्मिता स्थापित करने के भी । व्यक्तिगत अस्मिता ही तो फिर जाति-गत अस्मिता बनाती है । इसलिए जातिगत रूप में पुरुष के जीवन का सर्वोत्तम बाहरी अनुरंजित क्षेत्र में व्यक्त हुआ, स्त्री के जीवन का अधिकतम घर के सुरक्षित क्षेत्र में । पुरुष कर्मठ बना, स्त्री कुण्ठित हुई । इसलिए दोनों को एक दूसरे की समान ज़रूरतों के होते हुए भी समूह रूप में एक अपने अहं की चेतना से मण्डित हुई, दूसरी अपनी आन्तरिक और आरोपित हीन भाव से खण्डित होती रही ।

परम्परागत सामन्तीय विचारों के प्रभाव से स्त्री आज भी पति की गुलाम रहने को बाध्य है । स्त्री की दासता का यही कारण है कि वह पुरुष के प्रति आसक्त है और उसके द्वारा शासित-संरक्षित होने की चाह रखती है । अभी तक बहुसंख्यक स्त्री आर्थिक परावलम्बन की बात एक ओर रखकर, आज की सुशिक्षित, आर्थिक दृष्टि से स्वावलम्बी अकेली स्त्री को भी टटोलकर देखें तो वह शारीरिक, भावात्मक, सामाजिक संरक्षण की वकालत करेगी या चाहकर भी इस चाहत को छिपा नहीं पाएगी ।

स्त्री को मानवी रूप में मान्यता का और स्त्री रूप में ही अपनी अस्मिता की संस्थापना और रक्षा की समस्या आज के समाज में विद्यमान है। स्त्री होने के नाते वह निम्न दर्जे का नागरिक नहीं है। माँ होने के नाते वह पुरुष से ऊपर भी नहीं। पति-पत्नी के नाते दोनों परस्पर समभागी और पूरक है। है। दोनों के पृथक स्वतन्त्र व्यक्तित्व और परस्पर पूरकता की बात प्राकृतिक देन है, आरोपित सामाजिक अवधारणा नहीं।

सृष्टि-निर्माण केलिए स्त्री और पुरुष दोनों अपने आप में अधूरे हैं। प्रकृति ने इसलिए उन्हें परस्पर आकर्षण में बाँध कर एक-दूसरे का पूरक बना दिया है। दोनों की पृथक सत्ता निर्विवाद है। परस्पराश्रय का यह भाव प्राकृतिक रूप से स्थायी नहीं, क्षणिक होता है। इसलिए अधिकांश मामलों में परस्पर निर्भरता भी प्राकृतिक नहीं, सामाजिक बाध्यता है। स्वतन्त्र अस्तित्व का प्रश्न इसी बाध्यता से मुक्ति की मात्रा से जुड़ा है। फिर वह मुक्ति पुरुष को हो या स्त्री को। स्वतन्त्र अस्मिता का प्रश्न पर्याप्त मुक्ति के बाद पर्याप्त आत्मविश्वास और आत्मसम्पन्नता अर्जित कर सकने की सुविधा के साथ जुड़ा है।

घर और बाहर स्व-अर्जित गुणों और अधिकारों से सम्पन्न स्त्रियों की स्थिति बेहत्तर नहीं है। आज घरों में स्त्रियाँ कर्ता-धर्ता हैं। अपनी अस्मिता के साथ वे पर्याप्त स्वतन्त्र भी हैं। यद्यपि अपेक्षाकृत अधिक सम्पन्न, अधिक योग्य स्त्री की स्थिति आज परिवार व समाज में अधिक अच्छी है फिर भी उनके परिवारों का विघटन होता है। पति-पत्नी को प्यार प्रदर्शन केलिए अधिक एकान्त मिल रहा है, वे वृद्धों की रोक-टोक से प्राय: मुक्त हो चले हैं, दोनों शिक्षित होने से परस्पर मित्र हैं, सहयोगी हैं। दोनों की सम्मिलित आय से घर का आर्थिक स्तर ऊँचा उठा है। लेकिन उनमें प्रेम और सहयोग की जगह परस्पर सन्देह, अविश्वास, आरोप-प्रत्यारोप, स्वार्थ और प्रतिस्पर्धा की स्थितियाँ विकसित हो रही है। आधुनिक युग में यह एक शाश्वत समाजशास्त्रीय

पक्ष है और इसके कई आयाम हैं ।

स्त्री को पहले इस भागीदारी केलिए अपेक्षित योग्यता प्राप्त करने से वंचित रखा गया । उसकी इस सर्वाधिक महत्वपूर्ण भूमिका को मान्यता न देकर उसे गौण माना गया । घर से बाहर जाकर कमाने की स्थिति से संरक्षक के नाते पुरुष में अहंभाव का विकास हुआ और संरक्षिता के नाते स्त्रियों में हीन भाव पनपता चला गया । यहाँ तक कि इस हीन भाव से ग्रस्त स्त्री ने अपनी मातृशक्ति को भी भुला दिया और माँ के नाते बेटी-बेटे में भेद-भाव कर, लड़कियों में हीनता ग्रन्थि उपजाने व लड़कों के अहं-भाव को दुलार कर उनमें उच्चता ग्रन्थि का विकास करने में योग दिया ।

अणु परिवार भारतीय समाज मे सामाजिक विकास का अंग है । नगरीकरण और वैज्ञानिक विकास ने हमारे परिवारों के पुराने रूप को मजबूरन परिवर्तित किया है । अणु परिवार का यही इतिहास है । लेकिन अणु परिवार ने जिस मात्रा में व्यक्ति के व्यक्तित्व विकास में योग दिया है उसी मात्रा में उसे संकुचित भी कर दिया है। उसी प्रकार अणु परिवार की समस्याएँ व्यक्तियों की समस्याएँ नहीं है बल्कि हमारी वैचारिकता की विपन्नता की सूचक है । अणु परिवारों में उत्पन्न पति-पत्नी की समस्याएँ कुण्ठित व्यक्तियों की वैयक्तिक निरंकुश समस्याएँ मात्र नहीं हैं । वे असल मे हमारे तथाकथित विकास के बावजूद मानसिक स्थिति में बजिनद् अवस्था में विद्यमान प्राचीनता की दिशाएँ हैं । अणु परिवार की समस्याओं को इसी परिप्रेक्ष्य में देखना है । पति-पत्नी सम्बन्ध का विघटन व्यक्ति का अतिक्रमण कर सामाजिकता का परिचय देने लगता है । अणु परिवार की समस्याओं में निहित समाजशास्त्रीय स्थिति व्यापक सामाजिक विश्लेषण की अपेक्षा रखती है ।

बच्चों की समस्याओं का समाजशास्त्र

यद्यपि अणु परिवार की विविध प्रकार की समस्याएँ हैं फिर भी बच्चों की समस्या अणु परिवार में प्रमुख है । आदर्शयुक्त नवीन पीढ़ी के सृजन के पीछे बच्चों की देख-भाल की समस्या सन्निविष्ट है । अणु परिवार की विशेष स्थिति के कारण बच्चों को विभिन्न प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़ता है । पहला है बच्चों का एकाकीपन । एकाकीपन तब बढ़ता है जब माता-पिता का सम्बन्ध मधुर नहीं होता है । तब बच्चे निरालम्ब महसूस करते हैं । वे बच्चे अपने को दूसरे घर के बच्चों के साथ तुलना करते हैं । बच्चे ऐसे अवसरों पर तनाव का अनुभव भी करते हैं । इस प्रकार वे अपने वर्तमान और भविष्य को गतिहीन समझने लगते हैं । उनके व्यक्तित्व पर भी इसका प्रभाव पड़ता है

आधुनिक हिन्दी उपन्यास में अणु परिवार की समस्याओं के शिकार हुए बच्चों की मानसिकता का बखूबी चित्रण हुआ है । मन्नु भण्डारी का "आपका बण्टी" हिन्दी साहित्य का सर्वप्रथम उपन्यास है जिसमें बालक के भाव विकास का अध्ययन किया गया है । माता-पिता की समस्याओं में पिसती हुई सन्तान को किन मनोग्रन्थियों का शिकार हो जाना पड़ता है, उनका अनावरण करते हुए लेखिका ने एक ओर पारिवारिक विघटन की ओर बढ़ते युगलों को चेतावनी दी है और दूसरी ओर कोई भी कदम उठाने से पूर्व वे अपने सामाजिक दायित्व को पहचानें और आवेशपूर्ण व्यवहार को काबू में रखें । यह उपन्यास लेखिका के उपर्युक्त समस्यापूर्ण चिन्तन का ही एक सक्षम अध्ययन है ।

बण्टी के माता-पिता अजय और शकुन का पारिवारिक रिश्ता टूट गया है । पिता घर से अलग रहता है । उनका एकमात्र पुत्र बण्टी अब माता के साथ रहता है । माता-पिता के विघटन से बण्टी बहुत उदास और दुखी है ।

वह संवेदनशील लड़का है । वह दुनिया की हर बात जान लेना चाहता है । उसमें उत्सुकता की भावना है । वह यह भी जान लेना चाहता है कि पापा घर से क्यों अलग रहता है ? वह देख लेता है कि अन्य परिवारों में माता-पिता अपनी सन्तानों के साथ आनन्दपूर्ण जीवन बिताते हैं

बण्टी की समस्या तब उठती है जब शकुन डॉ. जोशी के सम्पर्क में आती है । परिणामतः माता के व्यवहार में परिवर्तन लक्षित होते हैं । बण्टी यह अनुभव करता है कि डॉ.जोशी के आगमन से अपने प्रति दिखाये गये स्नेह-वात्सल्य में बंटवारा हो गया है । बालक-मन की प्रतिक्रिया स्वाभाविक है । बालक-मन इतना परिपक्व नहीं है कि जीवन की समस्याओं की वास्तविकता को धरातल पर देख ले और निर्णय कर ले ।

कृष्ण बलदेव वैद का "उसका बचपन" निम्न-मध्यवर्गीय परिवार के तलख होते जा रहे और टूटनशील वातावरण को चित्रित करनेवाला उपन्यास है । इसमें बीरू नामक बालक की नज़र से अर्थाभाव में टूटते-टूटते पारिवारिक जीवन की संगतिहीनता का चित्र खींचा है ।

उपन्यास का पूरा वातावरण आर्थिक विषमता से जकड़ा हुआ है उससे घर के सभी सदस्य कुण्ठित और व्यथित हैं । कोई भी पात्र इस अवस्था से मुक्त नहीं । बीरू भी घर के वातावरण से कुण्ठित है । आम तौर पर बच्चे अपने पारिवारिक अभावों से मुक्त रहते हैं । लेकिन बीरू के घर का वातावरण इतना जटिल है कि अपनी बाल्यावस्था के बावजूद वह मुक्त नहीं है । बीरू के जीवन के इस जटिल वातावरण के मूल में अर्थ का बराबर अभाव है । "घर मानो जंगल है, अन्धेरे में बना कोई एक मन्दिर है, जिसका एक पुजारी रो रहा हो और दूसरा उसे चुप करा रहा हो ।"[1] बीरू अपने घर के अभावग्रस्त वातावरण

---

1. उसका बचपन कृष्ण बलदेव वैद ; पृष्ठ 14

से त्रस्त है । माँ और बाबा की लड़ाई और मारपीट से, या कभी माँ और दादी के झगड़े से, या फिर माँ और बहन देवी की कटु उक्तियों के वातावरण में डूबा हुआ है । बीरु "इस विष को अपने अन्दर समोता रहता है । फिर कसमसाता हुआ बाहर चला जाता है और नाली के किनारे बैठकर जाने कितनी देर तक धीरे-धीरे रोता है । जब उसका सारा भय, सारी घुटन आँसुओं में बह जाती है और वह खाली हो जाता है, तो वहीं बैठे-बैठे ऊँघने लगता है । ऊँघते-ऊँघते लुढ़क जाता है, तो अचानक उसके मुँह से एक गाली निकल आती है । गाली जो बाबा ने माँ को दी थी, या माँ ने दादी को, या दादी ने माँ को, या माँ ने अपने आपको ।"[1] बीरु गाली से इतना परिचित हो गया है कि गाली, उसकेलिए गाली नहीं रह गयी है । सबों का जीवन ही गाली बन गया है । किसने किसको गाली दी, इससे कोई फर्क नहीं पड़ा है । अपने सहपाठी असलम के सम्पन्न, सुसंस्कृत, स्नेहिल पारिवारिक वातावरण से बीरु परिचित है । बीरु भी ऐसे ऊष्मल वातावरण का आकांक्षी है । उसके अभाव में वह स्वयं दीन-हीन समझता है । इसलिए बीरु को घर की हर एक चीज़ से घिन भी आने लगी है और वह अपने गले में उभरते हुए, गुस्से के बड़े-बड़े गोलों को अन्दर धकेलता, मुट्ठियाँ बन्द करता, बोलता, अपनी आँखों में चटख रही चिन्गारियों की जलन में झुलसता, आखिर अपने घर के दरवाज़े पर आ खड़ा होता है ।"[2]

पारिवारिक विसंगतियों से पारिवारिक सम्बन्धों में जड़ता सी आ जाती है । स्नेह सम्बन्धों की आर्द्रता सूख जाती है । यह उपन्यास जीवन की कटु-तिक्त स्थितियों की तरफ़ देखने केलिए हमें बाध्य करता है । पारिवारिक जीवन की बिगड़ती स्थितियाँ बाल्यावस्था में आवारगी पैदा करती है । कोई भी बच्चा अपने आप आवारा नहीं होता । लेकिन जहाँ स्नेह के स्थान पर गाली

---

1. उसका बचपन कृष्ण बलदेव वैद ; पृष्ठ 21-22
2. वही ; पृष्ठ 111

मिले, वात्सल्य के स्थान पर फटकार मिले तो आवारगी सिर उठाने लगती है । हमारी बस्तियों के जीवन का छुटमुटाना इसी अर्थाभाव का परिणाम है ।

माँ और देवी का झगड़ा भी बोरू की पारिवारिक संकल्पना को तोड़ता है । देवी विवाहयोग्य बन गयी है । माँ-बाप उसकी शादी करने की बात नहीं सोचते हैं । उचित दहेज देने की सुविधा उनके पास नहीं । देवी पड़ोस के युवक नरेश से विवाह करना चाहती है । लेकिन माता देवी की इच्छा पर कुठाराघात करती है । इस कारण से माँ बेटी का दुश्मन बन जाती है । बोरू इन झंझटों से मुक्ति चाहता है । अभावों से गिरफ्त बोरू का संवेदनशील मन बुखार की तेज़ी में भी यही सोच पाता है कि वह "हँसता हुआ ऊपर ही ऊपर उठता हुआ चला जाएगा और आखिर बहुत ऊँचे आसमान पर तारा बन जाएगा, जहाँ से उसे न माँ नज़र आएगी, न बाबा, न देवी, न पारो, न असलम, न हफीज़ा, न स्कूल, न मास्टर, न कुछ ।"[1] भौतिक सुविधाओं के अभाव में परिवार को बनाये रखने वाले मूल्य धीरे-धीरे टूटने लगते हैं । रिश्तों की कोमलता नष्ट होती है । पारिवारिक टूटन का यह दृश्य भले ही हमारे समाज में सुस्पष्ट न हो, वह हमारे सामाजिक जीवन का एक हिस्सा है । मूल्य-विघटन यांत्रिक है । आर्थिक विपन्नता मूल्य-विघटन का एक प्रमुख कारण है । निम्न-मध्यवर्गीय परिवारों में स्थित टूटन का यही कारण है । जब बच्चे इसमें शामिल होते हैं या उन्हें शामिल किया जाता है तो उनका मानसिक गठन डाँवाडोल हो जाता है । व्यक्ति जीवन का बिखराव सामाजिक मूल्य विघटन में परिवर्तित होता है जो कि एक भीषण समाजशास्त्रीय समस्या है ।

"कड़ियाँ" उपन्यास में बच्चों की समस्या का सीधा चित्रण तो नहीं है, सूचना मात्र है । महेन्द्र और सुषमा सम्बन्धों रिश्ते के कारण महेन्द्र -प्रेमिला

---

1. उसका बचपन कृष्ण बलदेव वैद ; पृष्ठ 13।

का दाम्पत्य जीवन तथा पारिवारिक जीवन विघटित होता है । यद्यपि अपने परिवार के विघटित होने से महेन्द्र दुखी नहीं फिर भी वह अपने बच्चे पप्पू के प्रति अधिक सचेत है । वह निर्णय कर लेता है कि अपने पारिवारिक विघटन का कोई भी असर अपने बच्चे पर न पड़े । इसलिए वह पप्पू को परिवार से अलग कर छात्रावास में भर्ती करा देता है । क्योंकि पारिवारिक समस्याओं का बुरा प्रभाव बच्चों पर ज़रूर पड़ता है । उसका इलाज भी पूर्ण रूपेण सम्भव नहीं । यह भी ठीक है कि हमेशा केवल पारिवारिक समस्याओं को बच्चों से छिपा कर नहीं रखा जा सकता । प्रत्येक बच्चा अपने अड़ोस-पड़ोस के पारिवारिक जीवन पर दृष्टि गड़ाये रहता है । जब प्रत्येक बच्चा अपने माता-पिता के साथ खुशी के साथ जीवन बिताता देखता है तो अपने सम्बन्ध में स्वस्थ अनुमान करता है । पिता या माता के अभाव में बच्चे में ज़रूर हीन भावना जागृत होती है । यहाँ नहीं मित्रों से माता-पिता सम्बन्धी विषय पर कटु आलोचना भी सुननी पड़ती है । बच्चों की इस मानसिकता से प्रेमिला परिचित है । इसलिए पति से अलग हो जाने पर भी बच्चे के भविष्य को ध्यान में रखकर पति के पास जाकर पुन: जीवन बिताने की बात वह सोचती है ।

यद्यपि इस उपन्यास में बच्चे पर केन्द्रीकरण नहीं है फिर भी बच्चों की समस्या पर केन्द्रीकरण है। पति-पत्नी के मानसिक भावों में आये हुए परिवर्तन को इसी सन्दर्भ में देखना चाहिए । भविष्य की आशंकित घटना को रोकने का यही समाजशास्त्रीय सन्दर्भ सर्वाधिक महत्वपूर्ण है ।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि हिन्दी उपन्यासों में आये जीवन परिदृश्य को समाजशास्त्रीय दृष्टि से विश्लेषित करते समय हमें बहुत सारी सूचनाएँ मिलती हैं । इनमें मोटे तौर पर मध्यवर्गीय जीवन परिस्थितियाँ मुखर दीखती हैं । उनकी कुण्ठाओं एवं संकुचित विचारों का पारिवारिक जीवन पर प्रभाव पड़ता है । लेकिन समस्या यह नहीं है कि उनकी समस्याएँ उनके परिवार तक सीमित

नहीं होती है । उनका एक बृहत्तर समाजशास्त्रीय पक्ष है । यही नहीं इन परिवर्तनों का समाजशास्त्रीय पक्ष भी है । आज के परिवार में स्वत्व-बोध का पक्ष सशक्त है तो इसका इतिहास काफ़ी पुराना है । नारी की शक्ति बढ़ी है तो उसका इतिहास वृहद है । इस प्रकार परिवार में दिखाई पड़ने वाली प्रत्येक जीवन-परिस्थिति को हम समाजशास्त्र के सन्दर्भ में आंक पाते हैं । एकाध दार्शनिक आयामों से युक्त उपन्यासों को छोड़ दें तो हिन्दी के अधिकांश उपन्यास सामाजिक हैं । परिवार-कथाएँ सभी उपन्यास में नहीं हैं फिर भी बदलते सामाजिक मूल्यों का परिदृश्य हमें इन उपन्यासों में मिल ही जाता है । उपन्यास के आस्वादन में भी इसका अलग प्रयोजन है ।

x x x x x x x x x x x x x x x

उपसंहार

परिवार समाज की लघुतम इकाई ही नहीं बल्कि हमारी सांस्कृतिक दृष्टि को पुष्ट एवं दिशा प्रदान करनेवाला सामाजिक घटक भी है । पारिवारिक जीवन की कल्पना और उसके विकास से उद्भूत होनेवाली परिवार-संस्कृति का दूरगामी प्रभाव प्रत्येक व्यक्ति के जीवन पर पड़ता है तथा हमारा सांस्कृतिक दृष्टिकोण विकास प्राप्त करता है । परिवार की स्थितियों का काफ़ी गहरा प्रभाव व्यक्ति-मन पर पड़ता है । हमारे स्वस्थ विचारों को ज़मीन तैयार करने में परिवार का हाथ है । स्वस्थ विचार परिवार द्वारा प्रदत्त मूल्य है । रुग्ण मानसिकता भी परिवार की देन है । इसका कारण यह है कि हमारे सामाजिक विकास केलिए ज़रूरी मूल्यपरक विचारों का विकास जब तक परिवारों के स्तर पर नहीं होता है तब तक व्यक्ति का विकास सम्भव नहीं है । हमारी संस्कृति के स्पृहणीय मूल्यों का आद्यन्त विकास परिवार के वातावरण में सम्भव है । धीरे-धीरे ये मूल्य व्यक्ति-जीवन के अभिन्न अंग के रूप में विकसित कराने में परिवार का महत्त्वपूर्ण योगदान है । स्वस्थ परिवार में कई व्यक्ति एक साथ विकास पाते हैं तथा हमारी संस्कृति को बहुमूल्य विचार-संपदाओं को प्रोत्साहन भी मिलता है । अत: कहा जा सकता है कि परिवार व्यक्ति को विकसित करने वाला सामाजिक घटक है तो उसी अनुपात में वह सांस्कृतिक दृष्टि को सहज गति देने वाली सामाजिक संस्था भी है । साहित्य ने परिवार का परिवेश इसी अर्थ में स्वीकार किया है ।

परिवार को उसके बृहत्तर आयाम में प्रस्तुत करनेवाली साहित्यिक विधा उपन्यास है । उपन्यास विधा की विशेषता यह है कि उसमें जीवन की तमाम स्थितियों का व्यापक अंकन है । नाटक में परिवार अंकित होता है । लेकिन नाटकीय क्षणों की विशेष प्रवृत्ति के कारण वास्तव में नाटक को पूरी विवृति नहीं दे पाता । अत: उपन्यासों में अक्सर परिवार अंकित और विश्लेषित होता है । यही नहीं उपन्यासकार को इसकी सुविधा भी मिलती है कि वह एक या दो से अधिक पीढ़ी के परिवार को समेट सकता है । वास्तव में होता यह है कि उपन्यासकार परिवार के माध्यम से व्यक्ति-जीवन एवं सामाजिक जीवन को प्रस्तुत कर रहा है ।

हमारे सामाजिक आचरण में परिवार का महत्व निर्विवाद स्वीकृत है । यह कोई सतही मूल्य नहीं है । परिवार को हमने एक स्थायी मूल्य के रूप में स्वीकार किया है । भारतीय समाज में परिवार एक मूलभूत इकाई है । हमारी तमाम सामाजिक स्थितियों को नियन्त्रित करनेवाला तथ्य पारिवारिक जीवन ही है । यह सही है कि हमारे बहुत सारे मूल्य परिवर्तित हुए हैं । हमारे दृष्टिकोण में आमूल परिवर्तन हुए हैं । परिवार के मूल्यों में बिखराव उपस्थित हुआ है । परिवार का बाहरी ढाँचा भी पहले का जैसा नहीं है । ये सभी परिवर्तन समय के प्रवाह के साथ चलते हुए, तथा परिवेश की माँग के अनुरूप विकसित होने के कारण है । स्वस्थ एवं वांछित मूल्यों को अपनाने के लिए अस्पृहणीय मूल्यों को तजना पड़ता है । लेकिन इसमें पारिवारिक मूल्यों का या परिवार मात्र का तिरस्कार नहीं है । भारतीय दृष्टि ने जिस मात्रा में परिवार को स्वीकारा है उसी मात्रा में आज भी परिवार सम्बन्धों हमारी मान्यता सुरक्षित है ।

भारतीय उपन्यासों में, चाहे वह जिस किस की भाषा में रचित क्यों न हो, परिवार अपने पुष्ट रूप में विद्यमान है । भारतीय उपन्यासों को परिवार की कथाएँ कहें तो वह गलत नहीं है । हिन्दी उपन्यास भी उसी परम्परा में रचित और आस्वादित हुए हैं । परिवार की कथा कहते हुए वास्तव में हिन्दी उपन्यास का प्रारम्भ हुआ था । "परीक्षा गुरु" परिवार को उलझन की कथा के रूप में विकसित होकर अन्त में उसे सुलझता हुआ दिखाया गया है । इस प्रकार की परिवार कथाएँ हिन्दी उपन्यास के प्रारम्भिक युग में काफ़ी लिखे गये हैं ।

यह तो स्वीकृत तथ्य है कि प्रेमचन्द से हिन्दी उपन्यास की पुष्ट परम्परा का आरम्भ होता है । अत: उनके उपन्यास में परिवार कथाएँ भी पुष्ट हैं । बहिरंगत: ऐसा प्रतीत हो जाता है कि प्रेमचन्द ने जैसे सभी तथ्यों को आदर्शीकृत किया है, पारिवारिक जीवन को भी आदर्श के पलड़े में रख कर प्रस्तुत किया है । लेकिन उनके आदर्श को भी अपनी मूल्यवत्ता है । इसका कारण यह है कि प्रेमचन्द ने, संयुक्त परिवार के पक्षधर होते हुए भी, व्यक्ति के विकास पर तथा प्रत्येक सदस्य के स्वत्व को महत्व देकर प्रस्तुत किया है । इसीलिए उनके नारी पात्र पुरुष के गुलाम के रूप में अंकित नहीं हैं । तत्कालीन सामाजिक गतिविधियों के तहत प्रस्तुत करने के कारण उनके उपन्यासों के परिवार-अंकन में सामन्तीय परिवेश के सन्दर्भ भी अंकित है । पर उनका उद्देश्य यह दर्शाना नहीं रहा है । उनका उद्देश्य उस सामन्तीय परिवेश में गतिशील विचारों तथा व्यक्ति की त्रासदी का वर्णन करना रहा है, जैसे निर्मला के पारिवारिक जीवन में पुरुषाधिकृत समाज के समस्त अन्तर्विरोध उपस्थित हुए हैं । अत: यह सर्वविदित है कि प्रेमचन्द का पारिवारिक वर्णन आदर्शात्मक है । आदर्श को उन्होंने एक गतिशील दृष्टि के रूप में प्रस्तुत किया है । प्रेमचन्द के पारिवारिक जीवन के चित्रण की सबसे बड़ी खूबी यह है कि वह पूरी जीवन्तता और आत्मीयता के मोह

के साथ अंकित है,। यद्यपि उसमें बोव-डीव में आरोह-अवरोह दर्शित होते हैं ।

प्रेमचन्द के समकालीन उपन्यासकार, खास कर विश्वम्भर नाथ शर्मा "कौशिक", जयशंकर प्रसाद, वृन्दावनलाल वर्मा, चतुरसेन शास्त्री आदि, ने सामाजिक यथार्थ का अवलम्ब लेने के बावजूद परिवार का एक दम आदर्शित रूप ही प्रस्तुत किया है । उनकी आदर्श वादिता तरलीकरण से मुक्त है ।

स्वतन्त्रता के बाद समाज में कई प्रकार के परिवर्तन होने लगे । इसके कई कारण हैं । उनमें से एक है औद्योगीकरण का विकास, शहरी सभ्यता का विकास और शहरों की ओर लोगों का आकर्षण । नये प्रकार के परिवार ने जन्म लिया और नये परिवार में व्यक्ति की स्वतन्त्रता बढ़ने लगी । व्यक्ति स्वातन्त्र्य ने सामाजिक स्वातन्त्र्य के साथ मिलकर सामाजिक प्रतिमानों को बदलने का कार्य किया । इसलिए परिवारों के बाहरी ढाँचे में परिवर्तन धीमी गति से होता दिखाई देने लगता है जब कि आन्तरिक स्तर पर कई पुरानी मान्यताएँ टूटती दिखाई पड़ने लगे । परिवार को लेकर हमारी बहुत सारी पुरानी मान्यताओं में या तो आदर्श के नाम संम्मिलित परिवार से बचाये रखने की इच्छा है या कई परोक्ष सामन्तीय विचारों को सुरक्षित रखने की कटिबद्धता है । अतः पुरानी मान्यताओं के टूटने का अर्थ है उस अवांछित स्थितियों का उद्घटन । इस नयी वैचारिक स्थिति के कारण व्यक्ति-व्यक्ति के आपसी सम्बन्ध को नये सिरे से देखने का उपक्रम शुरू हुआ । यह कहना ज़्यादा उचित लगता है कि परिवार के स्थायी बिम्ब में दरारें पड़ने लगीं और वह टूटने लगा । इसे वैचारिक परिवर्तन कहा जा सकता है । समाज के अन्तरंग स्तर पर होने वाले इस वैचारिक परिवर्तन के प्रभाव को उपन्यासों ने स्वीकार किया है । आधुनिक युग में उपन्यासों के माध्यम से भी कई भंगिमाएँ दृष्टिगत होती हैं तथा वैचारिक भ्रान्ति को नये औपन्यासिक स्थिति के रूप में या नये पात्रों के माध्यम से उपन्यासकारों ने

चित्रित किया है । आधुनिक युग में ऐसे कई उपन्यास हिन्दी में उपलब्ध होते हैं जिनमें परिवार का स्वीकृत रूप चरमरा जाता दिखाई देता है । अज्ञेय, जैनेन्द्र तथा आगे चलकर मोहन राकेश जैसे उपन्यासकार की रचनाओं में ऐसे परिवर्तन लक्षित होते हैं । पात्रों का यह नया दृष्टिकोण उपन्यास को अतिरंजना प्रदान करने के लिए नहीं है । पात्रों की परिकल्पित जीवन स्थितियों को व्यापक परिप्रेक्ष्य में देखें तो उनका सम्बन्ध कई समाजशास्त्रीय तथ्यों से हो जाता है । उपन्यास के माध्यम से यह एक नया दृष्टिकोण विकास पाता है ।

परिवार के जीवन की सूक्ष्मता की तरफ नज़र डालते समय व्यक्ति सम्बन्धों पर हमारा ध्यान टिकता है । एक ओर भारतीय परिवार में पति-पत्नी सम्बन्ध का विशेष महत्व है और मूल्य भी है । यह भी कहा जा सकता है कि परिवार का आधारशिला ही पति-पत्नी सम्बन्ध पर टिकी हुई है । इनसे पीढ़ियों का सम्बन्ध विकसित होता है या गठित होता है । यही नहीं पारम्परिक ढंग से पति-पत्नी के सम्बन्ध को अधिक महत्व दिया गया है तथा उसे पवित्रता एवं पावनता भी प्रदान की गयी है । नये समाज के नये परिवार में इन सभी उपरोक्त तत्वों के मूल्य को तुरंगित करने की इच्छा के बावजूद उन्हें आदर्श के स्तर पर स्वीकार करने की दृष्टि खण्डित हुई है । यथार्थ पर आधारित मूल्य-दृष्टि ने पति-पत्नी सम्बन्ध को नया आयाम दिया है । प्रेमचन्द की निर्मला और मोहन राकेश की नीलिमा की दूरी सिर्फ दो युगों के उपन्यासों के बीच की दूरी नहीं बल्कि एक दम भिन्न दो मूल्यों के बीच की दूरी है । सहने के स्थान पर प्रश्न करने और अपनी आस्था निर्धारित करने वाली पत्नियों में जो फासला है वह मामूली नहीं है । पति-पत्नी सम्बन्ध को दर्शाने वाले नये उपन्यासों ने परोक्षतः एक नयी परम्परा का सृजन किया है । उपन्यासों के पारिवारिक सन्दर्भ का यह नया आयाम वस्तुतः भारतीय सामाजिक परिवर्तन का एक नया पहलू है ।

भारत में शहरीकरण की प्रक्रिया निरन्तर बढ़ती रही है और उसका असर परिवारों पर पड़ने लगा है । महानगरों के विकास ने हमारे परिवारों को सूक्ष्म और संक्षिप्त कर दिया है । अर्थात महानगर तथा दूसरी श्रेणी के नगरों से एकल या अणु परिवार की संख्या बढ़ने लगी । अणु परिवार की अपनी समस्याएँ हैं । पहली समस्या उसकी आकार विशिष्टता है । वह इतना छोटा है कि संप्रेषण सिर्फ दो व्यक्तियों के बीच में होता है । बच्चे भी अणु परिवार के सदस्य होते हैं । पर संप्रेषण में अर्थात्, पारिवारिक संवाद को बनाये रखने में उनका उतना योगदान नहीं है । उसकी दूसरी समस्या महानगर की रफ़्तार और उससे पराजित होता जीवन है । हर कहीं रफ़्तार ही रफ़्तार है । तीसरी समस्या प्राय: अर्थ केन्द्रित है जो मुख्य है । स्वतन्त्रता की चेतना की कमी भी इसकी एक समस्या है । अणुपरिवार अपनी, स्वतन्त्र अस्मिता के बावजूद परम्परित दृष्टि से उत्पन्न संघर्ष के कारण समस्या का सामना करता है । अणु परिवार की बाहरी रूप काफ़ी स्वस्थ और स्पृहणीय लग सकता है लेकिन उसका आन्तरिक रूप विक्षुप्त रहता है ।

अणु परिवार की सबसे बड़ी समस्या उसका संक्षिप्त रूपाकार है । इसलिए जिस किसी कोण से उठ खड़ा संघर्ष भी थमने के स्थान पर आगे विकसित होता दिखाया पड़ता है । पति और पत्नी का स्वत्व-संघर्ष कम आयु वाले बच्चों के जीवन पर पड़ता है । यह परिवार के भीतर की स्थिति है । यह मूल्य-संघर्ष बाहरी परिवेश में कभी प्रतिशोधात्मक रवैया अपनाकर मूल्य विघटन में परिणत होता है । तब परिवार का खोखला रूप बचता है, उसकी आत्मा कहीं गायब होती है । हिन्दी उपन्यास ने इस प्रकार अणु परिवार को पर्याप्त मात्रा में चित्रित किया है ।

उपन्यास की कोई भी स्थिति कल्पित होने के कारण कथा के रूप में देखी-समझी जाती है । लेकिन उसकी कथा को बाहरी सन्दर्भ में परखना उचित

लगता है । इसका कारण यह है कि उपन्यास दरअसल हमारी सामाजिक वास्तविकताओं का समग्र रूप है । उपन्यास का मूल मुद्दा जब सामाजिक हो अर्थात् किन्हीं पारिवारिक मुद्दों पर केन्द्रित हो तो उसका अर्थ है कि उनका विश्लेषण समाजशास्त्रीय सन्दर्भ में हो हो । यह उन उपन्यासों के आस्वादन का एक नया धरातल भी प्रस्तुत करता है । समाजशास्त्रीय प्रतिमानों को यों ही आरोपित करें तो ऐसा विश्लेषण जड़ दीख सकता है । परन्तु प्रत्येक उदाहरण से समाजशास्त्रीय सन्दर्भ की ओर जाया जा सकता है । अर्थात् स्त्री-चेतना की बढ़ती गति के साथ पति-पत्नी सम्बन्ध के स्वत्व सन्दर्भ को देखना चाहिए । यहाँ नारी चेतना के नये समाजशास्त्रीय प्रकरण विचारणीय हो जाते हैं । अणु परिवार की कोई भी समस्या जिसके केन्द्र में हमारे उपभोगवादी सामाजिक प्रक्रिया का, या गिरते मूल्यों का सम्बन्ध है । यह समस्या उस परिवार की है । पर उसके मूल में सही समाजशास्त्रीय स्थिति है । भारतीय उपन्यासों की कथा-गति को उस पारिवारिक सन्दर्भ में पहुँचाना सुखद आश्चर्य का विषय हो सकता है । इसका कारण यह है कि इन भारतीय उपन्यासों में परिवार को पूरी तरह अनदेखा नहीं किया गया है । पर उसको ज़्यादा महत्व भी नहीं दिया गया है । पुरानी आस्थाओं के स्थान पर यह नया प्रकरण हमारी समाजशास्त्रीय दृष्टि को उकसाता है । हिन्दी के उपन्यास इससे भिन्न नहीं है ।

समाजशास्त्री कारण ढूँढ़ता है और आँकड़ों सहित उसका समर्थन करता है । उपन्यासकार न कारण ढूँढ़ता है न प्रस्तुत करता है । आंकड़े प्रस्तुत करना भी उनका उद्देश्य नहीं है । उपन्यासकार स्थितियों से गुज़रता है और उन्हें औपन्यासिक अनुभव में परिणत करते हैं । समाजशास्त्रीय प्रतिमानों में हम पुनः विश्लेषणात्मक स्थिति में पहुँच सकते हैं ।

हिन्दी उपन्यास पारिवारिक चित्रण में हमेशा दिलचस्पी लेते रहे हैं ।

तद्युगीन परिस्थितियों के अनुरूप पारिवारिक परिवर्तनों के अलग-अलग मुद्दों को कई उपन्यासकारों ने विषय बनाया है ।

परिवर्तनों को सिर्फ़ सैद्धान्तिक स्तर पर आंकने भर का कार्य हिन्दी उपन्यास ने किया नहीं है ।

परिवर्तनों को मूल्यों के स्तर पर प्रस्तुत करने का कार्य ही दरअसल हिन्दी उपन्यासों ने किया है ।

परिवर्तनों की बाढ़ के बीच भी भारतीय दृष्टि सुरक्षित रखने में हिन्दी उपन्यास कभी भी पीछे नहीं रहे ।

मूल्यों को जितने उपविभाग हो सकते हैं, जीवन परिवेश के जितने रंग हो सकते हैं उनका लेखा-जोखा भी परिवार-कथाकेन्द्री उपन्यासों में हुआ है ।

नयी आस्था को हिन्दी उपन्यास ने बिम्बीकृत किया है और नयी मूल्य-दृष्टि के प्रति विशेष रुचि दिखायी गयी है ।

सामन्तीय मूल्यों का सख्त तिरस्कार आधुनिक हिन्दी उपन्यास की मुख्य प्रवृत्ति है ।

पारिवारिक कथा-केन्द्रित आधुनिक हिन्दी उपन्यास का समाज-शास्त्रीय पक्ष काफ़ी प्रबल है ।

xxxxxxxxxx

ग्रन्थ सूची

उपन्यास

1. अचल मेरा कोई	वृन्दावन लाल वर्मा	मयूर प्रकाशन, झाँसी सं. 1949
2. अन्धेरे बन्द कमरे	मोहन राकेश	राजपाल प्रकाशन, दिल्ली सं. 1961
3. अमृत और विष	अमृतलाल नागर	लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद सं. 1966
4. आत्मदाह	चतुरसेन शास्त्री	चौधरी एण्ड सन्स, बनारस
5. आपका बण्टी	मन्नु भण्डारी	अक्षर प्रकाशन, दिल्ली सं. 1970
6. इरावती	जयशंकर प्रसाद	भारती भण्डार, इलाहाबाद
7. उखड़े हुए लोग	राजेन्द्र यादव	अक्षर प्रकाशन, दिल्ली सं. 1956
8. उसका बचपन	कृष्ण बलदेव वैद	सरस्वती प्रेस, बनारस सं. 1957
9. इंच मुस्कान	मन्नू भण्डारी एवं राजेन्द्र यादव	राजपाल एण्ड सन्ज़, सं. 1963

10• एक पति के नोट्स	महेन्द्र भल्ला	राजकमल प्रकाशन दिल्ली सं• 1967
11• चीड़ियाँ	भीष्म साहनी	राजकमल प्रकाशन दिल्ली सं•1970
12• कल्याणी	जैनेन्द्र कुमार	हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर, बम्बई सं•1960
13• कंकाल	जयशंकर प्रसाद	भारती भण्डार, इलाहाबाद
14• गबन	प्रेमचन्द	हंस प्रकाशन, इलाहाबाद सं•1963
15• गर्म रोटी	उपेन्द्र नाथ अश्क	नीलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद सं•1959
16• गिरती दीवारें	उपेन्द्रनाथ अश्क	नीलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद सं•1957
17• गोदान	प्रेमचन्द	सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद सं•1961
18• झूठा सच	यशपाल	विप्लव कार्यालय, लखनऊ सं•1960
19• टेढ़े मेढ़े रास्ते	भगवतीचरण वर्मा	भारती भण्डार, इलाहाबाद •1946
20• डाक बंगला	कमलेश्वर	राजकमल प्रकाशन, दिल्ली सं•1961

21. डूबते मस्तूल	नरेश मेहत्ता	साधना सदन प्रकाशन, इलाहाबाद. सं. 1954
22. तितली	जयशंकरप्रसाद	भारती भण्डार, इलाहाबाद सं. 2021 वि.
23. त्यागपत्र	जैनेन्द्र कुमार	हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर म्बई-4 सं. 1950
24. दादा कामरेड	यशपाल	विप्लव कार्यालय, लखनऊ सं. 1959
25. दूसरी बार	श्रीकान्त वर्मा	अक्षर प्रकाशन दिल्ली सं. 1968
26. देश द्रोही	यशपाल	विप्लव कार्यालय, लखनऊ 1958
27. दो एकान्त	नरेश मेहत्ता	लोकभारती प्रकाशन सं. 1965
28. न आने वाला पल	मोहन राकेश	राजपाल एण्ड सन्ज़ सं. 1968
29. नदी के द्वीप	अज्ञेय	सरस्वती प्रेस, सं. 1960
30. निर्मला	प्रेमचन्द	सरस्वती प्रेस सं. 1944
31. पचपन खम्भे लाल दीवारें	उषा प्रियम्वदा	अक्षर प्रकाशन सं. 1961

38. बीज	अमृतराय	हंस प्रकाशन, इलाहाबाद सं. 1953
39. ईंट और समुद्र	अमृतलाल नागर	किताब महल, इलाहाबाद सं. 1956
34. बैसाखियों वाली इमारत	रमेश बक्षी	इन्द्र नाथ प्रकाशन, दिल्ली सं. 1966
35. भूले बिसरे चित्र	भगवतीचरण वर्मा	राजकमल प्रकाशन, दिल्ली सं. 1959
36. मनुष्य के रूप	यशपाल	विप्लव कार्यालय, लखनऊ सं. 1958
37. माँ	विश्वम्भर नाथ शर्मा "कौशिक"	गंगा पुस्तक माला कार्यालय, लखनऊ, सं 1958
38. मृगनयनी	वृन्दावनलाल वर्मा	मयूर प्रकाशन, झाँसी सं. 1962
39. यह पथ बन्धु था	नरेश मेहता	हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर, बम्बई सं. 1962
40. रुकोगे नहीं राधिका	उषा प्रियम्वदा	अक्षर प्रकाशन दिल्ली सं. 1961
41. लज्जा	इलाचन्द्र जोशी	भारती भण्डार, इलाहाबाद सं. 1947
42. शेखर-एक जीवनी	अज्ञेय	सरस्वती प्रेस, बनारस सं. 1958

43• सन्यासी	इलाचन्द्र जोशी	भारती भण्डार, इलाहाबाद सं•2012 वि•
44• समुद्र में खोया हुआ आदमी	कमलेश्वर	राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली सं•1965
45• सारा आकाश	राजेन्द्र यादव	राजकमल प्रकाशन दिल्ली सं•1960
46• सुखदा	जैनेन्द्र कुमार	पूर्वोदय प्रकाशन, दिल्ली सं• 1952
47• सुनीता	जैनेन्द्र कुमार	हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर, बम्बई सं•1958
48• सूरज का सातवाँ घोड़ा	धर्मवीर भारती	भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दि सं• 1952
49•सेवासदन	प्रेमचन्द	सरस्वती प्रकाशन, बनारस सं•1960

आलोचनात्मक ग्रन्थ

50• अतीत के चलचित्र	महादेवी वर्मा	भारती भण्डार, इलाहाब सं•1968
51• अधूरे साक्षात्कार	नेमिचन्द जैन	अक्षर प्रकाशन, दिल्ली सं•1966

52• आज का हिन्दी उपन्यास	प्रकाश चन्द्र गुप्त	चित्रलेखा प्रकाशन, इलाहाबाद
53• आत्मनेपद	अज्ञेय	भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, काशी सं• 1960
54• आधुनिकता के संदर्भ में आज का हिन्दी उपन्यास	डा• अतुलवीर अरोड़ा	पब्लिकेशन ब्यूरो, पंजाब यूनि• सं• 1974
55• आधुनिक हिन्दी उपन्यास	श्रीकान्त वर्मा	सम्भावना प्रकाशन, हापुड़
56• आधुनिक हिन्दी उपन्यास	नरेन्द्र मोहन	मैकमिलन कम्पनी, सं• 1975
57• आधुनिक साहित्य	आचार्य नन्द दुलारे बाजपेयी	भारती भण्डार, इलाहाबाद सं• संवत् 2013
58• आधुनिकता और सृजनात्मक साहित्य	इन्द्रनाथ मदान	राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली सं• 1978
59• आस्था और सौंदर्य	डा• रामविलास शर्मा	किताब महल, इलाहाबाद सं• 1883 शकाब्द
60• आधुनिक हिन्दी कथा-साहित्य और मनोविज्ञान	डा• देवराज उपाध्याय	साहित्य भवन सं• 1956
61• आधुनिक हिन्दी उपन्यास और अजनबीपन	डॉ• विद्याशंकर राय	सरस्वती प्रकाशन मन्दिर, इलाहाबाद• सं• 1988

62. उपन्यास स्थिति और गति	चन्द्रकान्त बान्दिवडेकर	पूर्वोदय प्रकाशन, दिल्ली सं. 1977
63. उपन्यासकार अश्क	डॉ. इन्द्रनाथ मदान	नीलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद सं. 1960
64. जैनेन्द्र के उपन्यास	रघुनाथ सरन झालानी	नाशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली सं. 1956
65. जैनेन्द्र के उपन्यास मर्म की तलाश	चन्द्रकान्त बान्दिवडेकर	पूर्वोदय प्रकाशन, दिल्ली सं. 1984
66. जैनेन्द्र व्यक्तित्व और कृतित्व	सत्यप्रकाश मिलिन्द	सूर्य प्रकाशन, दिल्ली सं. 1963
67. परिप्रेक्ष्य और प्रतिक्रियाएँ	लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय	नाशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली सं. 1978
68. प्रेमचन्द	डा. रामविलास शर्मा	वाणी प्रकाशन, दिल्ली
69. प्रेमचन्द एक विवेचन	डॉ. इन्द्रनाथ मदान	राजकमल प्रकाशन, दिल्ली
70. प्रेमचन्द हिन्दी उपन्यास शब्दकोश	लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय	नाशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली
71. प्रेमचन्द और उनका युग	डॉ. रामविलास शर्मा	वाणी प्रकाशन, दिल्ली
72. प्रेमचन्द के नारी पात्र	ओम अवस्थी,	नाशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली सं. 1968

73. भारतीय सामाजिक समस्याएँ	रवीन्द्र नाथ मुकर्जी	सरस्वती सदन, मसूरी सं. 1967
74. समस्यामूलक उपन्यास-कार प्रेमचन्द	डॉ. महेन्द्र भटनागर	हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी सं. 1961
75. साहित्य का उद्देश्य	प्रेमचन्द	सरस्वती प्रेस, बनारस सं. 1954
76. स्वातन्त्र्योत्तर कथा-साहित्य और ग्राम्य जीवन	विवेकीराय	लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद सं. 1974
77. स्वातन्त्र्योत्तर कथा साहित्य	डॉ. तोताराम शर्मा	युगबोध प्रकाशन, सं. 1964
78. स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास साहित्य की समाजशास्त्रीय पृष्ठभूमि	डॉ. स्वर्णलता	विवेक पब्लिशिंग हाउस सं. 1978
79. स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास का शिल्प-विकास	राधेश्याम कौशिक	मंगल प्रकाशन, सं. 1976
80. स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी साहित्य	डॉ. रामगोपालसिंह चौहान	विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा सं. 1965
81. हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद	डा. त्रिभुवनसिंह	हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी सं. संवत् 2022
82. हिन्दी उपन्यास उपलब्धियाँ	डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय	राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली सं. 1973

83• हिन्दी उपन्यास	सुरेश सिन्हा	अशोक प्रकाशन, दिल्ली
84• हिन्दी उपन्यास- एक अन्तर्यात्रा	डॉ•रामदरश मिश्र	राजकमल प्रकाशन, दिल्ली सं• 1969
85• हिन्दी उपन्यास में चरित्रचित्रण का विकास	डॉ•रणवीर रांग्रा	भारतीय साहित्य मन्दिर, दिल्ली सं•1961
86• हिन्दी उपन्यासों में मध्यवर्ग	डॉ•मंजुलासिंह	आर्या बुक डिपो सं•1971
87• हिन्दी उपन्यास समाजशास्त्रीय विवेचन	डॉ•चण्डीप्रसाद जोशी	अनुसन्धान प्रकाशन, कानपुर सं•1962
88• हिन्दी उपन्यास पहचान और परख	इन्द्रनाथ मदान	लिपि प्रकाशन, [illegible]
89• हिन्दी उपन्यासों का मनोविश्लेषणात्मक अध्ययन	[illegible]	[illegible] प्रकाशन सं•197[illegible]
90• हिन्दी उपन्यास साहित्य का अध्ययन	डॉ•एस•एन•गणेशन	राजपाल एण्ड सण्ज़, दिल्ली सं•1962
91• हिन्दी उपन्यास सामाजिक चेतना	डॉ•कुंवरपाल सिंह	पाण्डुलिपि प्रकाशन, दिल्ली सं•1976
92• हिन्दी कथा साहित्य	गंगाप्रसाद पाण्डेय	भारती भण्डार, इलाहाबाद सं•संवत् 2008
93• हिन्दु परिवार मीमांसा	हरिदत्त वेदालंकार	सरस्वती सदन, दिल्ली

पत्रिकाएँ

1. आजकल	अगस्त 1972
2. आलोचना	उपन्यास विशेषांक 13
	स्वातन्त्र्योत्तर विशेषांक, पूर्णांक-34
3. कल्पना - 238	
4. धर्मयुग	14 से 20 मार्च, 1982
	16 से 22 मार्च, 1980
5. परिशोध	20 जनवरी, 1974
6. वातायन - 10	
7. साप्ताहिक हिन्दुस्तान	22 मार्च, 1980
	30 मार्च, 1980
8. सम्मेलन पत्रिका भाग 61	शक 1897
9. ज्ञानोदय	जुलाई 1965
	दिसम्बर 1969 एवं जनवरी 1970